॥ श्रीहरिः ॥

121

श्रीएकनाथ-चरित्र

गीताप्रेस, गोरखपुर

121

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीएकनाथ-चरित्र

और

श्रीनाथ-वाणीका प्रसाद

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

भूमिका

यह चरित्र एकनाथ महाराजका है। इनका नाम महाराष्ट्रमें अत्यन्त लोकप्रिय है। श्रीज्ञानेश्वरका नाम गम्भीर बना देता है, तुकारामके नाममें लीनता है, रामदासके नामकी धाक है, वैसे ही इनके नाममें सबको प्रसन्न कर देनेकी शक्ति है। कारण इनका चरित्र ऐसा ही है जो पाठक आगे पढ़ेंगे। काशीमें जैसे गंगा बहती हैं, वैसे ही महाराष्ट्रमें, विशेषकर पैठणमें एकनाथकी स्मृतिगंगा बहती है। आज भी महाराष्ट्रमें सर्वत्र एकनाथषष्ठी मनायी जाती है और पैठणमें तो इस दिन सब दिशाओंसे यात्री एकत्र होते और इस स्मृतिगंगामें स्नानकर कृतार्थताका अनुभव करते हैं। प्रतिष्ठान या पैठण किसी समय विद्याका एक प्रधान केन्द्रस्थान था, पर आज पैठणमें और तो कुछ नहीं, पर एकनाथकी दिव्य स्मृति है। पैठणकी विद्या सफल हो गयी जब एकनाथ उत्पन्न हुए। पैठणमें एकनाथ महाराजका स्थान अभीतक है, 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' के न्यायसे उनके वंशधरोंको मिली हुई जागीर भी है, वंशधर भी हैं, एकनाथ महाराजकी स्मृति और उनका कार्य भी है। स्मृतिके उत्सव भी होते हैं।

चरित्र एकनाथ महाराजका है। अवलोकन और लेखन महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध हरिभक्तिपरायण विद्वान् लेखक पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकरका है, इस हिंदी अनुवादकी भाषा केवल मेरी है। अनुवादमें प्रसंगके अनुसार मूलके कुछ ऐसे मराठी अवतरण मैंने छोड़ दिये हैं, जिनके छोड़ देनेसे मेरे विचारमें प्रसंग, रस या हेतुकी कोई हानि नहीं होती। उदाहरणार्थ, 'रुक्मिणी-स्वयंवर'का मूलमें जो विस्तारपूर्वक वर्णन है और जिसका हेतु इसका पारमार्थिक पहलू दिखलाना है, उसे मैंने बहुत संक्षेपमें दिया है। 'भावार्थ-रामायण'के प्रसंगमें भी ऐसा ही किया है। 'एकनाथ भागवत'से बोधवचनोंका जो संग्रह दिया है, वह मानो इसके बदलेमें मूल ग्रन्थमें दिये हुए वचनोंसे बहुत अधिक है। इन दो-एक बातोंको छोड़कर यह सर्वथा श्रीपांगारकरजीकी पुस्तकका ही अनुवाद है।

इस अनुवादकी प्रेरणा अपने सम्मान्य और परम प्रेमास्पद मित्र श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने की। उनका यदि इस ओर ध्यान न होता तो शायद मैं एकनाथ महाराजके इस गुणानुवादसे प्राप्त होनेवाले अप्रत्यक्ष सत्संगसुखसे वंचित ही रहता। मुझे यह अनुवाद करते हुए जो आनन्द मिला वह अमूल्य है। उसका मूल्य यदि कुछ हो सकता है तो वह यही है कि इससे पाठकोंका सात्त्विक मनोरंजन हो और हम सबके लिये एकनाथ महाराजका दृष्टान्त सत्पथका प्रदर्शक हो।

काशी, ज्येष्ठ कृ० १२, सं १९८९ लक्ष्मण नारायण गर्दे

बुधवार

श्रीहरिः

ग्रन्थकारकी प्रस्तावना

श्रीएकनाथ महाराजका यह संक्षिप्त चरित्र मराठी-पाठकोंके सामने मैं आज सादर उपस्थित करता हूँ। नाथ महाराजका विस्तृत चरित्र लिखनेका विचार मैंने अभी स्थगित रखा है। सत्कवि श्रीमोरोपन्तके 'चरित्र और काव्य-विवेचन'का ६०० पृष्ठोंका ग्रन्थ मैं दो वर्ष पहले रसिकोंके सामने रख चुका हूँ। ऐसा ही एकनाथ महाराजका बृहच्चरित्र लिखनेका काम मैंने अपने सिर उठा लिया है और उसके काव्य-विवेचन-सम्बन्धी दो-तीन अध्याय मैं लिख भी चुका हूँ। श्रीज्ञानेश्वर, श्रीनामदेव, श्रीएकनाथ, श्रीतुकाराम और श्रीरामदास इस पंचायतनके साद्यन्त चरित्र विस्तृत परिमाणपर लिखनेका मेरा संकल्प पहलेसे था और अब भी है; तथापि इस विस्तृत परिमाणपर लिखे जानेवाले चरित्रोंके पहले आबाल-वृद्ध, छोटे-बड़े और अमीर-गरीब सबके संग्रह करनेयोग्य बोधप्रद, आनन्ददायक तथा सुबोध भाषामें लिखे हुए संक्षिप्त चरित्र लिखनेके लिये अनेक मित्रोंने मुझसे बहुत कहा और इसीको श्रीहरिकी आज्ञा मानकर मैं इस कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ।

यह एकनाथ महाराजका चरित्र पहले प्रकाशित हो रहा है और इसके बाद ज्ञानेश्वर महाराज, नामदेव महाराज, तुकाराम महाराज, रामदास स्वामी आदि विख्यात साधु-महात्माओंके चरित्र क्रमसे लिखकर प्रकाशित करनेका विचार है, जिसे सत्यसंकल्पके दाता भगवान् पूर्ण करें। प्रस्तुत चरित्र पाँच सप्ताहमें लिखकर तैयार हुआ, इसीसे यह आशा हुई है। सन्त श्रीहरिके उपासक और जीवोंके परम मित्र होते हैं। उनकी वाक्-सुधा-सरितामें अखण्ड निमज्जन करते और उनके गुण गाते और सुनते हुए आनन्दसे अपने मूल पदको प्राप्त करें, ऐसी प्रीति श्रीहरिने ही उत्पन्न की है और इसका पोषण करनेवाले भी वही हैं। सन्त जीवोंके माता-पिता हैं। ज्ञानेश्वरी, नाथभागवत, अमृतानुभव, दासबोध, नामदेव, तुकारामादिके अभंग और सहस्त्रों भजनादि ग्रन्थोंके रूपमें सन्त ही अवतीर्ण हुए हैं। सन्तके संगसे मनका मैल धुल जाता है, मन स्थिर होकर हरि-चरणोंमें लीन होता है; विषय बाधक क्या होंगे, उनका स्मरण भी नहीं होता, संसार सारभूत और आनन्ददायक प्रतीत होता है। 'मैं' पन मरता और सर्वात्मभाव जाग उठता है और सब

हरिमय मालूम होता है—अखिल विश्व चिदानन्दसे भर जाता है। सन्त भव-बन्धनसे छुड़ाते और स्वस्वरूपके सुखमय सिंहासनपर बैठाते हैं। सन्तोंकी बानी जब सदा जिह्वापर नाचने लगती है, तब भीतर-बाहर सर्वत्र प्रकाश फैलता है, विचार जागता और अज्ञान अस्त होता है। सत्संग मोक्षका द्वार है। सन्तों और सन्तोंके ग्रन्थोंमें कोई भेद नहीं है। सन्तोंके अपार उपकारोंसे अंशतः उऋण होनेका उत्तम उपाय यही है कि हम उनके उपदेश और चरित्रका प्रचार करें। सत्संगमें, सन्तोंके ग्रन्थोंमें और सन्तोंके चरित्रोंमें हम रँगें और दूसरोंको रँगावें, भक्तिका आनन्द स्वयं चखें और दूसरोंको चखावें और परस्परके सहायक होकर, वक्ता-श्रोता-लेखक-पाठक सब मिलकर हरि-प्रेमानन्द प्राप्त करें और दूसरोंको प्राप्त करावें। सम्पूर्ण विश्व हरिभक्तोंकी प्रेमभरी कथाओंसे गूँज उठे यही चित्तकी लालसा रहती है।

सन्त कवियोंके चरित्र लिखनेवाले लेखकको तीन बातोंका विशेष ध्यान रखना होगा—(१) सबसे पहले परम्परासे चली आयी हुई विचार-पद्धतिको पूर्णरूपसे अपनाकर धर्म-विचारोंका यथार्थ स्वरूप ध्यानमें ले आना होगा। अधिकांश महाराष्ट्रीय सन्त भागवत-धर्मके माननेवाले 'वारकरी' थे। इस वारकरी-सम्प्रदायमें जबतक कोई मिल नहीं जाता, तबतक इस सम्प्रदायका शुद्ध-स्वरूप और परम्परागत अर्थसंगति उसके ध्यानमें नहीं आ सकती। आजकल शिक्षितोंमें पूर्वपरम्पराके विषयमें अनादर और परम्परासे बिछुड़ी हुई विचित्र धर्मकल्पनाएँ खूब फैली हैं। इससे अपना-अपना तर्क चलाकर सन्तोंके ग्रन्थों और उनकी कविताओंका चाहे जैसा अर्थ करनेकी बीमारी-सी फैल गयी है। सन्तोंके ग्रन्थ नवीन विचारसे समझने और समझानेका ये लोग प्रयत्न कर रहे हैं। पर इन स्वतन्त्र विचारवालोंसे उन ग्रन्थोंमें दिखायी देनेवाले विरोध दूर करके अनेक उद्‌गारोंकी एकवाक्यता करना नहीं बन पड़ता। यह काम साम्प्रदायिकोंसे ही बनता है। मैं यह नहीं कहता कि आँखें मूँदकर पूर्वपरम्पराको मान लो और अपनी बुद्धिसे कुछ भी विचार मत करो। तथापि पूर्वपरम्पराको अच्छी तरह समझे बिना केवल अपना तर्क चलाना ठीक नहीं। 'वारकरी-सम्प्रदाय'में रखा ही क्या है? ये लोग करताल बजाना, हरिनाम लेना और नाचना-गाना जानते हैं। 'इसके सिवाय तत्त्वकी इन्हें क्या खबर है?' यह कहकर इन भगवद्भक्तोंका अनादर करके अपने ही तर्कपर आरूढ़ होनेवाले अहंमन्य विद्वान् आजकल अनेक

हैं; तथापि अपने अनुभवसे मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, नाथभागवत, दासबोध, तुकारामादिके सहस्त्रों अभंगोंका पूर्वापर-सम्बन्ध लगाकर उत्तम समाधान करनेवाले मर्मज्ञ साम्प्रदायिकोंमें ही मिलते हैं। तात्पर्य, सन्तोंके ग्रन्थ सम्प्रदायपरम्परासे अच्छी तरह समझे बिना उन ग्रन्थोंके विचारोंकी ठीक पहचान नहीं हो सकती और विचारोंकी पहचान होनेपर भी उन विचारोंके अनुसार अनुष्ठान (आचरण) किये बिना उनका सच्चा मर्म कदापि ध्यानमें नहीं आ सकता। (२) भावके बलसे सन्तोंके रहस्य समझमें आ सकते हैं और ग्रन्थार्थ मालूम हो सकता है। परन्तु चरित्रकारमें वागर्थसौन्दर्य अर्थात् शब्दसौन्दर्य और अर्थसौन्दर्य जाननेयोग्य रसिकता भी होनी चाहिये। कहाँ कौन-सी कल्पना सुन्दर है, कहाँ कौन-सा पदविन्यास समुचित है, कहाँ कौन-सा रस या अलंकार है, यह जानकर तत्तत्स्थानमें उसका चित्त तन्मय हो जाना चाहिये। (३) तीसरी बात यह है कि चरित्रकारमें इतिहासदृष्टि भी होनी चाहिये। स्थल-कालका पूर्वापर-सम्बन्ध उसे जानना होगा। तात्पर्य, चरित्रकार साम्प्रदायिक अर्थात् भावुक, काव्यमर्मज्ञ अर्थात् रसिक और इतिहासज्ञ अर्थात् चिकित्सक होना चाहिये। ऐसा तीनों गुणोंसे युक्त चरित्रकार हो तो वह सन्तोंके चरित्र लिखनेका काम उत्तम रीतिसे कर सकता है। भावुकता, रसिकता और चिकित्सकता—इन तीन गुणोंकी कल्पना महीपतिबाबा, विष्णुशास्त्री, चिपलोणकर और राजवाडे—इन नामोंसे अनायास ही हो सकती है। महीपतिबाबाके चरित्रलेखनमें काल-विपर्यासादि दोष दिखायी देते हैं, पर उनकी प्रेमभरी रसीली वाणी संसारदु:ख भुलाकर, रज-तमको दबाकर और सत्त्वगुणका उदय करके भक्तिमार्गपर ला खड़ा कर देती है। राजवाडे विद्वान्, शोधक, उद्योगी, स्वार्थत्यागी और बुद्धिमान् होनेसे विद्वन्मान्य रहेंगे और शास्त्रीय शोधके सम्बन्धमें उनके उपकार सदा स्मरण रहेंगे। पर उनका कर्कश, कठोर और भेदक पद्धति भावुकोंको कभी अच्छी नहीं लग सकती। निबन्ध-मालाकार विष्णुशास्त्री मध्यस्थ रहेंगे; तर्कके लिये न तो वह रसका निषेध करेंगे और न अन्ध-श्रद्धाके लिये चाहे जिस बातपर विश्वास ही करेंगे। महीपतिकी रसिकता, मालाकारकी मार्मिकता और राजवाडेकी चिकित्सकता—इन तीनों गुणोंका समुचित सम्मिश्रण जिस सन्त-चरित्रकारमें हुआ रहेगा वह भावुक, रसिक और पण्डित—तीनों प्रकारके लोगोंके लिये मान्य होगा।

ऐसा पुरुष जब उत्पन्न हो। पर इन तीन गुणोंका अल्पांश भी यदि मेरी सन्त-चरितमालामें दिखायी दे तो मैं यह समझ सकता हूँ कि साहित्यकी दृष्टिसे भी सन्तोंकी कुछ सेवा हुई।

एकनाथ महाराजके इस चरित्रके लिये मुख्य आधार केशवबुवा और महीपतिबुवाके लिखे चरित्र और स्वयं एकनाथ महाराजके ग्रन्थ हैं। महीपतिके आधारपर श्रीसहस्रबुद्धने एकनाथ महाराजका एक गद्यात्मक चरित्र लिखा है। इसके बाद केशवबुवाका लिखा हुआ चरित्र प्रकाशित हुआ है। केशवबुवा नाथ-साम्प्रदायी थे और देवगढ़पर ही शाके १६८२ (संवत् १८१७) में उन्होंने यह नाथ-चरित्र लिखा जो ३१ अध्यायोंमें पूर्ण हुआ है। महीपतिने भक्त-विजय (अ० ४५-४६) और भक्त-लीलामृत (अ० १३—२४) में एकनाथ महाराजका चरित्र वर्णित किया है। भक्त-विजयमें संक्षेप है और भक्तलीलामृतमें विस्तार है। भक्त-विजय ग्रन्थ शाके १६८४ (संवत् १८१९) में लिखा गया और भक्त-लीलामृत शाके १६९६ (संवत् १८३१) में सम्पूर्ण हुआ। सम्प्रदायशुद्ध और प्रथम चरित्र केशवबुवाका ही लिखा हुआ है। महीपतिबाबाने सन्त-लीलामृतमें केशवबुवाके ग्रन्थमें दिया हुआ कथाभाग ज्यों-का-त्यों दिया है। केशवकृत नाथ-चरित्र और महीपतिकृत भक्तलीलामृत दोनों सामने रखकर देखा जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि केशवकृत ग्रन्थ सामने रखकर ही महीपतिने वर्णन किया है। महीपतिने यह चरित्र २,३५८ ओवियोंमें लिखा है और केशवकृत ग्रन्थमें २,६४४ ओवियाँ हैं। तात्पर्य, केशवकृत नाथ-चरित्र महीपतिके पहलेका है। इन दो चरित्रोंके आधारपर तथा एकनाथ महाराजकी उक्तियोंको स्थान-स्थानमें प्रमाणके तौरपर उद्धृत करके मैंने यह चरित्र-ग्रन्थ तैयार किया है। दासोपन्त, मुक्तेश्वर, कृष्णदयार्णव, मोरोपन्त आदिसे भी कहीं-कहीं सहारा लिया है और अन्तमें 'स्तुति-सुमनांजलि' में एकनाथ महाराजके पश्चात् जो कवि हुए उनके एकनाथके सम्बन्धमें प्रेमोद्गारोंका संग्रह किया है। इन प्रेमोद्गारोंसे यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि महीपति और केशवकृत ग्रन्थोंमें दी हुई कथाएँ सर्वत्र कितनी परिचित हो गयी थीं। इस ग्रन्थमें स्थान-स्थानपर एकनाथ महाराजके ग्रन्थोंमेंसे उनके अनेक वचन उद्धृत किये हैं और जहाँ हो सका है। वहाँ एकनाथ महाराजका मनोभाव उन्हींके शब्दोंसे प्रकट कराया है। एकनाथ महाराजसे ही उनका अपना चरित्र कहलवाया है और

चरित्र तथा ग्रन्थ दोनोंका मेल दिखलाया है। यही इस ग्रन्थकी विशेषता है। पहले अध्यायमें नाथके प्रपितामह भानुदासका समग्र चरित्र दिया है और इसमें भी चरित्र और वचनोंका मेल दिखलाया है। दूसरे अध्यायमें नाथके बाल्यकालका वर्णन है, जो बालकोंके लिये बहुत बोधप्रद होगा। तीसरे अध्यायमें नाथके गुरु जनार्दन स्वामीका परिचय देकर नाथकी गुरुसेवा और स्वामीके सगुण साक्षात्कारका वर्णन एकनाथके शब्दोंमें ही कराया है। चौथे अध्यायमें एकनाथ महाराजको जो भगवान् दत्तात्रेयके दर्शन हुए उसका वर्णन करके, नाथके दत्तमानस-पूजासम्बन्धी अभंग दिये हैं और उसके अनुष्ठानकी पद्धतिका वर्णन किया है। पाँचवेंमें एकनाथकी तीर्थयात्रा और नाथ और चक्रपाणिके परस्परवियोग तथा पुनः मिलनेके प्रेम-रस-परिप्लुत प्रसंगका वर्णन किया है। छठा अध्याय बड़े महत्त्वका है। इसमें नाथका गृहस्थाश्रम, उनकी धर्मपत्नीका सदाचरण, एकनाथकी दिनचर्या, उनकी कथा कहने और कीर्तन करनेकी पद्धति, निन्दक और द्वेषियोंके साथ उनका उदार व्यवहार, उनका समत्व और उनकी उपासना आदि बातोंका विवरण दिया है। सातवें अध्यायमें 'पैठणकी षष्ठी' का इतना महत्त्व क्यों है यह बतलाकर एकनाथकी गुरु-भक्तिका मर्म पुनः विस्तारके साथ बतलाया है। नाथ-चरित्रका सबसे बड़ा गुण गुरु-भक्ति है, इसलिये यहाँ इसका विशेषरूपसे विवेचन किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थमें प्रसंगानुसार एकनाथ महाराजकी जो कथाएँ वर्णित हुईं, उनके अतिरिक्त उनकी जो अन्य महत्त्वपूर्ण कथाएँ महाराष्ट्रमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, उनका संग्रह आठवें अध्यायमें किया है। दो-तीन कथाएँ मैंने ऐसी दी हैं जो केशव और महीपतिके ग्रन्थोंमें नहीं हैं, पर प्रसिद्ध हैं। एकनाथ महाराजको सर्वसाधारण लोगोंने महात्मा कैसे जाना, यह इस अध्यायसे मालूम होता है। एकनाथ महाराजके यहाँ स्वयं भगवान् आकर बारह वर्षतक रहे और एकनाथकी सेवा करते रहे, यह कथा मैंने तत्कालीन सन्तोंके वचनों तथा एकनाथ महाराजके अपने वचनोंके प्रमाण देकर नवें अध्यायमें सप्रमाण दी है। दसवें अध्यायमें यह बतलाया है कि एकनाथ महाराजने पण्ढरी, आलन्दी और काशीकी यात्राएँ कब किस प्रसंगसे और कैसे कीं और फिर इसी अध्यायमें संक्षेपमें उनके ग्रन्थोंका परिचय दिया है। इस अध्यायमें यह बतलाया है कि किस प्रकार काशीके विद्वानोंने पहले एकनाथ महाराजको बड़ा कष्ट दिया और पीछे उनके

सदाचरणसे मुग्ध होकर उनके भागवत ग्रन्थका जय-जयकार किया; इसीमें फिर दासोपन्त और नाथकी भेंट, नाथको ज्ञानेश्वर महाराजके दर्शनोंका लाभ और गावबाका चरित्र वर्णित हुआ है। ग्यारहवें अध्यायमें उनकी सन्ततिका वर्णन कर उनके नाती मुक्तेश्वर और पुत्र हरिपण्डितका परिचय करा दिया है। नाथ और हरिपण्डितमें परस्पर विरोध और फिर मेल कैसे हुआ यह बतलाकर नाथके निर्याणकालका वर्णन किया है और बारहवेंमें नाथकी बड़ाई बड़ोंने कैसे बखानी है यह बतलाया है। ये सब बातें, ये बारह अध्याय पढ़नेसे अच्छी तरहसे मालूम होंगी। गृहस्थाश्रममें रहते हुए एकनाथ महाराजने अपनी ब्रह्मस्थितिको अखण्ड रखा। नाथका-सा मनोहर चरित्र नाथका ही है। इसकी कोई दूसरी उपमा नहीं। श्रीक्षेत्र पैठणमें मैं पंद्रह दिन रहा, इस बीच जो बातें मालूम हुईं, उनसे भी इस चरित्र-लेखनमें मुझे बड़ा लाभ हुआ। मैं इस चरित्र-मालाको उपर्युक्त भावुक, रसिक और चिकित्सक—तीनोंके प्रधान गुणोंका आदर करते हुए तैयार करनेवाला हूँ। कार्यारम्भ हो गया है और हेतु यही है कि हरि, हरिभक्त और हरिनामके विषयमें अपना और अपने पाठकोंका प्रेम और आदर बढ़े और सन्त-चरित्रके दर्पणमें अपना निजरूप हमलोग देख सकें। आत्म-शुद्धिका इसके सिवाय और कोई दूसरा साधन मुझे नहीं दिखायी देता। श्रवण, मनन और निदिध्यासन सबका फल सन्तोंके संगसे प्राप्त होता है। सन्तोंका गुणगान जीवको प्रिय है, उससे मनःशुद्धि होती है, भगवद्भक्ति बढ़ती है और निश्चित ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। तत्त्वज्ञानके ग्रन्थ किसीके लिये कठिन हो सकते हैं, पर सन्त-चरित्रोंका प्रेम ऐसा है कि उनसे किसीका भी जी नहीं ऊबता। सन्तरूपसे जब ब्रह्मज्ञान प्रत्यक्ष होता है तब उसकी अनुपम मधुरताका अनुभव होता है। अस्तु, सन्तोंके चरित्र गानेका जो यह हौसला है इसे भगवान् सदा सन्निधिमें रहकर पूरा करें, यही उनके चरणोंमें विनम्र प्रार्थना करके और श्रीएकनाथ महाराजसे यह प्रार्थना करके कि वह अपने चरणोंका प्रेम निरन्तर इस दासको देते रहें, मैं अब श्रीज्ञानेश्वर महाराजके परम पवित्र चरित्रकी ओर चलता हूँ।

पूना, मुमुक्षु-कार्यालय
पौष शुक्ल १, शाके १८३२

सन्तदासानुदास
लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर

हरिभक्तिपरायण श्रीपांगारकरजीकी यह प्रस्तावना इस ग्रन्थके प्रथम संस्करणकी प्रस्तावना है। इस प्रस्तावनासे पाठकोंको यह मालूम होगा कि एकनाथ महाराजका यह चरित्र किस चरित्रमालाका एक पुष्प है, ग्रन्थकारका इसमें क्या उद्देश्य है, सन्त-चरित्र-लेखनके विषयमें ग्रन्थकारके क्या विचार हैं और किस पद्धतिसे यह एकनाथ-चरित्र लिखा गया है। इस प्रस्तावनासे पाठकोंको यह भी मालूम होगा कि मूल ग्रन्थमें एक 'स्तुति-सुमनांजलि' अध्याय है जो इस अनुवाद-ग्रन्थमें छोड़ दिया गया है। इस छूटका कारण यह है कि इस अध्यायमें एकनाथ महाराजके सम्बन्धमें जिन महात्माओंकी कविताओंका संग्रह किया गया है, उनमेंसे एक छोड़ प्रायः सब नाम हिन्दी-पाठकोंके लिये अपरिचित हैं और मराठी पाठकोंको अपने अत्यन्त परिचित और परम वन्द्य एकनाथके इन वैसे ही परिचित स्तोताओंकी स्तुति कविताओंमें जो सहज स्नेह प्राप्त होता है वह अनुवादमें प्राप्त कराना बहुत कठिन है। तथापि यह इच्छा है कि इस अनुवाद-ग्रन्थके दूसरे संस्करणमें इस दृष्टिसे भी प्रयत्न किया जाय। मूल ग्रन्थके प्रथम संस्करणकी प्रस्तावनाका अनुवाद ऊपर दिया गया है और यही ग्रन्थकी प्रस्तावना है जो सब संस्करणोंकी मूल प्रस्तावना है। मूल ग्रन्थके दूसरे संस्करणकी विशेष बात यह है कि 'नाथवाणीका प्रसाद' पहले-पहल इसी संस्करणमें जोड़ा गया अर्थात् पहले संस्करणमें यह अध्याय नहीं था। हिन्दी-पाठकोंको यह प्रसाद पहले संस्करणसे ही प्राप्त होगा। मूल ग्रन्थके तीसरे संस्करणमें 'नाथवाणीका प्रसाद' वाले अध्यायमें भावार्थ-रामायणका अंश कुछ बढ़ाया गया है। हमारा यह हिन्दी-अनुवाद इस तीसरे संस्करणका ही अनुवाद है। अनुवादके विषयमें अनुवादकका वक्तव्य अलग दिया हुआ है।

विनीत

अनुवादक

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

नाथवाणीका प्रसाद

ॐ

श्रीएकनाथ-चरित्र

प्रपितामह भानुदास

शुद्ध बीजके ही मधुर और सुन्दर फल होते हैं।

—तुकाराम

श्रीएकनाथ महाराजके परदादा भानुदास आश्वलायन-शाखाके ऋग्वेदी महाराष्ट्र-देशस्थ[1] ब्राह्मण थे। इनका जन्म शाके १३७० (संवत् १५०५) के लगभग पैठण (प्रतिष्ठान) क्षेत्रमें हुआ। शककर्ता शालिवाहन उर्फ सातवाहनकी राजधानी इसी नगरमें थी और तबसे यह स्थान संस्कृत-विद्याका केन्द्रस्थान-सा हो रहा था। इसीसे इसे 'दक्षिणकी काशी' भी कहते थे। चारों वेद, छः शास्त्र और अठारह पुराणोंका जैसा अध्ययन प्रतिष्ठानमें होता था, वैसा दक्षिणमें अन्यत्र कहीं भी नहीं होता था। ज्ञानेश्वर प्रभृति भाई-बहनको[2] शुद्धि-पत्र लानेके लिये तेरहवें शतकमें आलन्दीके ब्राह्मणोंने पैठण ही भेजा था। ऐसी इस पुनीत विद्या-नगरीमें एक

---

१. महाराष्ट्र-ब्राह्मणोंके मुख्यतः तीन भेद माने जाते हैं—कोंकणस्थ या चित्पावन, देशस्थ और कर्हाडे। स्थान-भेदसे ही ये भेद हुए हैं, यह इन नामोंसे स्पष्ट है। खान-पान, भाषा-भाव, रीति-रस्म आदिमें परस्पर कोई भेद नहीं है। परन्तु परस्पर विवाह-सम्बन्ध प्रायः नहीं होता, बहुत कम होता है।

२. निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर या ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई चार भाई-बहन थे। इनके पिता विट्ठलपन्त नामक ब्राह्मण इनके जन्मके पूर्व ही काशी जाकर संन्यासी हो गये थे। पीछे काशीके रामानन्दस्वामीके उपदेशसे घर लौट आये, गृहस्थ होकर रहे और इनके ये सन्तान हुए। पिताके एक बार संन्यासी होकर फिर गृहस्थ हो जानेके कारण ये सन्तान जाति-बहिष्कृत माने गये। पर ये चारों भाई-बहन अपूर्व बुद्धिमान्, भक्तिमान् और शास्त्र-मर्यादा मानकर चलनेवाले थे। ज्ञानदेवकी प्रगाढ़ विद्वत्ता और अलौकिक सामर्थ्य देखकर पैठणके

पवित्र कुलमें भानुदासका जन्म हुआ था। भानुदास[१] दामाजी पन्तके समकालीन थे और शाके १३९०—९७ (संवत् १५२५—३२) का दुर्भिक्ष उन्होंने देखा था। भानुदासके समय पण्ढरपुरके भागवत-धर्मका[२] परिचय पैठणमें बहुत ही थोड़े कुलोंको था। ऐसे ही एक महान् भागवत-धर्मी कुलमें भानुदास उत्पन्न हुए। इनके पूर्वजोंका विशेष हाल नहीं मालूम होता; तथापि बचपनमें ही भानुदासमें जो गुण प्रकट हुए, उनसे उनके उच्च कुल-चरित्रका पता लगता है। जिस कुलको शुद्धाचरणका कुलजात

विद्वत्समाजने नम्रतापूर्वक इन्हें शुद्धि-पत्र दिया। वह ऐतिहासिक शुद्धि-पत्र अत्यन्त महत्त्वका है। ज्ञानेश्वर महाराजके चरित्रमें पाठक उसे देखेंगे।

१. दामाजी पन्त बड़े भगवद्भक्त थे। मुसलमान बादशाहके यहाँ नौकर थे। दुर्गादेवीके भीषण अकालमें इन्होंने दुर्भिक्षपीड़ितोंके लिये शाही अन्नागार खोलकर अन्न लुटवा दिया। इस अपराधके लिये जब इन्हें सजा दी जाने लगी तब कहते हैं कि पण्ढरपुरके विट्ठलभगवान्ने बिठू महारका रूप धारण कर अन्नका मूल्य सरकारी खजानेमें जमा कर दिया।

२. महाराष्ट्रमें कबसे भागवत-धर्म प्रचलित है। इसका कोई निश्चय नहीं किया जा सकता। आजकल जो भागवत-धर्म-सम्प्रदाय वहाँ प्रतिष्ठित है उसके मूल प्रवर्तक पुण्डलीक नामक महात्मा हुए। इन्होंने पण्ढरपुर-क्षेत्रमें महान् तप किया। उसी तपसे प्रसन्न होकर भगवान्ने जिस सगुण रूपमें उन्हें दर्शन दिये उसी रूपमें आज वहाँ श्रीविट्ठलभगवान्की मूर्ति स्थापित है। पुण्डलीकके सामने जब भगवान् प्रकट हुए तब पुण्डलीकने आसनके लिये पास पड़ी हुई एक ईंट दी। उसी ईंटपर वह खड़े हुए। आज भी पण्ढरपुरके मन्दिरमें भगवान् कटिपर हाथ रखे एक ईंटपर खड़े हैं। पण्ढरपुर ही महाराष्ट्रके भागवत-धर्म-सम्प्रदायका प्रधान केन्द्र है। ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम आदि महात्माओंने इस भक्तिप्रधान धर्मका आगे बहुत प्रचार किया। इस सम्प्रदायको वारकरी-सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदायके प्रधान उपास्य पण्ढरपुरके श्रीविट्ठल (विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण) भगवान्, मुख्य ग्रन्थ गीता और भागवत (ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवतके साथ), ध्येय अभेद-भक्ति, साधन नवविधा-भक्ति, महाव्रत एकादशी और प्रधान तीर्थस्थान पण्ढरपुर है।

सहज अभ्यास होता है उसमें उत्पन्न होनेवाले पुरुष प्रायः सदाचार-सम्पन्न ही होते हैं। भानुदास, भानुदासके परपोते एकनाथ और एकनाथके नाती मुक्तेश्वर—इस क्रमसे जिस कुलमें सौ-डेढ़-सौ वर्षके अन्दर तीन कुलदीपक प्रज्वलित हुए, उस कुलकी शुद्ध परम्पराके विषयमें और दूसरे प्रमाणकी आवश्यकता ही क्या है? एकनाथ-जैसे सत्पुरुषका जन्म किसी ऐसे-वैसे कुलमें नहीं हुआ करता। ईश्वरनिष्ठा, सदाचारसम्पन्नता, सत्यप्रीति, एकनिष्ठता इत्यादि सद्‌गुण जिस कुलमें परम्परासे चले आते हैं, उसीमें एकनाथ-जैसे अद्वितीय महात्मा उत्पन्न होते हैं। अनेक पीढ़ियोंका तप ऐसे महापुरुषावतारके रूपमें फलान्वित होता है। अस्तु। जिस महात्माकी भक्तिसे पहली बार भगवान्‌को यह कुल प्रिय हुआ, उन भानुदासका चरित्र ही इस अध्यायमें अवलोकन करें।

भानुदासका यज्ञोपवीत-संस्कार जब हो चुका, तब उनके पिताने उन्हें लौकिक विद्या सिखाना आरम्भ किया, इस अभिप्रायसे कि लड़का कुछ सीखकर साक्षर हो जायगा, परन्तु पूर्व-कर्मसे जिसकी बुद्धिपर हरिभक्तिके ही दृढ़ संस्कार जमे हुए थे उसे लौकिक विद्या कैसे भाती? पिताने बहुत समझाया-बुझाया, डराया-धमकाया, पर उससे कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन पिताके बहुत डाँटने-डपटनेपर दस वर्षके बालक भानुदास रूठकर, गाँवके बाहर एक जीर्ण मन्दिर था, उसके तहखानेमें जाकर छिपकर बैठ गये। तहखानेमें अँधेरा था, कहीं प्रकाश नहीं; वहाँ कोई मनुष्य आता-जाता भी नहीं दिखायी देता था, एकदम सन्नाटा था। ऐसे स्थानमें भगवान् सूर्यनारायणकी एक मूर्ति थी। भानुदास वहाँ सात दिन छिपे रहे। पिताको लड़केका कोई पता नहीं चला, वह विवश होकर शोक करने लगे। भानुदासने सूर्यनारायणके चरण पकड़े, प्रेमाश्रुओंसे उन्हें नहलाया और

गद्गद होकर उनसे करुण प्रार्थना की। दो दिन अन्न-जलके बिना बीतनेपर तीसरे दिन सूर्योदयके समय एक दिव्य ब्राह्मण दूधका एक पात्र लिये उनके सामने प्रकट हुआ। उसने कहा— 'मैं विश्वचक्षु सूर्यनारायण हूँ, तुम्हारे पिताने बहुत कालतक मेरी आराधना की, इससे मेरे प्रसादसे तुम्हारा जन्म हुआ है। इसी जन्ममें तुम्हें परमात्मलाभ होगा और तुम कृतार्थ होगे।' यह कहकर ब्राह्मणने भानुदासको भरपेट दूध पिलाया और उसके सिरपर वरदहस्त रखा। इस प्रकार सात दिनतक रोज भानुदासको दूध मिलता रहा। दसवें दिन भानुदास मन्दिरके बाहर निकले। पिताने अपने पुत्रको पाया। सबको बड़ा हर्ष हुआ। सूर्यभगवान्के प्रसादकी कथा शीघ्र ही फैल गयी और भानुदासका पहले जो नाम था वह बदलकर भानुदास (याने सूर्योपासक) हो गया। कहते हैं कि इसके बाद भानुदासने तीन गायत्री-पुरश्चरण किये। एकनाथने भी अपने भागवत-ग्रन्थमें भानुदासको वन्दन करनेके प्रसंगसे इस कथाका वर्णन किया है।

यथासमय भानुदासका विवाह हुआ। कुछ वर्ष बाद भानुदासके माता-पिता परलोक सिधारे और गृहस्थीका सब भार भानुदासके सिर पड़ा। परन्तु गृहस्थीमें उनका ध्यान नहीं था। पाण्डुरंगकी भक्तिके सिवा और कोई धन्धा उन्हें प्रिय नहीं था। वह न कोई व्यापार करते, न किसीकी नौकरी ही। इस निःस्पृह वृत्तिके कारण घरमें अन्न-वस्त्रका जुटना भी कठिन हो गया। बाल-बच्चोंको दरिद्रताके कष्टोंमें ही रहना पड़ा। घरमें बाल-गोपालोंके रहते भी गृहिणीका मन सदा उदास रहता था। भानुदासका हाल ऐसा बेहाल देखकर उसके सगे-सम्बन्धियोंने उन्हें कुछ पूँजी जुटा दी और कहा कि, 'इससे आप कपड़ेकी दूकान कर लीजिये, जो लाभ हो उससे परिवारका पालन-पोषण कीजिये और मूल

धीरे-धीरे चुका दीजिये।' भानुदासने कहा, 'अच्छा' साथ ही सबके सामने यह प्रतिज्ञा भी की कि, 'प्रारब्धसे जो कुछ मिल जायगा उसीसे निर्वाह करूँगा, पर प्राणोंपर भी बीतेगी तो भी मिथ्या भाषण नहीं करूँगा।' कपड़ा लेनेके लिये कोई ग्राहक दूकानपर आता तो आप उससे कहते—'यह खरीद है, मूलपर इतना नफा है, इसमें कुछ कम न होगा, लेना हो लीजिये; नहीं तो नहीं सही।' जिस-तिसको यही पाठ सुनाते और मन न भरनेसे ग्राहक जब लौट जाता तब मस्त होकर भजन करने लगते। घर-बाहर सर्वत्र नाम-स्मरणमें ही इनके दिन बीतते थे। इनकी सरलता देख व्यापारी लोग यही कहते कि इसके नसीबमें भीख ही बदी है! दुकानदारी भी कहीं बिना झूठ बोले, बिना धूर्तता किये होती है? यही वे लोग समझाते हैं, जिन्हें इस झूठ और धूर्तताका अभ्यास होता है। जब कोई नवयुवक पहले-पहल व्यापार करने चलता है और दुनियाकी चालोंसे अनजान रहता है तो वह सचाईके साथ व्यापार करना चाहता है। पर आगे चलकर जैसे-जैसे वह अन्य व्यापारियोंके ढंग देखता है और पास रुपया भी आने लगता है वैसे-वैसे वह लोभका पुतला बनता और शील खो देता है, उसी प्रवाहमें बहने लगता है। यही सामान्य नियम है। पर भानुदास असामान्य थे। सचाईके साथ सब कामोंको करनेका निश्चय रखना और तदनुसार लोभ-मोह आदिके वशमें न होकर निःशंक मनसे आचरण करना, इसके लिये बड़े धैर्यकी आवश्यकता होती है। ऐसा सात्त्विक धैर्य भानुदासमें था। विघ्नकी कोई परवा न करके वह अपने व्रतपर डटे रहे। व्यापारमें पहले उन्हें घाटा हुआ, दूकान चलती नहीं थी, साहूकार तकाजा करने लगे, लोग उनकी अवहेलना करने लगे, बराबरीके व्यापारी सत्यनिष्ठाकी दिल्लगी उड़ाने लगे। इस तरह अनेक प्रकारसे

भानुदासको व्यापारसे बड़ा कष्ट हुआ। सत्यनिष्ठासे किसीका बुरा नहीं होता, असत्यसे किसीका कल्याण नहीं होता, और सत्यनिष्ठ पुरुषोंपर जो विपत्तियाँ आती हैं, वे बहुत कालतक नहीं ठहरतीं; इस नियमके अनुसार तीन-चार वर्ष बाद सारी परिस्थिति पलट गयी। भानुदास बड़े ईश्वर-भक्त और सत्यनिष्ठ पुरुष हैं। उनकी यह ख्याति सर्वत्र फैलकर स्थिर हो गयी; इससे सब ग्राहक उन्हींकी दूकानपर आने लगे; कुछ ही वर्षमें भानुदासको खूब धन मिला और उनका दारिद्र्य दूर हो गया, बाल-बच्चोंके सब कष्ट दूर हुए और घरमें लक्ष्मी विराजने लगी।

भानुदासकी साख जम गयी, पर इससे उनके अनेक साथी व्यापारी उनसे डाह करने लगे। मनुष्यका कुछ ऐसा स्वभाव ही है कि अपनेसे अधिक दूसरेका सुख उससे नहीं सहा जाता। कपड़ेके व्यापारी अपने-अपने घोड़ेपर कपड़ा लादकर आस-पासके गाँवोंमें बाजारवाले दिन कपड़ा बेचने जाया करते थे। एक दिनकी बात है, सब व्यापारी बाजार-हाटके कामसे छुट्टी पाकर सूर्यास्तके समय लौटकर धर्मशालामें ठहरे। इनमें भानुदास भी थे। मध्यरात्रिका समय था, कहींसे मृदंगके बजनेकी आवाज आयी। भानुदासने यह जाना कि कहीं हरि-कीर्तन हो रहा है। अपने घोड़े और मालपर ध्यान रखनेके लिये अन्य साथियोंसे कहकर बड़े आनन्द और उत्साहके साथ वह हरि-कीर्तन सुनने चले गये। उधर वह भजनानन्दमें मग्न हो गये और इधर उनके कुछ ईर्ष्यालु साथियोंने उनका घोड़ा खोल दिया, उनके कपड़ेकी गाँठ एक खाईमें डाल दी और ऐसे आकर सो गये जैसे कुछ जानते ही न हों कि क्या हुआ और क्या नहीं हुआ। भगवान्‌को इन दुष्टोंकी यह दुष्टता सह्य नहीं हुई। उसने इन सन्त-द्वेषी व्यापारियोंकी आँखें खोलनेके लिये एक माया रची। रात दो

बजेके लगभग चोरोंका एक दल धर्मशालामें घुसा। इसने इन व्यापारियोंको खूब पीटा और फिर उनके घोड़े और सब माल लूट ले गये। भानुदास-जैसे साधु पुरुषके साथ हमलोगोंने ऐसी दुष्टता की, इस बातका कुछ व्यापारियोंको बड़ा दुःख हुआ और वे भानुदासके आनेकी बाट जोहते हुए बैठे रहे। हरि-कीर्तन जब समाप्त हुआ और भानुदास वहाँसे लौटे तब रास्तेमें एक ब्राह्मण उनके घोड़ेकी लगाम पकड़े मिला। भानुदासने उससे अपना घोड़ा लिया और धर्मशालामें पहुँचे। रातकी घटनाका सब हाल उन्हें मालूम हुआ। कुछने भानुदासकी कपड़ेकी गाँठ ला दी और अपराधकी क्षमा माँगी। भानुदासका घोड़ा उन्हें वापस मिला, सब माल भी सुरक्षित मिला, चोरोंकी मारसे भी बचे और रातभर हरि-कीर्तनका आनन्द लेते रहे और उनसे ईर्ष्या करनेवालोंके घोड़े और सब माल चोरोंके हाथ लगा, ऊपरसे ब्याजमें मार भी पड़ी। इन बातोंका विचार करते हुए भानुदास बैठे थे। उन्हें यह ध्यान हुआ कि स्वयं भगवान्‌ने मेरी रक्षा की और मेरे घोड़ेकी लगाम जिन्होंने मेरे हाथ दी, वह ब्राह्मण-वेशधारी पुरुष स्वयं विट्ठलभगवान् ही थे। यह सोचकर भानुदासका हृदय प्रेमसे गद्‌गद हो गया, दामाजीके लिये बिठू[1] महार[2] का भेष धारण करनेवाले भगवान्‌ने भानुदासके लिये एक पहर अश्वपालका काम किया। यह उस भक्तवत्सल भगवान्‌की महिमाके लिये तो उपयुक्त ही हुआ; परंतु जिस कारणसे दूसरोंकी ईर्ष्या हुई और भगवान्‌को कष्ट हुआ उस व्यापारको ही भानुदासने छोड़ देनेका

१. बिठू, विट्ठल, विठोबा, 'विष्णु' शब्दके अपभ्रंश हैं। पण्ढरपुरके विट्ठल या विठोबा साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। उनके साथ रुक्मिणी माता भी हैं, जो रखुमाई आई (माई) कहलाती हैं।

२. महार अन्त्यजोंकी एक जाति है। झाड़ू देना, चौकीदारी करना, मरे हुए जानवरोंको उठा ले जाना ये सब काम इस जातिके लोग करते हैं।

निश्चय किया। उन्होंने अपना सब कपड़ा अन्य व्यापारियोंको बाँट दिया और आप निश्चिन्त हो गये।

भानुदास अब व्यापारसे सदाके लिये अलग ही हो गये। मानाभिमान छोड़कर दिन-रात ईश्वरका भजन करने लगे। महीपति बाबाने अपनी प्रेमभरी वाणीसे भानुदासके इस समयके जीवनक्रमका इस प्रकार वर्णन किया है—

'उनको किसी सांसारिक सुखके लिये किसीका मुँह नहीं देखना पड़ता था। प्रपंच-चिन्ता उनकी बिलकुल छूट गयी; स्त्री-पुत्रादिके साथ रहते हुए भी उनकी उदासीन वृत्ति थी। वह आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी* के अवसरपर पण्ढरपुरकी यात्रा करते थे और वहाँ रेतीले मैदानमें प्रेमसे भगवद्भजन करते हुए तल्लीन हो जाते थे। नाना प्रकारकी कवित्व-कलासे भगवान् मेघश्यामके रूप और गुणोंका ध्यान करते थे। हृदयमें जो भगवत्प्रेम था वही कण्ठसे कीर्तनके रूपमें बाहर निकलता था। उनकी वाणी सुनकर दुष्ट और मूर्ख लोग भी प्रेमसे मुग्ध हो जाते थे। उन्हें भी सदा इनके मुखसे भगवान्के गुण-गान सुननेकी इच्छा बनी रहती थी। भानुदास 'यदृच्छालाभसन्तुष्ट' थे। कभी किसीसे कोई याचना नहीं करते थे। जो अन्न-वस्त्र मिल जाता उसीसे आनन्दके साथ निर्वाह करते थे। अपना-पराया-भाव भी उनमें नहीं रह गया। सर्वत्र वह एक ही भाव अनुभव करने लगे। चित्तमें कोई विकल्प ही न रहा।

भानुदास ऐसे परम भक्त हुए। भक्तिके आनन्दमें उनके मुखसे

---

* वारकरी सम्प्रदायमें एकादशीका बड़ा माहात्म्य है और आषाढ़ी तथा कार्तिकी एकादशीके लिये तो यह नियम है कि इस दिन पण्ढरपुर जाकर वहाँ भगवान्के दर्शन करने चाहिये। पण्ढरपुरकी इस यात्राको वारी कहते हैं और इसीलिये यह सम्प्रदाय वारकरी-सम्प्रदाय कहलाता है।

अनेक अभंग निकले। ये अभंग उनके शुद्ध प्रेमके दर्पण हैं। उनके ऐसे सौ अभंग आज भी मिलते हैं। इनमेंसे कुछका आशय नीचे देते हैं—

'इन कानोंसे तेरा नाम और गुण सुनूँगा। इन पैरोंसे तीर्थोंके ही रास्ते चलूँगा, यह नश्वर देह और किस काम आवेगी? भगवन्! मुझे ऐसी प्रेम-भक्ति दे कि मुँहसे तेरा ही नाम अखण्ड-रूपसे लेता रहूँ। ....पेटके लिये कोई धन्धा व्यर्थके लिये मैं नहीं करूँगा, उच्छिष्ट प्रसादसे क्षुधा हरूँगा। अपनी स्तुति और दूसरोंकी निन्दा, हे गोविन्द! मैं कभी न करूँ। सब प्राणियोंमें हे राम! मैं तुझे ही देखूँ और तेरे प्रसादसे ही सन्तुष्ट रहूँ। हे देव! भानुदास और कुछ नहीं माँगता। वैकुण्ठलोकमें हमें कमी ही किस बातकी है?

'बैठकर रामनामके ध्यानका अनुष्ठान करें, उसीमें मनको दृढ़कर एकविध भावमें मगन हों, इससे बढ़कर कोई साधन नहीं है। परद्रव्य और परदाराका छूत मानें, इससे बढ़कर निर्मल कोई तप नहीं है। भानुदास कहते हैं कि इस कलियुगमें रामनामकी पताका फहरा दी है।

'अब उन्मनी-समाधि नहीं याद आती; विट्ठलभगवान्‌को देखनेसे ही मन आनन्द-ही-आनन्द हो जाता है। यही भगवान् परमानन्द हैं, आनन्दके कन्द हैं। मनमें भगवान्‌का रूप ऐसे आकर बैठ गया है कि जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति कोई भी अवस्था याद नहीं आती। विश्रान्तिका परम स्थान विट्ठल-निधान ही जो मिल गया।

'जो अनादि परब्रह्म निजधाम है वही यह ईंटपर खड़ी मूर्ति मेघश्याम है। जिसे देखकर श्रुति 'नेति नेति' कहकर लौट जाती है, वही परब्रह्ममूर्ति इस ईंटपर है। .....ज्ञानियोंका जो ज्ञान है, मुनिजनोंका जो ध्यान है, इस ईंटपर वही परब्रह्म-निधान है।

पुण्डलीकके तपसे यह चीज मिली है। भानुदास यही माँगता है कि भगवन्! यही वर दो कि मैं तेरी सेवा करूँ।

'हृदयको दृढ़ करके मैं जो आया तो गुसाईं मिल गये और जन्म-मरणका बन्धन टूट गया। जो इच्छा की वह मिला। मैं धन्य हुआ, कृतकृत्य हुआ। अब जितने जन्म हों सब तेरी सेवाके लिये हों।'

भानुदास परम प्रेमी भक्त थे। सत्यनिष्ठा, आत्मस्तुति और परनिन्दाका त्याग, परद्रव्य और परदाराका छूत, सर्वत्र समभाव, नाम-संकीर्तनकी प्रीति और परमात्मप्राप्तिका आनन्द इत्यादि उनकी दैवी सम्पत्ति थी और उनकी यह सम्पत्ति उनके अभंगोंमें भरी हुई है। एकादशीका व्रत और पण्ढरीकी यात्राका नियम उनका अखण्ड था। प्रति आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशीको पण्ढरपुरकी यात्रा वह अवश्य करते थे। आँखें भरकर ईंटपर खड़े पण्ढरीनाथके लावण्य-रूपका दर्शन करनेमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था और इस आनन्दका उन्होंने जहाँ-तहाँ वर्णन किया है। इसीका उन्होंने सबको उपदेश भी किया है। 'उस सगुण रूपपर काय, वाक् और मन लुब्ध हो जाते हैं।' यह उनका अनुभव था। उन्होंने ईश्वरसे यही प्रार्थना भी की है कि जन्म-जन्मान्तरमें मेरी यही इच्छा पूरी करो कि मैं सदा भगवन्नाम लेता रहूँ और मुझे सदा सन्तोंका समागम प्राप्त हो। पण्ढरीनाथने भानुदासको अपने स्वरूपमें स्थान दिया। भानुदास धन्य हुए। उन महाभागवतको मेरे सहस्रों प्रणाम पहुँचें।

भानुदास महाभागवत तो थे ही, पर उन्होंने महाराष्ट्रमण्डलकी एक और बहुत बड़ी सेवा की है। श्रीविट्ठलकी मूर्ति भानुदास अनागोंदीसे वापिस ले आये इससे उनका यश सर्वत्र फैल गया। वह प्रसंग इस प्रकार है—भानुदासके समय तुंगभद्रा-नदीके

तटपर विजया नगर उर्फ अनागोंदी-राज्यमें कृष्णराय नामक बलशाली राजा राज करते थे। विजया नगरमें इन-जैसा पराक्रमी, दृढ़, तेजस्वी, विद्वान् और धर्मनिष्ठ राजा दूसरा नहीं हुआ। इन्होंने बाईस वर्ष (शाके १४३०—१४५२) राज्य किया। पूर्व, पश्चिम और दक्षिण इन तीन दिशाओंमें इन्होंने अपने राज्यको समुद्रतटतक विस्तृत किया था। इनका ऐसा प्रताप था कि इनका कोई शत्रु ही नहीं रह गया। बीजापुरके इस्माइल आदिलशाहको परास्त करके इन्होंने रामेश्वरसे लेकर बेलगाँवतक अपना सिक्का चलाया। अनेकों राजाओंको पादाक्रान्त कर डाला, अनेक दुर्ग बनवाये, जमीनकी पैमाइश कराकर राज-कर वसूल करनेकी पद्धति निश्चित की, नहर खुदवाये, व्यापार, कृषि, कला-कौशल और नाना प्रकारकी विद्याओंको प्रोत्साहित किया और हिन्दू-धर्मका सब ओर यश फैलाया। तुंगभद्राका विश्वविख्यात नहर इन्होंने ही खुदवाया। हुबली, बंगलूर, बेल्लारी आदि व्यापारिक केन्द्र इन्होंने ही कायम किये। इनके आश्रयमें आठ विद्वद्रत्न थे जो 'दिग्गज' कहाते थे। इन्हींमें सुप्रसिद्ध पण्डित अप्पय्य दीक्षित थे। तेन्नलु रामकृष्ण नामक बड़े मसखरे और चतुर कवि इनके मित्र थे। इस कविके चातुर्यकी अनेक कथाएँ तेलगू-भाषामें प्रचलित हैं। इन राजा कृष्णरायका प्रजापर अत्यन्त प्रेम था, प्रजा भी इन्हें वैसा ही मानती और चाहती थी। इन्होंने अनेक मन्दिर बनवाये और उनके खर्चके लिये जागीरें नियत कर दीं। इन कृष्णरायके साथ भानुदासका भी कुछ सम्बन्ध है।

राजा कृष्णराय एक बार देव-दर्शनार्थ पण्ढरपुर गये थे। वहाँ वारकरियोंका प्रेमपूर्ण कीर्तनानन्द देखकर यह बहुत प्रसन्न हुए। श्रीविट्ठलमूर्तिसे उन्हें इतना प्रेम हो गया कि उस मूर्तिको अपनी राजधानीमें ले जाकर प्रतिष्ठित करनेकी उनकी इच्छा हुई। उनके

लिये ऐसा करना कुछ कठिन नहीं था। स्थान-स्थानमें उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि पण्ढरपुरसे अनागोंदीतक उस मूर्तिको बड़ी शुचिताके साथ ले गये। वहाँ वह मूर्ति यथाविधि प्रतिष्ठित की गयी, बड़े ठाटके साथ उसकी सार्वजनिक पूजा हुई, नाना प्रकारके भोग चढ़ाये गये, अनेक स्वर्णरत्नालंकार पहनाये गये और नवरत्नोंका हार अर्पण किया गया। मूर्तिपर अवश्य ही उन्होंने बड़ा कड़ा पहरा रखा और पूजा-अर्चा बड़ी भक्तिके साथ होने लगी। इधर आषाढ़ी एकादशीके दिन चारों ओरसे वारकरी पण्ढरी पहुँचे। उन्होंने देखा, देवालयमें देवता नहीं हैं! देखकर सब बहुत उदास हुए। कुछ भक्तोंने तो ऐसा निश्चय किया कि जबतक देवदर्शन नहीं होंगे तबतक यहाँसे टलेंगे ही नहीं। इस निश्चयके साथ वे गरुडपार* के मैदानमें ही पड़े रहे। राजाके बिना जैसी प्रजा या सिन्दूर बिना जैसे किसी सुवासिनीका मुख, वैसे ही श्रीविट्ठलके बिना वह भक्तसमुदाय उदास हो गया। आजतक जिन चरणोंपर हमलोगोंने सुमनोंकी तरह अपने सिर अर्पण किये, ईंटपर खड़ी मूर्तिका जो सुन्दर स्वरूप 'सब सुखोंका आगर' कहकर आँखें भरकर देखा, जिसके दर्शनमात्रसे लाखों जीवोंको ब्रह्मत्व प्राप्त हुआ, नामदेवादि भक्तोंने जिसे बुलवा दिया; वह कटिपर कर धरे प्रेमी भक्तोंको भक्ति-सुखामृत-पान करानेवाला श्रीविट्ठलका सगुण रूप ही इन आँखोंसे देखें और स्वसुखामृतका अखण्ड आस्वाद लें। यह जिन पण्ढरीमें आये परम आर्त और निस्सीम भक्तोंकी इच्छा थी उनमें सबके आगे थे भानुदास। उन्होंने भक्तोंसे कहा, 'मैं अनागोंदी जाकर श्रीविट्ठलको

---

* पण्ढरपुरमें श्रीविट्ठलभगवान्के मन्दिरमें चाँदीका एक खम्भा है जिसे गरुडस्तम्भ कहते हैं। इसके अतिरिक्त मन्दिरके बाहर एक विस्तीर्ण आँगन है जिसमें गरुडजीकी एक प्रस्तर मूर्ति है। यही आँगन गरुडपार कहलाता है।

ले आता हूँ। आपलोग तबतक यहीं निश्चिन्त होकर अखण्ड नामघोष करते रहें।' यह कहकर भानुदास अनागोंदी चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने तुंगभद्रा नदीमें स्नान किया और नित्यकर्म करके प्रभुकी खोजमें निकले। भानुदास अपने सदाचरण, भक्ति और ब्रह्मानुभवसे पाण्डुरंगके प्यारे हो ही चुके थे। मध्य रात्रिके लगभग वह राजप्रासादके समीप पहुँचे। दरवाजोंमें लगे ताले आप ही खुल पड़े और एक क्षणके अंदर ही भानुदास आराध्यदेव श्रीविट्ठलमूर्तिके सामने खड़े हो गये। भानुदासको उस समय अपनी देहका भान नहीं था। उन्होंने भगवान्‌के चरणोंको दृढ़ आलिंगन किया। प्रेमाश्रुओंसे चरणोंको नहलाकर भानुदासने भगवान्‌से प्रार्थना की—'भगवन्! आपके बिना सब भागवत-भक्त दीन हो गये हैं और उनके मुँहसे शब्द नहीं निकलता है। रखुमाई माई (रुक्मिणी माता) भी उदास हो गयी हैं और आश्चर्य करती हैं कि भगवान्‌ने ऐसा मौन क्यों धारण किया? भगवन्! अब आप हमारे संग चले चलिये।'

पत्थरको भी पिघला देनेवाली दीनतासे भानुदासने भगवान्‌के चरण पकड़े। भगवान्‌ने भी तुरंत अपना प्रसाद दिया। भगवान्‌के गलेमें जो नवरत्न-हार था वह पुष्पमालाके साथ टूटकर भानुदासके हाथोंपर गिरा। इसे महाप्रसाद जानकर भानुदास राजप्रासादके बाहर निकले। तब सब दरवाजे पहलेकी तरह बंद हो गये। भोरमें जब पुजारी भगवान्‌की आरती करने आये तब उन्होंने देखा कि ठाकुरजीके गलेमें नवरत्न-हार नहीं है। तुरंत उन्होंने राजाको खबर दी। सब लोग आश्चर्य करने लगे कि इतना कड़ा पहरा और पक्का बंदोबस्त होते हुए यह कैसा चोर था जो राजप्रासादमें घुसा और नवरत्न-हार उड़ा ले गया। नगरमें चारों ओर राजकर्मचारी तहकीकात करने लगे, तब तुंगभद्राके तटपर निःशंक-मनसे गाते-

नाचते श्रीविट्ठलरूपके साथ समरस हुए भानुदास दिखायी दिये, और उनके पास श्रीविट्ठलके गलेका नवरत्न-हार भी पुष्पहारके साथ दिखायी दिया। राजा कृष्णराय अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने चोरको सूलीपर चढ़ानेकी आज्ञा दी। सूलीके पास पहुँचाये जाते ही भानुदासने कहा—

'आकाश गरजता हुआ देखे, अखिल ब्रह्माण्ड भंग हो जाय और बड़वानल त्रिभुवनको ग्रास कर ले तो इससे क्या, मैं तो हे विट्ठल! तुम्हारी ही बाट जोह रहा हूँ। सातों समुद्र मिलकर एक हो जायँ, यह पृथ्वी चाहे उसमें डूब जाय, अथवा पंचमहाभूत प्रलयको प्राप्त हों; तो भी हे विट्ठल! तुम्हीं तो मेरे संगी हो। चाहे जैसा जड-भार मुझपर आ पड़े पर मैं तुम्हारा नाम न छोड़ूँगा, जैसे पतिव्रता अपने प्राणेश्वरका नाम नहीं छोड़ती। यही मेरा निश्चय है।'

इतना अटल और ऐसा प्रचण्ड निश्चय, ऐसा अलौकिक एकविध भाव जिस भक्तका हो, क्या प्रह्लादप्रिय पाण्डुरंग उसकी कभी उपेक्षा कर सकते हैं? ऐसा कौन-सा संकट है जिसमेंसे भगवान् भक्तको न उबारें? भगवान्ने क्या कभी अपने किसी भक्तकी उपेक्षा की है? भक्त भानुदासको जो ताप हुआ उससे 'मातासे भी अधिक कोमल-हृदय, चन्द्रमासे भी अधिक शीतल और जलसे भी अधिक द्रवीभूत, प्रेमके अगाध समुद्र भक्तवत्सल पाण्डुरंगका हृदय उसी क्षण उमड़ पड़ा और क्षणमात्रमें उस सूलीमें पत्ते निकल आये, क्षणार्धमें फूल-फलसे लदकर वह एक सुहावना वृक्ष बन गया। भगवान्की लीला अपरम्पार है।' यह चमत्कार देखकर राजकर्मचारी राजाके पास गये और उन्हें सब हाल कह सुनाया। यह सुनकर राजाका हृदय एक बार काँप गया और उन्होंने समझा कि जिसे चोर समझकर सूली चढ़ानेकी आज्ञा दी गयी वह चोर नहीं, कोई महान्

भगवद्भक्त है। भानुदासको पालकीमें बिठाकर वह राजप्रासादमें ले गये। श्रीविट्ठलके दर्शन होते ही भानुदास गद्गद हो गये, उन्हें रोमांच हो आया और उनके नेत्रोंसे आनन्दवारिकी वर्षा होने लगी। भानुदासकी अपूर्व भक्ति देखकर राजाको परम सन्तोष हुआ और उन्होंने भानुदासको श्रीविट्ठलकी मूर्ति पण्ढरपुर ले जानेकी अनुमति दी। घट-घटमें विराजनेवाले अनन्त ब्रह्माण्डव्यापी भगवान् भक्तके लिये छोटे-से बन गये और श्रीविट्ठलकी उस साँवरी मूर्तिको साथ लिये भानुदास वहाँसे विदा हुए। भानुदास श्रीविट्ठल-मूर्ति लिये आ रहे हैं यह सुनकर पण्ढरपुर तथा आस-पासके हजारों भावुक वैष्णव वीर झण्डी-पताका लिये ताल-मृदंग बजाते हुए उनकी अगवानीके लिये पहुँचे। चार दिन पण्ढरपुरमें आनन्दका मानो समुद्र ही उमड़ पड़ा। रथपर भगवान्‌को बैठाकर उनका जुलूस निकाला गया। वह दिन कार्तिकी एकादशीका था। अबतक प्रत्येक कार्तिकी एकादशीको रथका जुलूस निकलता है। यह वार्षिक जुलूस, भानुदास अनागोंदीसे विट्ठल-मूर्ति ले आये, उसी मंगल दिनका स्मारक है।

पण्ढरपुरमें भक्तोंने भानुदासका जय-जयकार किया। श्रीविट्ठल-मूर्ति पण्ढरपुरमें न रहनेसे पण्ढरपुरका सम्प्रदाय भी भंग होनेका समय आ गया था, भक्त भानुदासकी भक्तिसे वह समय टल गया और भगवान्‌की मूर्ति फिर पण्ढरपुरमें आ विराजी, इसके लिये भक्तोंने भानुदासकी स्तुति की, उन्हें अनेक धन्यवाद दिये। 'सूखी लकड़ीमें अंकुर निकले। भगवान् फिर पण्ढरपुर आ गये।' इस आशयके अभंगपर गरुडपारके समीप भानुदासका कीर्तन हुआ। भक्तमण्डलपर भानुदासके अनन्त उपकार हैं। भानुदासका भक्ति-ऋण भगवान्‌ने भी उनके कुलमें श्रीएकनाथ-जैसे विश्वविख्यात वन्दनीय पुरुष उत्पन्न करके शोध किया। उपर्युक्त घटनाके

पश्चात् भानुदासकी भक्तिका परम विकास हुआ। पैठणमें एक दिन रातको हाथमें वीणा लिये भानुदास भजन करते-करते प्रेमसे भगवान्‌के ध्यानमें ऐसे लीन हो गये कि उनके सामने स्वयं श्रीपाण्डुरंग प्रकट हुए। धन्य भानुदास! धन्य एकनाथ! और धन्य उनका पावन कुल! भानुदासके पुत्र चक्रपाणि, चक्रपाणिके सूर्यनारायण और सूर्यनारायणके एकनाथ हुए। एकनाथकी माताका नाम रुक्मिणी था। भानुदासके पावन कुलमें अपना जन्म हुआ इसे एकनाथ अपना अहोभाग्य समझते थे।

श्रीएकनाथने अपने 'रुक्मिणी-स्वयंवर' ग्रन्थमें भानुदासके विषयमें स्वयं ही कहा है—

मी जन्मलों धन्यवंशीं । म्होणनि हरिभक्ति आम्हांसी ॥
सन्त सोइरे निज सुखासीं । वंश कृष्णासी निरविला ॥

[धन्यवंशमें मेरा जन्म हुआ, इसीसे हमें हरि-भक्ति प्राप्त हुई; सन्त-सज्जन हमारे सगे-सम्बन्धी हुए और हमारा वंश श्रीकृष्णको अर्पित हुआ।]

श्रीशुकाष्टककी टीकामें भी लिखा है—

पूर्वी भानुकृपा सौरस । पितामहपिता भानुदास।
त्यापासो तिहा वंश । जनार्दनप्रिय ॥

[पहले सूर्यभगवान्‌की कृपा हुई जिससे हमारे पितामहपिता [प्रपितामह] भानुदास हुए। उन्हींसे यह वंश जनार्दनको प्रिय हुआ।]

अपने भागवत-ग्रन्थके उपोद्‌घातमें भानुदासको वन्दन करते हुए एकनाथ महाराजके ये उद्‌गार हैं—'पितामहके पिता भानुदासको अब हम वन्दन करते हैं, जिनके कारण भगवान्‌को हमारा वंश सब प्रकारसे प्रिय हुआ, जिन्होंने बचपनमें भानु (सूर्य) की सेवा की और स्वयं चिद्भानु होकर, मानाभिमानको जीतकर जो 'भगवत्पावन' हुए जिनकी 'पदबन्धप्राप्ति'से श्रीविट्ठल-मूर्तिके

दर्शन हुए। उन भानुदासके पुत्र चक्रपाणि हुए, चक्रपाणिके सुलक्षण सुतका नाम सूर्य रखकर भानुदास निजमें निज होकर रहे। उन सूर्यके प्रभा-प्रताप-किरणसे माता रुक्मिणी प्रसूत हुईं जो मेरी माता हैं। ग्रन्थारम्भमें पूर्वजमालाको यह वन्दन किया है। यह मेरी भाग्यलीला धन्य है जो ऐसे वैष्णवकुलमें मेरा जन्म हुआ।'

इन उद्गारोंसे यह मालूम हो जाता है कि एकनाथ भानुदासको कितना मानते थे। भानुदासके कारण हमारा वंश भगवान्‌को प्रिय हुआ और ऐसे वैष्णव-पवित्र कुलमें मेरा जन्म हुआ यह मेरा अहोभाग्य है, इत्यादि प्रेमभरे उद्गार हृदयको हिलानेवाले हैं। बड़े सात्त्विक अभिमानके साथ एकनाथ कहते हैं कि भानुदासके पावन कुलमें मेरा जन्म हुआ। इसीसे भगवद्-भक्तिमें मेरी प्रीति हुई। इस वैष्णव-कुलमें जन्म होनेपर अपनी 'भाग्यलीला'को एकनाथने 'धन्य' कहा है। इस धन्योद्गारका मर्म अनुभवसे ही जाना जा सकता है। भानुदासकी सत्यनिष्ठा, उनकी एकविध भक्ति और उनका शुद्धाचरण इत्यादि गुणोंका विचार करनेसे यही प्रतीत होता है कि '**शुचीनां श्रीमतां गेहे**' एकनाथ एक योगभ्रष्ट महात्मा ही उत्पन्न हुए। इससे शुद्ध कुल-परम्पराकी रक्षाका कितना महत्त्व है यह भी प्रकट होता है।

एकनाथके पिता सूर्यनारायणका नामकरण भानुदासने ही किया था और इसके बाद ही उनका देहावसान हुआ। यह श्रीएकनाथके ही उपर्युक्त लेखसे स्पष्ट है। यह घटना शाके १४३५ (संवत् १५७०) के लगभग हुई होगी।

बाल्यकाल

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्

—गीता ६। ४३

देह तो छोटी-सी ही होती है, पर उसके आत्मज्ञानकी पौ फटती है और ऐसा प्रकाश फैलता है जैसा सूर्यके आगे उसका अपना प्रकाश फैलता है। उसे अवस्थाकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, वयसकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, बचपनमें ही सर्वज्ञता उसके गलेमें जयमाल पहनाती है।

—ज्ञानेश्वरी ६। ४५२-५३

भानुदासने अपने पुत्रका नाम 'चक्रपाणि' और पोतेका नाम 'सूर्यनारायण' रखा। 'सूर्यनारायण' शिशु ही थे जब भानुदास परलोक सिधारे। इसके बीस वर्ष बाद—शाके १४५५ के लगभग—सूर्यनारायणके, रुक्मिणीके गर्भसे 'एकनाथ' उत्पन्न हुए। एकनाथके जन्मकालमें मूल नक्षत्र पड़ा था। इससे जन्मते ही पिताका और कुछ ही काल बाद माताका देहान्त हो गया। दादा और दादी, इन्हें बचपनमें प्रेमसे एका (एक्या) कहकर पुकारते थे। जन्मते ही माँ-बापको ग्रास करके बचे हुए एकनाथके नामका, अध्यात्मदृष्टिसे, जो विलक्षण और गम्भीर अर्थ होता है उसे स्वयं एकनाथने ही अपने कुछ अभंगोंमें इस प्रकार व्यक्त किया है—'मूलके मूलमें ही एका पैदा हुआ' इससे माँ-बाप डर गये। ऐसा यह मूल नक्षत्र आ पड़ा कि मैं दोनोंको निर्मूल करने लगा। उन्होंने नक्षत्रकी शान्ति की सो स्वयं ही शान्त हो गये और मैं मूलमें लगकर अपना नाम सार्थक करने लगा। एका जनार्दनकी शरणमें जाकर मूलकी वार्तामें पहुँचा और

माँ (मायाप्रकृति)-सहित बाप (ब्रह्म)-को घोटने लगा।'

जिन अभंगोंका यह आशय दिया है वे अभंग कहीं छपे हुए नहीं हैं। पैठणमें कुछ पुराने पोथी-पत्रोंको देखते हुए ये अभंग मिल गये। इनका आशय कितना भावपूर्ण और कितना दिव्य है! एकनाथका जन्म होते ही मूल नक्षत्रके कारण माँ-बाप डर गये और उन्होंने नक्षत्रकी शान्ति करायी, पर दोनोंका देहान्त हो गया। पर एकनाथ मूलमें ही लगे रहे, इससे शुद्ध आत्मस्वरूपाकार हो गये, यह सरल आशय तो है ही पर इससे भी अधिक गम्भीर ध्वनि भी इसमें है और वह यह कि मा याने माया (प्रकृति) और बाप याने पुरुष—क्षर और अक्षर—उन दोनोंको ही ग्रास करके क्षराक्षरके परे जो त्रिगुणातीत परब्रह्म है उसीमें 'एकनाथ' मिल गये। अस्तु।

एकनाथने अपने पिता सूर्यनारायणको 'सुलक्षण' कहकर स्मरण किया है और कहा है कि सूर्य-प्रभाके प्रताप-किरणोंसे माता रुक्मिणीने पुत्र प्रसव किया। सूर्यनारायण बड़े ही बुद्धिमान् पुरुष थे और रुक्मिणी माता बड़ी पतिव्रता और सुशीला देवी थीं। माँ-बाप अपने पुत्रका बचपनका लाड़-प्यार करनेके लिये भी जीवित न रहे, और एकनाथका लालन-पालन करनेका सम्पूर्ण भार चक्रपाणिपर पड़ा। भानुदास, भानुदासके पुत्र चक्रपाणि, चक्रपाणिके सूर्यनारायण, सूर्यनारायणके एकनाथ ये सब नाम भी बड़े बोधक हैं। नाममें क्या रखा है, यह कहना ठीक नहीं। बच्चोंके जो नाम रखे जाते हैं उनमें भी उन नामोंको रखनेवालोंका स्वभाव दिखायी देता है। भानुदासने अपने पुत्र और प्रपौत्रके ऐसे नाम रखे जिनसे उनकी हरि-भक्ति प्रकट होती है। बच्चोंके लल्लू-बुद्धू नाम रखनेवाले लल्लू-बुद्धू संसारमें बहुत हैं! 'सुलोचना,' 'चारुचन्द्र' आदि शरीर-सौन्दर्य-दर्शक

नाम रखनेवाले रसिक माँ-बाप भी बहुत हैं; पर धर्मशील घरानोंमें यह पद्धति है कि अपने उपास्य देवों, तीर्थों, सन्तों और साध्वियों तथा अन्य देवी-देवताओंके ही नाम अपने बच्चोंके रखे जाते हैं। रक्त-मांसका यह स्थूल पिण्ड निन्द्य ही है। आचार्यके कथनानुसार—

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलम्।
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः॥

(विवेक-चूडामणि ८९)

त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेद, मज्जा और अस्थिसे बना हुआ तथा विष्टा-मूत्रसे भरा हुआ यह शरीर निन्द्य ही है, तथापि इसी निन्द्य शरीरका आश्रय करके ही परम पावन परमात्माकी प्राप्ति करनी होती है। शरीर ऐसा निन्द्य और नश्वर होनेपर भी पहचानके लिये इसका कुछ-न-कुछ नाम रखना ही पड़ता है और जब नाम रखना ही पड़ता है तब ऐसा ही नाम क्यों न रखा जाय जिससे पद-पदपर भगवान्का स्मरण हो? सारा संसार ईश्वररूप है। इस भावनाको अखण्ड रखनेके लिये भक्त लोग सांसारिक बातोंमें भी हर जगह ऐसा उपाय किये रहते हैं कि जिससे सदा भगवान्का स्मरण होता रहे। नामकरण भी ऐसा ही एक उपाय है। भक्तोंके सांसारिक व्यवहारके नाम भी भगवान्का स्मरण करानेवाले होते हैं। अंदर, बाहर सर्वत्र भगवान्का ही ध्यान और दर्शन करते हुए भक्त संसारको ही ईश्वररूप बना देते हैं। नामोच्चारणके साथ नामातीतका स्मरण हो यही नामकरणका हेतु होता है। श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें अजामिलकी कथा है। अजामिल महापापी था, पर उसने अपने लाडले बेटेका नाम 'नारायण' रखा था; इससे जहाँ-तहाँ 'नारायण'का नामोच्चारण करते-करते उसकी वाणी पवित्र हो गयी। नारायण-नामका कुछ

ऐसा चसका उसे लग गया कि प्राणोत्क्रमणके समय विष्णुभगवान्‌के दूत उसे वैकुण्ठ-धाम ले जानेके लिये आये। पवित्र नामोंकी कुछ ऐसी महिमा है कि उनके साथ पवित्र विभूतियोंका स्मरण होता है, उनका चरित्र सामने आ जाता है और उसीमेंसे अपने उद्धारका मार्ग भी निकल पड़ता है। पवित्र नामके सात्त्विक संस्कारसे वाणी पवित्र हो जाती है, उससे मन और बुद्धिपर भी दिव्य संस्कार होता है। भक्तोंकी रक्षा और दुष्टोंके नाशके लिये भगवान्‌ने अपने हाथमें चक्र धारण किया है इसका सदा स्मरण रहे। इसलिये भानुदासने अपने पुत्रका नाम चक्रपाणि रखा। भानुदासपर उनके बचपनमें जिन सूर्यनारायणने ब्राह्मण-वेशमें आकर अनुग्रह किया, उनका नित्य स्मरण रखनेके लिये उन्होंने अपने पोतेका नाम सूर्यनारायण रखा। यही परम्परा आगे भी चली। 'एकनाथ' तो एकनाथ ही हुए। एकनाथने अपने पुत्रका नाम 'हरि' रखा और अपनी दो पुत्रियोंके नाम 'गंगा' और 'गोदा' रखकर अपने काशीवास तथा नित्यके पैठणवासकी संगिनी गोदाका स्मरण जागृत रखा। गोदाका प्यारका नाम उन्होंने 'लीला' रखा था सो भी भगवन्मायाका ही स्मरण था मानो 'एकनाथ'-रूप पुरुषोत्तमके घर इस प्रकार 'हरि' और 'लीला' ये भाई-बहन खेलने लगे। लीलाके पुत्रका नाम भी एकनाथने 'मुक्तेश्वर' रखा। एकनाथकी स्त्रीका नाम गिरिजा था। भानुदासके कुलमें सबके ये नाम भी उनके घरमें विलास करनेवाली भगवद्भक्तिका ही स्मरण करानेवाले हैं, इसीलिये यहाँ इस बातका इतना विस्तार किया गया है।

एकनाथ बचपनसे ही बड़े बुद्धिमान् और श्रद्धावान् थे। श्रद्धा और मेधा उनके जन्मकालमें ही उनके साथ उत्पन्न हुई थीं; अथवा यह कहिये कि इनका स्नेह उन्होंने पूर्वजन्ममें ही प्राप्त

किया था। स्नान, सन्ध्या, हरिभजन, पुराणश्रवण और देव-पूजनमें उनकी बड़ी प्रीति थी। हाथमें करताल लेकर या कन्धेपर कलछुल या ऐसी ही कोई चीज रखकर और उसीको वीणा समझकर वह भजन करते या पत्थर सामने रखकर उसपर फूल चढ़ाकर 'राम-कृष्ण-हरि' कहते हुए नाचने लगते। कोई कथावाचक या कीर्तन करनेवाले हरिभक्त कहींसे आ जाते तो उन्हें दण्डवत् करते और ऐसी एकाग्रताके साथ कथा सुनते जैसे सब कुछ समझ रहे हों। कोई कुछ कहता तो परिप्रश्न करके वक्ताको रिझाते। दादा पूजामें बैठते तब उन्हींके पास बैठकर पूजा-कर्ममें उनकी सहायता करते। इनके ये सुलक्षण देखकर वृद्ध दादा और दादीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगते। एकनाथ हाथमें कोई डंडा लेते और उसीमें कोई कपड़ा बाँधकर उसीको 'यह हमारा झंडा' कहकर नाचते-कूदते तब उन वृद्धोंसे न रहा जाता। वे उसे गोदमें उठा लेते और बड़ा प्यार करते, यह कहते कि 'यह लड़का भानुदासका यश दिग्-दिगन्तमें फैलावेगा। अड़ोसी-पड़ोसियोंको भी एकनाथने अपने गुणोंसे मोहित किया। बचपनमें भी इनका स्वभाव हठी नहीं था, न इनमें कोई लड़कपन ही था। जो कुछ मिलता उसीसे यह सन्तुष्ट रहते। देव, ब्राह्मण और साधु-महात्माओंके विषयमें सहज प्रेम, सत्यमें प्रीति, अन्तर्बाह्य-सरलता, भजनमें मग्न होकर भूख-प्यासको भी भूल जाना, सबके प्रिय होना, नम्रता ये सब गुण एकनाथमें बचपनसे ही थे। इनके लिये उन्हें कोई अभ्यास नहीं करना पड़ा। अनेक गुणोंका सहज साहचर्य होनेसे निरभिमानिता और शान्ति ये दो अलौकिक गुण भी उनमें बचपनसे ही प्रकट थे। इनकी मनोहर मूर्ति देखकर तथा इन्हें भानुदासके श्रेष्ठ कुलका बचा हुआ एकमात्र तन्तु जानकर पैठणके लोग इन्हें बहुत प्यार करते और इस प्यारके

साथ इन गुणोंका योग होनेसे बालकपनसे ही इस बाल भागवतका जय-जयकार होने लगा।

छठे वर्ष एकनाथका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ और उन्हें ब्रह्म-कर्मकी उत्तम शिक्षा मिली। नित्य सायंकाल कथा बाँचनेवाले पण्डित इन्हींके घर कथा बाँचा करते और इनसे नियमपूर्वक संस्कृतका भी अध्ययन करा लेते थे। पुराणोंकी कथाएँ एकनाथ बड़ी श्रद्धासे सुनते थे, सुनी हुई कथाएँ फिर अपनी दादीको सुनाते थे और दादासे तथा पण्डितजीसे अनेक परिप्रश्न करके उन्हें थका डालते थे। किसी चीजको कण्ठ करनेमें उन्हें विशेष समय नहीं लगता था। वयस् इतनी अल्प होनेपर भी त्रिकाल सन्ध्या-वन्दनमें यह कभी चूकते नहीं थे। स्तोत्रपाठ, सायं-प्रातः देव-गुरुजनोंका वन्दन आदि भी नियमपूर्वक करते थे। स्नान किये बिना इन्होंने कभी जल भी नहीं प्राशन किया, बिना जल लिये कभी लघुशंका करने नहीं बैठे। इनकी नियमितता और शुचिता देखकर बड़े-बूढ़े दाँतों उँगली दबाते। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। इससे जो विषय गुरु उन्हें समझाते उसे सुनते-सुनते ही वह विषय इन्हें इतना अवगत हो जाता कि गुरुको ही कभी-कभी यह सन्देह होता था कि इसका जाना हुआ विषय ही तो कहीं हमने इसे दुबारा नहीं समझाया। एकनाथका अध्ययन पूर्वाभ्यस्त विषयोंका आवर्तन ही था। इनकी सत्त्वप्रधान बुद्धिमें ज्ञानका तुरंत उदय हो जाता था। '**सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते**' गीताके इस श्लोकपर टीका लिखते हुए ज्ञानेश्वर महाराजने कहा है कि 'सत्त्वगुणका उदय होनेपर वसन्त-ऋतुमें कमल खिलनेपर उसकी सुगन्ध जैसे सर्वत्र फैल जाती है वैसे ही बुद्धितेज अन्दर भरकर भी न समा सकनेके कारण बाहर निकलने लगता है, अथवा वर्षाकालमें महानदी जैसे जलसे पूर्ण

भरकर दोनों किनारे उछलने लगती है, उसी प्रकार बुद्धि जिस-जिस शास्त्रको स्पर्श करती है, उस-उसपर अधिकार जमाती है; अथवा पूर्णिमाकी रातको चन्द्रप्रभा जिस प्रकार आकाशमें सर्वत्र फैल जाती है, उसी प्रकार सत्त्वगुणी पुरुषकी वृत्ति सम्पूर्ण ज्ञान आत्मसात् कर लेती है।' ज्ञानेश्वर महाराजका आनुभविक वर्णन एकनाथके विषयमें भी पूर्ण सत्य है। एकनाथकी बुद्धि इस प्रकारकी होनेसे उनकी शंकाओंका समाधान करते हुए पण्डितजी भी घबरा जाते थे और उन्हें यह भय होता था कि इसको शिक्षा देना मुझसे कैसे बन पड़ेगा, कभी-कभी तो एकनाथकी ज्ञाननिष्ठा देखकर उन्हें यह भी भासित होता था कि शिष्यके रूपमें यह कोई सर्वज्ञ पुरुष सामने बैठा हुआ है। एकनाथके मार्मिक और हृदयको खोलनेवाले प्रश्न सुनकर कभी-कभी पण्डितजी एकनाथके दादा चक्रपाणिजीके पास जाकर यह भी कहते कि, 'मैंने तो पेटके लिये कथा बाँचना सीखा और यह लड़का ऐसे प्रश्न करता है कि उनका समाधान करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है।' इस प्रकार बारह वर्षकी अवस्थामें रामायण-महाभारत तथा अनेक पुराणोंकी रम्य कथाएँ तथा भागवतके ध्रुव-प्रह्लादादि बाल भागवतोंके आख्यान सुनकर एकनाथकी बुद्धिमें जो विलक्षण शक्ति उत्पन्न हुई वह बड़े-बड़े पण्डितोंके लिये भी अतर्क्य थी। सामान्य लोगोंको यह बात असम्भव-सी मालूम होती है। कारण, ऐसा बालक सहसा उनके कहीं देखनेमें नहीं आता। परंतु एकनाथका सारा चरित्र ही असामान्य होनेसे उसमें बचपनसे ही ऐसी सामान्य बातोंका होना ही सामान्य है। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। आँखोंमें दिव्य अंजनके लगते ही पातालमें गड़ा हुआ धन भी दिखायी देता है, उसी प्रकार सत्त्व-गुणाधिष्ठित पुरुषको सम्पूर्ण ज्ञान अनायास ही प्राप्त होता

है। श्रीमच्छंकराचार्यका वेदाध्ययन बारह वर्षमें पूर्ण हुआ, ज्ञानेश्वर महाराजने सोलहवें वर्षमें ज्ञानेश्वरी-जैसा अनुपम ग्रन्थ निर्माण किया, समर्थ रामदास स्वामीको बचपनमें वसिष्ठ-सा उग्र-वैराग्य प्राप्त हुआ, एकनाथकी यह बात भी ऐसी ही है। यह 'अनेक जन्मसंसिद्ध' थे। लौकिक गुरुसे प्राप्त हो सकनेवाली लौकिक विद्या पूर्वजन्माभ्यासके बलसे उन्हें सहज ही प्राप्त हो गयी। पर इससे उनका समाधान कैसे होता? उनका मन बेचैन हो उठा कि ध्रुव, प्रह्लादादिको जैसे नारद मिले वैसे भगवान्‌की प्राप्ति करा देनेवाले सद्‌गुरु मुझे कब मिलेंगे? खाने-पीनेसे भी उनकी रुचि हट गयी। ऐसे शिष्यके लिये सद्‌गुरु कहीं दूर थोड़े ही होते हैं? जैसे पके हुए फलमें चोंच मारनेके लिये तोता तैयार ही रहता है, वैसे ही सच्छिष्यके तैयार होते ही उसपर अनुग्रह करनेके लिये सद्‌गुरु भी तैयार ही रहते हैं। एक दिन रातको, तीसरा पहर बीत चुका था, एकनाथ अकेले शिवालयमें हरिगुण गाते हुए बैठे थे, सद्‌गुरुकी खोजमें लगे हुए हृदयमें उन्होंने यह आकाशवाणी सुनी—'देवगढ़पर जनार्दन पन्त नामक एक सत्पुरुष रहते हैं, उनके पास जाओ, वह तुम्हें कृतार्थ करेंगे। इस आकाशवाणीको सुनते ही घर-द्वार तथा वृद्ध दादा-दादीका कुछ भी खयाल न करके नाथ भगवान्‌का नाम लेकर वहाँसे चल पड़े और तीसरे दिन प्रातःकाल देवगढ़पर पहुँचे। वहाँ उन्हें जनार्दन पन्तके दर्शन हुए। गद्‌गद होकर उन्होंने अपना शरीर गुरुचरणोंमें अर्पण किया। शाके १४६७ (संवत् १६०२) के लगभग यह घटना हुई। गुरु-शिष्यका जिस दिन वह शुभ मिलन हुआ वह दिन धन्य है।

गुरु जनार्दनस्वामी

गुरु ही माता, गुरु ही पिता और गुरु ही हमारे कुलदेव हैं। महान् संकट पड़नेपर आगे और पीछे वही हमारी रक्षा करनेवाले हैं। यह काय, वाक् और मन उन्हींके चरणोंमें अर्पण है। एका जनार्दनकी शरणमें है। गुरु एक जनार्दन ही हैं।

—एकनाथ

जनार्दनस्वामी पहले चालीसगाँवके अधिवासी और वहाँके देशपाण्डे थे। यह श्रीआश्वलायन सूत्रके ऋग्वेदी देशस्थ ब्राह्मण थे। इनका जन्म शाके १४२६ फाल्गुन कृ० ६ को हुआ (संवत् १५६१ चैत्र कृ० ६) पूर्व-कर्म-ऋणानुबन्धसे इन्हें यवनराज्यकी नौकरी करनी पड़ी। इसमें इनकी पदवृद्धि भी बहुत हुई, आखिरको ये देवगढ़ या दौलताबादके बड़े हाकिम हुए, मुसलमान बादशाहके बड़े विश्वासपात्र सलाहकार भी हुए। बड़े वीर, दृढ़-स्वभाव, नियमी और तेजस्वी पुरुष थे। अपने काममें बड़े दक्ष होनेके कारण राज्यमें इनका बड़ा दबदबा था। तथापि इनका सबसे अधिक यश यही फैला हुआ था कि यह बड़े साधु पुरुष हैं और उस जमानेमें भी इनकी स्वधर्म-निष्ठाका डंका चारों ओर बज रहा था। यह गुरु दत्तात्रेयके उपासक थे और उपास्यदेवके सगुणस्वरूपका दर्शन इन्हें प्रत्यक्षमें होता था। ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेके समयसे लेकर मध्याह्नतक यह स्नान-संध्या, समाधि और श्रीदत्त-सेवामें ही लगे रहते थे। मध्याह्नके बाद यह कचहरीका काम देखते थे। पुनः सायं-संध्या आदि करके रातको 'ज्ञानेश्वरी' और 'अमृतानुभव' का निरूपण करते थे। इनका समाधि लगानेका स्थान एकान्तमें था और ऐसा प्रबन्ध था कि उस ओर कोई जाने

नहीं पाता था। यह बड़े दयालु और न्यायनिष्ठ थे, सबपर इनकी वैसी ही धाक भी थी। इनके लिये, बादशाही हुक्मसे, प्रति गुरुवार (गुरु दत्तका दिन)-को देवगढ़की सब सरकारी कचहरियोंमें छुट्टी रहा करती थी। योगियोंके लिये भी जो सेवाधर्म अगम्य है, कहते हैं उसको निबाहते हुए यह स्वधर्मके आचरणसे जरा भी कभी च्युत नहीं हुए। प्रपंच और परमार्थ दोनों ही उत्तम रीतिसे चलाते थे। श्रीदत्तभगवान्‌के सगुण साक्षात्कारके प्रभावसे समता, शान्ति और अनासक्तिका इनमें अखण्ड निवास था। इनके शरीरसे विलक्षण तेज निकलता था। 'बाह्य कर्मोंद्वारा धुलकर स्वच्छ और अन्तर्ज्ञानसे उज्ज्वल हुए' इन भक्ति-ज्ञान-वैराग्यकी मूर्तिको हिन्दू-मुसलमान सभी वन्दनीय मानते थे। जनार्दन स्वामीकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् दत्तात्रेय देवगढ़में विराजने लगे, इससे तथा वहाँ होनेवाले नित्य भजन-पूजन और आत्मचर्चाके दिव्य परिमलसे देवगढ़ और उसके आस-पासका क्षेत्र पुण्य-पावन और परम आह्लादप्रद हो गया।

श्रीदत्तभगवान्‌ने जनार्दनस्वामीपर अनुग्रह किया और उन्हें स्वरूपानुभव देकर कृतार्थ किया। उस प्रसंगका वर्णन स्वयं एकनाथ महाराज अपनी भागवत (अ० ९)-में सहज स्फूर्तिसे कर गये हैं। वह कहते हैं—'गुरुसे मिलनेकी महाराजको ऐसी अनन्य चिन्ता हुई कि सद्‌गुरुके चिन्तनमें वह तीनों अवस्थाएँ भूल गये। भगवान् भावके भूखे हैं। इनकी इस दृढ़ अवस्थाको जानकर श्रीदत्तभगवान् प्रकट हुए और इनके मस्तकपर उन्होंने हाथ रखा। हाथ रखते ही सम्पूर्ण बोध हो गया। इस मिथ्या प्रपंचका जो मूल स्वरूप है वह आत्मबोधसे ज्ञात हो गया। कर्म करके भी जो अकर्ता है उसीने 'अकर्तात्मबोध' करा दिया, देहमें रहकर भी

विदेहता कैसे होती है वह भी तत्त्वतः ज्ञात हो गया। गृहस्थाश्रमको छोड़े बिना, कर्मरेखाको लाँघे बिना, निज व्यापारमें लगे रहनेकी अवस्थामें जो बोध सर्वथा नहीं होता वह बोध मनको प्राप्त हो गया, मनका मनपन छूट गया, उस अवस्थाको सँभालना कठिन हो गया, जनार्दन महाराज मूर्छित हो गये। गुरु दत्तात्रेयने उन्हें तत्त्वतः चैतन्य किया और कहा, 'भक्त सत्त्वावस्थामें रहता है, उसे भी आत्मसात् करके निजबोधमें रहो।' पूजाविधि करके जब जनार्दन महाराज चरणोंपर गिरे तब गुरु दत्तात्रेय अपनी योगमायाके योगसे अदृश्य हो गये।'

श्रीदत्तात्रेयने चौबीस गुरु किये थे, इसी प्रसंगकी कथा विस्तारपूर्वक तीन अध्यायोंमें कहकर दत्तात्रेयकी शिष्य-परम्परा बतलाते हुए एकनाथ महाराज ऊपर दी हुई रहस्य-कथा कह गये हैं। इतने रहस्यकी बात सबसे कहनेयोग्य तो नहीं मालूम होती। कारण कलियुगमें श्रद्धाहीन तर्कवादियोंकी ही भरमार होनेसे ये लोग इसपर यह कहनेमें भी नहीं चुकेंगे कि एकनाथ महाराजने यह अच्छा परिहास किया। ऐसे ही लोगोंका स्मरण करके एकनाथ महाराजको पीछे यह खयाल हुआ कि गुरुके सम्बन्धमें यह रहस्य प्रकट करनेमें भूल हुई! तथापि 'दत्तात्रेय-शिष्य कथन करते हुए जनार्दनका स्मरण हुआ' और देहका ध्यान न रहनेसे सद्गुरु-प्रेमके आवेशमें सद्गुरुके चरित्रकी यह अत्यन्त महत्त्वकी बात भी कह गये। भक्तोंपर अवश्य ही उन्होंने यह बड़ा उपकार किया।

ऊपर एकनाथ महाराजने सद्गुरु-चरित्रके महत्त्वपूर्ण प्रसंगका जो वर्णन किया है उसका अब थोड़ा विचार करें। सबसे पहले हमें यह बात अच्छी तरहसे ध्यानमें रखनी चाहिये कि परमात्मापर पूर्ण निष्ठा रखकर तन्मय होनेवाले जीवके उद्धारके लिये परमात्मा

सगुणरूपसे प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं। इतना बड़ा अधिकारी, सत्त्वसंशुद्ध जीव बिरला ही होता है, इसलिये ऐसी बातें भी जहाँ-तहाँ सबके देखनेमें नहीं आतीं; पर पापी जीवोंको जिस बातका अनुभव नहीं होता उसे वे भले ही मिथ्या कहें, किन्तु इससे वह बात मिथ्या नहीं होती। किसी भी शास्त्रके सिद्धान्त उस शास्त्रके जाननेवालोंके मुखसे ही जाने जा सकते हैं। रोगकी परीक्षा वैद्य, हीरेकी जौहरी और कुश्तीकी उस्ताद ही कर सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक शास्त्रका मर्मज्ञ अनुभवी ज्ञाता कम-से-कम अपने शास्त्रके सम्बन्धमें यदि प्रमाण माना जाता है, तब संसारके सब शास्त्र जिस अध्यात्मशास्त्रके पसंगेमें भी नहीं हैं, उसकी गूढ़ बातोंकी पहचान साधु-महात्माओंसे ही केवल पूछी जा सकती है, यह स्पष्ट है। सामान्य मनुष्य, विषयी-विलासी जीव या साधना करनेवाले साधक भी सिद्ध पुरुषोंके अनुभवकी ठीक कल्पना कैसे कर सकते हैं? इसलिये साधु-महात्माओंके चरित्रोंमें यदि कोई ऐसी बातें आ जायँ जिनकी कल्पना सामान्य मनुष्य नहीं कर सकते तो इतनेसे उन बातोंको मिथ्या कहकर उड़ा देनेका कोई दुस्साहस न करे। साधु बनकर साधुको देखे, भक्त होकर भक्तको जाने और ज्ञानी होकर ज्ञानीको पहचाने। जिसे इतना अधिकार न प्राप्त हुआ हो वह साधु-महात्माओंकी इन बातोंको मूर्खताभरी और मिथ्या कहनेके फेरमें न पड़े, इसीमें उसका हित है। सूर्यकी बदनामी करनेसे उसका प्रकाश थोड़े ही कम होता है? साधु-महात्मा सूर्यके समान हैं। उनकी वास्तविक योग्यता विषयोंके अन्धकारमें अपना प्रपंच रचनेवाले जुगुनू नहीं कर सकते। सगुण-साक्षात्कार अथवा संतोंके चरित्रोंमें देख पड़नेवाले अन्य चमत्कार मिथ्या नहीं हैं। भानुदास अथवा एकनाथ या ऐसे ही अन्य किसी भी स्वस्वरूपको प्राप्त

महात्माके चरित्रमें दिखायी देनेवाले ये चमत्कार कोई अद्भुत व्यापार नहीं हैं। प्रत्युत इन सब चरित्रोंको महात्माओंके अनुभवकी दृष्टिसे ही देखना चाहिये। भक्तोंको सगुण-साक्षात्कार होता है। जनार्दनस्वामीको श्रीदत्तभगवान्‌के दर्शन हुए, अनुग्रह हुआ और नित्य-दर्शन भी हुआ करते थे। जनार्दनस्वामीने एकनाथ महाराजको भी श्रीदत्तदर्शन करा दिये। एकनाथ महाराजके द्वारपर दासोपन्तने श्रीदत्तभगवान्‌को चोपदारके वेषमें देखा। एकनाथ महाराजके घरपर श्रीदत्तभगवान् बारह वर्षतक श्रीखण्डिया बनकर काम करते रहे। इन सब बातोंको हमलोग चमत्कार कहते हैं, श्रद्धालु लोग इन बातोंको सत्य समझते हैं, अज्ञानी लोग इन्हें मिथ्या मानते हैं। पर ये भक्तोंके अनुभवकी सत्य बातें हैं। अस्तु!

जनार्दनस्वामीके चरित्रके अत्यन्त महत्त्वके प्रसंगकी अर्थात् श्रीदत्तभगवान्‌के अनुग्रहकी साक्षी स्वयं जनार्दनस्वामीके शिष्यसे ही मिली है। यह बड़े आनन्दकी बात है। जब जनार्दन-स्वामीको सद्‌गुरु-प्राप्तिकी ऐसी धुन समायी कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंमें इसके सिवा उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं था, तब भावभक्तिके भोक्ता भगवान् दत्तात्रेय साक्षात् प्रकट हुए और उनके सिरपर उन्होंने अपना हाथ रखा। भगवान्‌के हाथका स्पर्श होते ही स्वरूप-साक्षात्कार हो गया—'कर्म करके भी अकर्ता' अर्थात् अकर्तात्मबोध हुआ और इसी देहमें विदेहता प्रकट हो गयी। गृहस्थाश्रमको बिना छोड़े, कर्ममर्यादाको बिना लाँघे, अपना कर्म करते हुए आत्मानुसन्धान न छोड़नेका कौशल उन्हें प्राप्त हो गया और उसके साथ ही मनका मनस्त्व छूट जानेसे वह मूर्छित हो गये, तब श्रीदत्त-भगवान्‌ने उन्हें चैतन्य किया और सात्त्विकताका यह उफान

आत्मसात् करके परमानन्दके निजबोधसे सहजभावसे रहना सिखाया। अनन्तर श्रीदत्तभगवान्‌की पूजा करके जनार्दनस्वामी उनके चरणोंपर गिरे, इसी अवस्थामें भगवान् अपने योगमायाके बलसे अन्तर्धान हो गये। जनार्दनस्वामीको इस प्रकार जो भगवान्‌के प्रथम दर्शन हुए, उसका यह वर्णन उनके प्रधान शिष्यने किया है। 'गृहस्थाश्रमको बिना छोड़े, कर्मरेखाको बिना लाँघे' निजबोधसे रहनेका उपदेश श्रीदत्तभगवान्‌ने जनार्दन-स्वामीको किया और वही उपदेश उनसे एकनाथ महाराजको मिला। जनार्दनस्वामी अथवा एकनाथ महाराजको गृहस्थाश्रममें असंग होकर अर्थात् अकर्तात्मभावके साथ रहनेका जो उपदेश श्रीदत्तभगवान्‌ने किया उसे यदि हमलोग ध्यानमें रखकर वैसा अपना जीवन बनावें तो गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी भगवत्प्राप्ति होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं। अस्तु, जनार्दनस्वामी-जैसे पूर्ण पुरुषने देवगढ़से कुछ बीस ही मील दूर पैठणमें रहनेवाले हमारे बालभागवतको अपनी अचिन्त्य शक्तिसे अपनी ओर खींच लिया और उसपर कृपा करके उसे जगदुद्धार करनेमें समर्थ किया, यह बड़े आनन्दकी बात हुई।

जनार्दन पन्तके दर्शन जब पहले-पहल एकनाथको हुए तब दोनोंको ही बड़ा आनन्द हुआ। ध्रुवके समान विरक्त हुए एकनाथकी उस वामनमूर्तिको देखकर जनार्दनस्वामी बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने उन्हें बड़े प्रेमसे अपने पास रख लिया। गुरुका सदाचार, ब्रह्मनिष्ठा और प्रेमी हृदय देखकर एकनाथकी चित्तवृत्ति उनके चरणोंमें संलग्न हो गयी। एकनाथने लगातार छः वर्ष बड़े भावभक्तिसे जनार्दनस्वामीकी अपूर्व सेवा की और वह उनके अनुग्रहके पूर्ण पात्र हुए। एकनाथकी गुरुसेवाका ऐसा क्रम

था—गुरु सोकर उठें इससे पहले शिष्य जाग उठें। रातको गुरुके पैर दाबें, गुरुके सोनेपर उनके पायताने स्वयं सो रहें। दिन-रात, घर-द्वार सर्वत्र गुरुकी सेवामें तत्पर रहकर बड़े उत्साहसे, जो काम सामने आ जाय उसे आज्ञाकी बाट न जोहकर, कर डालें। भोजनके पश्चात् बड़े प्रेमसे पान लगावें और गुरुके हाथमें दें और गुरु विश्राम करने लेट जायँ तब पंखा झलें या अन्य प्रकारसे सेवा करें। गुरुकी विश्रान्तिमें ही अपनी विश्रान्तिका अवसर निकाल लें। गुरु स्नान करनेके लिये उठें तब उन्हें स्नानके लिये पात्रमें जल भर दें, धोती चुनकर हाथमें दें, पूजाकी सब सामग्री जुटा दें और पूजाके समय सदा सन्निध रहकर जब जो वस्तु आवश्यक हो, आगे कर दें। गुरु जब समाधि लगाते तब शिष्य द्वारपर खड़े रहकर बाहरकी सब उपाधियोंका निवारण करते। गुरु-गृहमें कई आश्रित, टहलुए और नौकर-चाकर थे, पर उनकी कोई राह न देखकर स्वयं ही बड़े प्रेम और उत्साहसे तन-मन लगाकर गुरुकी परिचर्या करते। ईश्वरसे यही प्रार्थना करते कि गुरु-सेवा करनेकी मुझे इतनी सामर्थ्य दें कि सब नौकर-चाकरोंका काम मैं अकेला ही कर सकूँ। वह अपनी भूख-प्यासकी सुध न रखकर गुरुकी भूख-प्यासका ही खयाल रखते। अपने आराम करने या सोनेका जरा भी खयाल न रखकर इसी बातमें दक्ष रहते कि गुरुकी निद्रामें जरा भी कोई बाधा न पड़े। अपना भोजन नियमित रखकर ऐसी चेष्टा करते कि गुरु यथेच्छ भोजन पावें। जरा भी अधिक भोजन होनेसे सुस्ती आ जायगी और इससे गुरु-सेवामें बाधा पड़ेगी, इसलिये युक्ताहार-विहार करते। गुरुका सन्तोष ही इनका सन्तोष था, गुरुके शबद ही इनका शास्त्र था, गुरुकी मूर्ति ही इनका परमेश्वर, गुरुका घर ही

इनका स्वर्ग, गुरुके आप्त ही इनके आप्त, यही नहीं, '**गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म**' यही इनकी भावना थी और इसी परम शुद्ध भावनासे यह गुरुकी अखण्ड सेवा करते थे। इन छः वर्षोंमें एकनाथको पैठणका स्मरण भी नहीं हुआ, यही क्यों, उन्हें अपनी देहका भी विस्मरण हो गया। गुरु-सेवाको ही उन्होंने परम धर्म माना और अवस्थात्रयमें गुरुके सिवा उन्होंने और किसी वस्तुका चिन्तन भी नहीं किया। गुरु-सेवा करते-करते एकनाथके सब मनोविकार शान्त हो गये, भूख-प्यास आदि प्राणधर्म छूट गये, राग, लोभादि रिपु शरीर छोड़कर चले गये, इन्द्रियाँ वासनारहित हो गयीं, काया तेजोमय हो गयी, अन्तःसमाधानका तेज रोम-रोमसे प्रकट होने लगा। गुरु-सेवासे एकनाथ देहाभिमानशून्य हो गये! इस प्रकार गुरु-सेवासे उनकी चित्तशुद्धि हुई और वह गुरुप्रसादको प्राप्त हुए। ऐसी शिष्यवृत्तिके साथ रहते हुए उन्होंने साक्षात् गुरुमुखसे ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव और श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थ सुने और उससे उनका आत्मबोध जागृत हो गया। केवल संसारके विषयोंमें पड़े हुए लोगोंको इस विषयमय संसारके सिवा और कुछ नहीं सूझता, उसी प्रकार उनके श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कारके लिये गुरुके सिवा और कोई विषय ही नहीं रह गया। जो अधकचरे पारमार्थिक हैं उनकी बड़ी दुर्दशा होती है। श्रवण वे परमार्थका करते हैं, मनन विषयोंका करते हैं, निदिध्यासन करते हैं प्रपंचका और साक्षात्कार होता है उन्हें केवल दुःखका। एकनाथ गुरु-सेवासे अपनेको धन्यभाग समझते थे। जो भक्त नहीं हैं उन्हें सेवामें बड़ा कष्ट मालूम हो सकता है, पर एकनाथ-जैसे गुरु-भक्तके लिये वही सेवा परमामृतदायिनी होनेसे उसीको उन्होंने अपना महद्

भाग्य समझा। उन्होंने स्वयं स्वलिखित भागवतमें गुरु और गुरु-भजनकी महिमा गायी है। कहा है कि, 'भव-सागरसे पार उतरनेके लिये मुख्य साधन गुरु-भजन ही है।' और गुरुका लक्षण क्या है? एकनाथ महाराज कहते हैं कि, 'सद्‌गुरु वही है जो आत्मस्वरूपका बोध कराकर समाधान करा दे।' लौकिक विद्याओंके लौकिक गुरु अनेक हैं, पर सद्‌गुरु वही है जो आत्मस्वरूपमें स्थित करा दे। महद् भाग्यसे ही ऐसे सद्‌गुरु प्राप्त होते हैं। और ऐसे सद्‌गुरुकी सेवा सत्-शिष्य भी कैसे करता है? एकनाथ महाराज वर्णन करते हैं—'गुरु ही माता, पिता, स्वामी और कुलदेवता हैं। गुरु-बिना और किसी देवताका स्मरण नहीं होता। शरीर, मन, वाणी और प्राणसे गुरुका ही अनन्य ध्यान हो यही गुरुभक्ति है। प्यास जलको भूल जाय, भूख मिष्टान्न भूल जाय और गुरु-चरण-संवाहन करते हुए निद्रा भी भूल जाय। मुखमें सद्‌गुरुका नाम हो, हृदयमें सद्‌गुरुका प्रेम हो, देहमें सद्‌गुरुका ही अहर्निश अविश्रान्त कर्म हो। गुरु-सेवामें ऐसा मन लगे कि स्त्री, पुत्र, धन भी भूल जाय, अपना मन भी भूल जाय, यह भी ध्यान न हो कि मैं कौन हूँ।'

गुरु ही भगवान्, गुरु ही परब्रह्म और गुरु-भजन ही भगवद्-भजन है। गुरु और भगवान् एक ही हैं; यही नहीं प्रत्युत 'गुरु-वाक्य ही ब्रह्मका प्रमाण है अन्यथा ब्रह्म केवल एक शब्द है।' गुरु-सेवाका मर्म एकनाथ महाराज एक दूसरे स्थानमें बतलाते हैं—'गुरुको आसन, भोजन, शयन कहीं भी न भूले। जिसको गुरु माना उसे जाग्रत् और स्वप्नके सारे निदिध्यासनमें गुरु माना। गुरु-स्मरण करते-करते भूख-प्यासका विस्मरण हो जाता है और देह एवं गेहका सुख भी भूल जाता है, उनके बदले सदा परमार्थ ही सम्मुख रहता है।'

सद्गुरुकी सामर्थ्य और सत्-सेवाका सुख कैसा है, इस विषयमें एकनाथ महाराजके ये प्रेमभरे उद्गार हैं—

'सद्गुरु जहाँ वास करते हैं वहीं सुखकी सृष्टि होती है। वह जहाँ रहते हैं वहीं महाबोध स्वानन्दसे रहता है। उन सद्गुरुके चरण-दर्शन होनेसे उसी क्षण भूख-प्यास भूल जाती है। फिर और कोई कल्पना ही नहीं उठती। अपना वास्तविक सुख गुरु-चरणोंमें ही है।'

गुरु-सेवाके सम्बन्धमें नाथ फिर अपना अनुभव बतलाते हैं—

'सेवामें ऐसी प्रीति हो गयी कि उससे आधी घड़ी भी अवकाश नहीं मिलता। सेवामें आलस्य तो रह ही नहीं गया; क्योंकि इस सेवासे विश्रान्तिका स्थान ही चला गया। प्यास जल भूल गयी, भूख मिष्टान्न भूल गयी। जँभाई लेनेकी भी फुरसत न रह गयी। सेवामें मन ऐसे रम गया कि एका जनार्दनकी शरणमें ही लीन हो गया।'

एक दिन जनार्दनस्वामी समाधि लगाये हुए थे और एकनाथ द्वारपर अकेले ही बैठे गुरुका ध्यान कर रहे थे। आसन, शयन, भोजन और चलते-फिरते सर्वत्र गुरुका ही ध्यान करना, यही उनका नित्यका अभ्यास था। एक प्रसंगमें उन्होंने कहा है—

'चिन्तनसे चिन्ता नष्ट होती है। चिन्तनसे सब काम हाथमें आ जाता है। चिन्तनसे सायुज्य-मुक्ति आप ही आ जाती है, उसके लिये भटकना नहीं पड़ता। चिन्तनकी ऐसी महिमा है। इससे अधम खलजन भी तर गये हैं। चिन्तनसे प्राणिमात्रका समाधान होता है। चिन्तनसे आधि-व्याधि नष्ट होती और उपाधि छूट जाती है। चिन्तनसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। (इसलिये) एका सदा जनार्दनके चरणोंमें रहता है।'

द्रौपदीने चिन्तन किया और भक्त-सखा दौड़े आये, एक क्षणमें उन्होंने दुर्वासा और उनकी मुनिमण्डलीको तृप्त किया, सतत चिन्तन करनेवाले अर्जुनके रथपर वह सारथी होकर बैठे, चिन्तनसे ही जल-थलमें सर्वत्र प्रह्लादको भगवान्का सहारा मिला, चरणोंका चिन्तन करनेवाले दामाजीके लिये वह महार बने और मेरे परदादाके लिये भी उन्होंने समय-समयपर कितने वेश धारण किये। वही सर्वगत, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वसाक्षी परमात्मा जनार्दनस्वामीके रूपमें प्रकट हुए हैं, इसी दृढ़ भावनाको धारण करके एकनाथने गुरुकी मानसपूजा की और गुरुपूजा करते ही अहंभाव भूलकर वह गुरु-स्वरूपमें मिल गये। उस प्रसंगका उन्होंने वर्णन किया है—

'मेरा मनोभाव जानकर सद्गुरुराजने सगुण रूपका बोझ उठा लिया और अतिथि बनकर आये। पहले अन्तःकरणको—चित्त और मनको अत्यन्त शुद्ध करके वही आसन स्वामीको बैठनेके लिये दिया, फिर प्रीतिके जलसे उनके चरणकमल धोये, वासनाका चन्दन लगाया, अहंभावका धूप किया, सद्भावका दीप जलाया और पंचप्राणोंका नैवेद्य निवेदन किया, रज और तमको छोड़ सत्त्वगुणका ताम्बूल दिया। स्वानुभवके रंगमें रँगकर वही रंग छिड़का। एकाने जनार्दनकी पूजा की और भगवान् तथा भक्तमें कोई भेद न रहा। एका सद्गुरुराज ही होकर रहा।'

इस प्रकार सद्गुरु और परमात्माको एक-दूसरेसे अभिन्न जानकर एकनाथने परम निष्ठासे छः वर्ष गुरु-सेवा की और यह सेवा करते-करते अपना पृथक् अस्तित्व ही भुला दिया। एकनाथका यह अधिकार देखकर जनार्दनस्वामीने उन्हें श्रीदत्त-भगवान्का दर्शन करानेका संकल्प किया। पर उस मनोहर

प्रसंगका वर्णन करनेके पूर्व दो आख्यायिकाएँ यहाँ लिखते हैं।

एक समयकी घटना है कि किसी गुरुवारको जनार्दन स्वामी समाधिमें निमग्न थे और देवगढ़पर अकस्मात् बाहरी शत्रुका आक्रमण हुआ। बड़ा आतंक फैला। सेवकजन इसकी खबर देनेके लिये जनार्दनस्वामीके पास जा रहे थे। समाधिस्थानके द्वारपर एकनाथको उन्होंने गुरु-चिन्तन करते हुए बैठे देखा। एकनाथ इन सेवकजनोंसे हाल सुनकर तुरंत खड़े हुए, युद्धके समय जो पोशाक उनके गुरु जनार्दनस्वामी पहना करते थे, वह पोशाक उन्होंने चढ़ा ली और अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो, कमरमें तलवार लटकाकर और घोड़ेपर सवार हो वह बाहर निकले। स्वामीकी समाधि न टूटे और उनका कार्य भी उत्तम रीतिसे हो जाय इसलिये एकनाथने यह ढंग निकाला। रणके बाजे बजने लगे। शस्त्रोंकी खनखनाहट सुनायी देने लगी और चार घंटे घोर संग्राम होनेके बाद शत्रु हारकर और मार खाकर, अयश लेकर भागे। इस अवसरपर जनार्दन-वेशधारी एकनाथने वीरताकी ऐसी पराकाष्ठा की कि लोग चकित होकर देखते ही रह गये। गढ़पर जहाँ-तहाँ जनार्दनस्वामीकी स्तुति होने लगी। उसे सुनकर गुरु-शिष्यका अन्तर्बाह्य अभेद प्रत्यक्ष कृतिसे दिखानेवाले एकनाथ बहुत ही प्रसन्न हुए। गुरुकी पोशाक उतारकर जहाँ-की-तहाँ रख दी और फिर चुपचाप अपने काममें लगे। समाधिसे व्युत्थान होनेपर जनार्दनस्वामी अपने घर आये और भोजनके लिये बैठे। घरमें और गढ़पर उन्हें बड़ी चहल-पहल-सी मालूम हुई। एकनाथ सदाकी भाँति विनयपूर्वक गुरुके सम्मुख खड़े ही थे। पर जो काण्ड हुआ था उसके बारेमें एक शब्द भी उन्होंने नहीं कहा। उनमें कर्तापनका कोई अहंभाव ही नहीं था। इस समय उनकी यह बात प्रकट हो गयी। चार घण्टे लड़कर

शत्रुसेनाका संहार करनेवाला यह वैष्णव वीर गुरुके समीप अपने पराक्रमका बखान न करके; उस पराक्रम या उस घटनाको ही सर्वथा भूलकर गुरुके सामने विनयसे खड़ा है, इस दृश्यका चित्र यदि कोई कुशल चित्रकार खींचे तो वह हिन्दूमात्रको मोहित करेगा। जनार्दनस्वामीको जब सब हाल मालूम हुआ तो उन्हें अपने इस महान् शिष्यके प्रति जो धन्य स्नेह हुआ उसे लेखनी क्या व्यक्त कर सकती है? अपने पृथक् अस्तित्वका अभिमान सर्वथा लुप्त करके निरहंकार होकर गुरु-सेवा करनेवाले ऐसे शिष्य अत्यन्त दुर्लभ हैं।

एकनाथकी एकाग्रता बड़ी ही विलक्षण थी। श्रीगुरुचरणोंका ध्यान करते-करते उनका देह-भाव भी नष्ट हो जाता था। परमार्थ-साधनमें जिसका चित्त इतना लय हो जाता है, उसका प्रपंच-साधन भी ठीक तरहसे ही होता है। साधु-सन्तोंके व्यवहारमें भी कभी प्रमाद नहीं होता। कोई भी काम हो उसे जितना बेभूल साधु-सन्त कर सकते हैं, उतना प्रापंचिक जन नहीं कर सकते। सन्त व्यवहारज्ञ और व्यवहारकुशल होते ही हैं, केवल व्यवहारको ही सार समझनेवाले लोग व्यवहारमें भी भूल करते हैं, वे परमार्थसे तो गिरे ही रहते हैं। एकनाथकी श्रद्धा, प्रेम और विश्वास देखकर जनार्दनस्वामीने उन्हें हिसाब-किताबका काम सौंपा। गुरु-सेवामें कोई भी त्रुटि न करके एकनाथ इस कामको भी गुरु-सेवा समझकर ही बड़े ध्यानसे करते थे। एक दिन हिसाबमें एक पाईका हिसाब नहीं मिलता था, इस भूलको ढूँढ़ निकालनेके लिये, अन्य सेवा-कार्यसे निवृत्त होनेपर, वह हिसाब लेकर रोशनीके सामने बैठ गये। ढाई पहर रात बीत गयी, फिर भी हिसाब नहीं मिला। शरीर थका, पर उस थकावटको उन्होंने कुछ नहीं समझा, एक क्षणके लिये भी उन्होंने अँगड़ाईतक

नहीं ली, भोजनोत्तर जल पीनेसे निद्रा, आलस्य आ जायगा इसलिये जल भी नहीं पीया, इस प्रकार जो काम उन्होंने हाथमें लिया था, उसे उत्तम रीतिसे पूरा करनेमें उन्होंने कोई भी त्रुटि नहीं की। काम छोटा हो या बड़ा, उसकी जिम्मेदारी जब सिरपर ली है या आ पड़ी है तब उसे स्वधर्म समझकर अत्यन्त श्रद्धाके साथ करना चाहिये, यही श्रेष्ठ पुरुषोंका मनःस्वभाव होता है। कर्तव्यके लिये ही कर्तव्य करना महान् पुरुषोंका शील है। इसी शीलके अनुसार एकनाथ एक पाईकी भूल ढूँढ़ निकालनेमें इस प्रकार लगे हुए थे। तीन पहर रात बीती तब जनार्दनस्वामी जागे और एकनाथ आस-पास कहीं दिखायी नहीं दिये, इसलिये वह पासके कमरेमें झाँकने लगे। कुछ देरमें एकनाथने पाईकी भूल ढूँढ़ निकाली। हिसाब मिला देखते ही उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ और उसी हर्षमें उन्होंने एक बार ताली बजायी। जनार्दनस्वामीको बड़ा कुतूहल हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने पूछा, 'यह हर्ष किस बातका हो रहा है?' एकनाथने सारी बात कह दी। तब जनार्दनस्वामी बोले, 'नाथ! एक पाईकी भूलका पता लगते ही जब तुम्हें इतना आनन्द हो रहा है तब संसारकी जो बड़ी भूल तुम्हारे हाथों हुई है उसका पता लगनेसे भला बताओ तो तुम्हें कितना अधिक आनन्द होगा? तात! ऐसा ही लय यदि श्रीदत्त-चिन्तनमें कर दो तो भगवान् क्या कहीं दूर हैं?' एकनाथको रोमांच हो आया। उन्हें यह आशा बँध गयी कि अब गुरुमहाराज भगवान्‌के दर्शन करा देंगे। इसी आशासे उत्कण्ठित होकर वह गुरुचरणोंमें लोट गये।

श्रीदत्तकृपा और अनुष्ठान

एका (एकनाथ)-ने जनार्दनकी शरणमें जाकर, आत्मदृष्टि पाकर परब्रह्ममूर्ति भगवान् दत्तको इन आँखोंसे देखा।

—एकनाथ

जनार्दनस्वामीका समाधि लगानेका स्थान देवगढ़पर उत्तर दिशामें निरालेमें था। उस स्थानके सामने एक सुरम्य सरोवर था, जिसके चारों ओर फल-पुष्पोंसे शोभायमान नाना प्रकारके वृक्ष थे। उस ओर जानेका किसीको हुक्म नहीं था। वहाँ मनुष्योंके पैरोंकी आहट भी कभी सुनायी नहीं देती थी। वह रमणीय निर्जन स्थान समाधिके ही सर्वथा उपयुक्त था। उस शुचि प्रदेशमें स्थिर आसन लगाकर जनार्दनस्वामी नित्य एक पहर समाधिका आनन्द लेते थे। गुरुवारका तो सारा दिन ही वहीं बीतता था। वहाँ एकनाथको गुरुके दर्शन और सम्भाषणका लाभ हुआ करता था। स्वामीकी एक बार इच्छा हुई कि एकनाथको भी श्रीदत्तदर्शनका लाभ हो। उन्होंने एकनाथको पहलेसे यह समझा रखा कि 'यहाँ श्रीदत्तभगवान्‌के सिवा और कोई भी नहीं आता और भगवान् चाहे जिस भेषमें आयें उन्हें देखकर तुम घबराना नहीं।' एकनाथ इस तरह श्रीदत्तभगवान्‌की बाट जोहते बैठे रहे। स्वामी पूजा कर चुके तब श्रीदत्त मलंग (फकीर)-के भेषमें प्रकट हुए। उनका सर्वांग चमड़ेसे ढका हुआ था, साथ कुतियाके रूपमें कामधेनु थी, नेत्र लाल-लाल थे। यह भयानक रूप देखकर एकनाथ कुछ चकित हुए। जनार्दनस्वामी और श्रीदत्त आत्मसुखकी बातें करने लगे। पीछे श्रीदत्तकी आज्ञासे जनार्दनस्वामीने उस कामधेनुको दुहकर दूध निकाला और मिट्टीके एक पात्रमें दोनोंने यथेष्ट

भोजन करके अपनी अभिन्नता एकनाथको दिखा दी। भोजनके पश्चात् वह पात्र धोनेके लिये स्वामीने एकनाथके हाथमें दिया। एकनाथने जलसे उसको धोया, धोकर वही धोवन 'यही प्रसाद है, यही भागीरथी है, यही स्वानन्दवासका साधन है' कहकर बड़ी भक्तिके साथ प्राशन किया। यह जानकर श्रीदत्तने एकनाथको पास बुलाया। इसे परम प्राप्तिका समय जानकर एकनाथने दोनोंके चरणोंके सामने साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। उन्होंने देखा, गुरु ही तो परमगुरु हैं और परमगुरु ही गुरु हैं। इस अभेद-भावनासे क्षणकाल वह तटस्थ रहे। पीछे अपनी वृत्तिपर आये तब श्रीदत्तने उनकी ओर प्रसन्न बदनसे देखा और फिर जनार्दनस्वामीकी ओर देखकर कहा—'यह महाभागवत उत्पन्न हुआ है। इसके द्वारा भागवत-धर्मका प्रचार होगा। सहस्रों मनुष्योंको यह भक्ति-पन्थमें लगा देगा और जड-जीवोद्धार करनेवाले उत्तम ग्रन्थ भी निर्माण करेगा। भागवतपर इसका ग्रन्थ अपूर्व होगा।' यह कहकर श्रीदत्तने एकनाथका आलिंगन किया। तब जनार्दनस्वामीको परमानन्द हुआ और 'दत्त-जनार्दन-एकनाथ' तीनों समरस हो गये। एकनाथको जब श्रीदत्तने अपने रूपका दर्शन कराया तब दत्त, जनार्दन तथा अपने सहित सकल विश्व उन्होंने अभेदरूपसे देखा। उस प्रसंगका वर्णन करते हुए एकनाथ महाराज कहते हैं—'उसी एकका गुणगान करता हूँ, उसी एकका ध्यान करता हूँ, उसीको अगुणी देखता हूँ, उसीको सगुणी देखता हूँ और उसीको गुणातीत देखता हूँ।'

इसके अनन्तर श्रीदत्त अन्तर्धान हुए और जनार्दनस्वामी अपने कामपर गये। एकनाथको श्रीदत्त-दर्शनका परम आनन्द हुआ। जिस सगुण रूपको अपनी आँखों देखा वही अ—त्रि

अर्थात् त्रिगुण-अतीत (त्रिगुणातीत) और अनसूया अर्थात् असूया-अतीत याने बुद्धि (बोध) इन्हीं दोके संयोगसे उत्पन्न हुआ निर्गुणरूप है। सगुण-निर्गुण एक ही हैं, दत्त ही कृष्ण हैं, वही विट्ठल हैं और वही राम हैं। जिस स्वरूपमें उनका ध्यान किया जाय उसी रूपमें वह प्रकट होते हैं। वह दत्त हैं अर्थात् उन्होंने अपना रूप पहले ही 'दिया हुआ' है, वह साधनोंसे आगे प्राप्त होनेवाला, पहलेसे स्वतः ही प्राप्त है! उसे प्राप्त करनेके लिये आयासकी कोई आवश्यकता नहीं। वह सहजसिद्ध है, केवल बुद्धिपर पड़ा हुआ देहाभिमानका परदा हटते ही वह दत्त ही है। जलपरकी काई हटा देनेसे जैसे शुद्ध जल आप ही सिद्ध है वैसे ही अपना स्वरूप भी सिद्ध ही है। इस प्रकार यह ज्ञात हुआ कि जो सगुण है वही निर्गुण है और जो निर्गुण है वही सगुण है। 'घृत जमा और पिघला, इससे उसका घृतत्व कहीं नष्ट नहीं हुआ, वैसे ही अमूर्त जो है वही मूर्तिमें आ गया, इससे उसका ब्रह्मत्व कहीं चला नहीं गया, वह मूर्तिमें भी बना ही हुआ है।' यह ज्ञान जब प्रत्यक्ष हुआ तब मुखसे 'दत्त, दत्त' का ही नामोच्चारण करते हुए, आनन्दसे गाते-नाचते हुए एकनाथने श्रीदत्तभगवान्की पूजा की। उस समयके जो 'अभंग' हैं उनका मर्म इस प्रकार है—

(१)

'भगवान्का आवाहन किया पर इस आवाहनमें विसर्जनका कुछ काम नहीं। कारण, मेरे स्वामी देवदत्त सर्वत्र ओतप्रोत हैं। गाते भी नहीं बनता—जब चित्त उसीमें लीन होता है। एका जैसे जनार्दनमें है वैसे वह सारे विश्वमें परिपूर्ण है।

(२)

'चारों शरीरोंकी क्रियाएँ श्रीदत्तात्रेयको अर्घ्य दे दीं। जो-जो

कर्म-धर्म, शुद्ध 'सबल' जैसा था, यथाक्रम अर्पण कर दिया। उचित-अनुचित जो कुछ इन्द्रियजात कर्म था, सब दे दिया। मेरा देवदत्त आत्मा एक जनार्दनमें स्वस्थ हो गया।

(३)

'संचित और क्रियमाण सबका आचमन किया। जो प्रारब्ध शेष रहा उससे सद्गुरु दत्तका ध्यान करता हूँ। एका जनार्दनमें ही रहा, इसीका यह फल है कि सब मंगल हो गया।

(४)

'त्रिगुण सत्ता चलाता जो सब देवोंका जनिता है, उसके चरणोंकी शरण लेते ही सारी माया छूट गयी, सब भेदाभेद नष्ट हो गये.....एका जनार्दनमें, जीव शिवमें लीन होकर मुक्त हो गया।

(५)

'सहस्रदल कमलाकर हार कण्ठमें अर्पण किये। सोलह, बारह, अठारह और चार पुष्प-भार माथेपर चढ़ाये, एका जनार्दनमें, अलिकुल निर्मल दत्त-चरणकमलमें अर्पित हो गया।

(६)

'वह ज्ञानदीप जलाया जिसमें चिन्ताका कोई काजल नहीं और उससे आनन्दभरित प्रेमसे देवदत्तकी आरती की। सब भेद और विकार उड़ गये। एकाने जनार्दन पा लिया, आप तेजमें मिल गया।

(७)

'भीतर-बाहर, चराचरमें सर्वत्र दत्त ही विराज रहे हैं। दत्तात्रेयने मेरा मन हर लिया, 'मेरा-तेरा' भाव निकाल दिया। सिंहाद्री-पर्वतपर रहनेवाले दत्तात्रेयने भक्तके मनमें वास किया। एका जनार्दनमें जी उठा।'

इसके पश्चात् एकनाथ जब चाहते तभी उन्हें भगवान् दत्तके दर्शन होते। श्रीदत्तसे वरदान पाकर ही एकनाथने अपना भागवत-ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थमें उन्होंने कहीं-कहीं प्रेमके आवेशमें श्रीदत्त-मिलनका भी उल्लेख किया है। उपोद्घातमें वन्दन करते हुए लिखा है—'अब उन श्रीदत्तात्रेयका वन्दन करता हूँ जो आचार्यके भी आचार्य हैं, जिन्होंने मुझे इस ग्रन्थ-निर्माणके कार्यमें प्रवृत्त किया, जिसमें आत्मबोध हो।' उसी प्रकार भिक्षुगीताके अन्तमें कहा है—'मेरे अपने गुरुके भी गुरु जो परमगुरु श्रीदत्त हैं वह योगियोंके योगेश्वर इस सुचारु भिक्षुगीतार्थसे सन्तुष्ट हुए और अद्भुत सन्तोष और आदरके साथ मुझे आश्वासन देकर तथा अपने हाथसे अभय देकर आनन्दसे झूमने लगे।' एकनाथके ये उद्गार अत्यन्त महत्त्वके हैं। इससे यह मालूम होता है कि सचमुच ही श्रीदत्तभगवान् एकनाथजीके मुखसे भिक्षुगीता सुनकर प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना हाथ उनकी पीठपर रखा। इसी प्रकार एक अभंगमें एकनाथने बताया है कि 'मुक्तमण्डपमें अपने नामके घोष और कीर्तनमें दत्तभगवान् प्रकट हुए। वही दत्त स्थावरमें, जंगममें, सारे विश्वमें विश्वधरे हुए हैं और वही घर-घर नित्य भिक्षा भी कर रहे हैं।' अस्तु!

सद्गुरु जनार्दनस्वामीकी कृपासे एकनाथको श्रीदत्तके साक्षात् दर्शन हुए और तबसे वह निरन्तर एकनाथके संग रहते थे। एकनाथ जब स्मरण करते तभी सगुणरूपसे वह प्रकट होते, अन्यथा सदा उनके हृदयमें वास करते ही थे। इस प्रकार श्रीदत्त-महाराज जनार्दन-कृपासे एकनाथके हृदयमें ही आ गये।

एकनाथको दत्तभगवान्‌के दर्शन हुए और दत्तभगवान्‌का वर-प्रसाद भी मिला, तब जनार्दनस्वामीने यह सोचा कि 'अब इससे

अनुष्ठान कराना चाहिये।' तदनुसार उन्होंने देवगढ़पर ही, वायव्य दिशाकी ओर, शूलभंजन उर्फ सुलभ-पर्वतपर उनके लिये सुरम्य स्थान नियत कर दिया और कर्तव्यार्थका बोध कराके तथा श्रीकृष्णकी उपासनाकी दीक्षा देकर शुभ मुहूर्तमें उन्हें वहाँ भेज दिया। नाथ जब वहाँ पहुँचे तब मार्कण्डेय ऋषिका वह प्राचीन तपोवन देखकर और वहाँके सूर्यकुण्डमें स्नान कर उन्होंने अतीव आनन्द अनुभव किया। तपके लिये अपना स्थान साफ-सुथरा कर लिया और वह वहीं स्थिर आसन लगाकर रहने लगे। वहाँ सरदी-पानीका कभी उन्हें कोई डर नहीं लगा, भूखकी ज्वाला बुझानेके लिये कभी कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ी, 'योगक्षेम चलानेवाले गुरुदेव स्वयं समर्थ हैं और सब प्रकारसे वही रक्षा करेंगे' इसी दृढ़ निष्ठाके साथ उन्होंने तप आरम्भ किया। '**ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम्**' इस वचनके अनुसार ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर स्नान-सन्ध्यादि करके और पूर्वाभिमुख होकर सिद्धासनपर बैठ श्रीकृष्णकी मूर्तिका ध्यान करना ही उनका नित्यकर्म था। मनसे श्रीकृष्णकी मूर्तिका ध्यान और षोडशोपचारसे पूजा करते और गुरुदेवद्वारा निर्दिष्ट मार्गसे भगवत्प्राप्तिका अखण्ड साधन करते। भगवान्‌ने जैसा कि गीतामें कहा है, शुचि प्रदेशमें स्थिर आसन लगाकर—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥

(६।१३-१४)

वह इस प्रकारका अभ्यासयोग करने लगे। यह अभ्यास करते

हुए बाह्य स्फुरणकी गति बन्द हो गयी और इसी देहमें वह विदेहावस्थाका आनन्द भोग करने लगे। जनार्दनस्वामीने उन्हें ब्रह्मबोध करा दिया था और सगुण भक्तिका रहस्य भी बता दिया था। उसीके अनुसार वह भक्ति-सुखका आनन्द भोग रहे थे। ब्रह्मज्ञान बताकर सगुण भक्तिका उच्छेद करनेवाले जो गुरु हैं, जनार्दनस्वामी उनमेंसे नहीं थे। सगुण और निर्गुण एक ही हैं यही उनका बोध था। प्राणायाम, ध्यान, धारणा ये सब भक्तिके साधन हैं। कर्म, ज्ञान, योग—ये सब साधन हैं और श्रीहरि ही साध्य हैं, यही उन्होंने एकनाथको खूब अच्छी तरहसे समझा दिया था। समुद्रमें जैसे लवणका कण घुल जाता है वैसे ही हरिरूपमें मिल जाना चाहिये, यही उनका उपदेश था। एकनाथने जो योगाभ्यास आरम्भ किया वह योगके लिये नहीं, भगवत्प्राप्तिके लिये किया। योगके लिये योग, तपके लिये तप, कर्मके लिये कर्म और ज्ञानके लिये ज्ञान प्राप्त करना, यह भागवत-धर्मकी शिक्षा नहीं है। भागवत-धर्मकी शिक्षा यह है कि योग, तप, कर्म और ज्ञान—ये सब भगवान्‌के लिये हैं। भगवान्‌के बिना इनका कुछ भी मूल्य नहीं है। इनसे यदि भगवान्‌के दर्शन हों तभी इनका मूल्य है, यही भागवत-धर्मका मुख्य तत्त्व है। संस्कृतके श्रीमद्‌भगवद्‌गीता और श्रीमद्‌भागवत तथा प्राकृतके ज्ञानेश्वरी और अमृतानुभव ग्रन्थ यही शिक्षा देते हैं और इन ग्रन्थोंका निरूपण गुरुमुखसे सुनकर नाथके चित्तमें भी यही शिक्षा जमी हुई थी। तदनुसार परम भक्तिके साथ वह श्रीकृष्णकी मूर्तिका ध्यान करते थे। इस अभ्यासका फल यह हुआ कि एकनाथको साक्षात् आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन हुए।

देवगढ़पर नाथ इस प्रकार महान् तप कर रहे थे। एक दिन

नाथ जब समाधि लगाये हुए थे, एक बड़ा भारी काल-सर्प फुत्कार करता हुआ उनपर टूट पड़ा और उनके बदनमें लिपट गया। पर आश्चर्यकी बात यह हुई कि साम्य स्थितिका अनुभव करनेवाले एकनाथके अंगस्पर्शसे उसकी दंश करनेकी क्रूरबुद्धि नष्ट हो गयी और वह नाथके मस्तकपर फन फैलाकर झूमने लगा। समचित्त अर्थात् जिसका चित्त अत्यन्त शुद्ध हो गया है उसे साँप, बिच्छू, चीता, बाघ कोई भी पीड़ा नहीं पहुँचाना चाहते। अपने अन्तःकरणका भेदभाव जहाँ नष्ट हुआ वहाँ सम्पूर्ण जगत्‌का भेद नष्ट हो ही जाता है! यह सब अपने ही हाथमें है। गीतामें कहा है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(६। २९)

इस प्रकार अचल एकताकी स्थिति जिसे प्राप्त हो गयी उसकी हिंसा कौन कर सकता है? जो अपने अन्दर विश्वको देखता है और स्वयं सारे विश्वमें समा जाता है, उस सम-विषमभावशून्य मनुष्यको भय भी किसका हो सकता है? सारा भय द्वैतसे—अपने-पराये-भावसे उत्पन्न होता है। द्वैतको ही जो निगल जाते हैं उनके लिये भय कहाँ रहा? वह साँप फिर एकनाथका संगी ही बन गया। नाथ जब समाधि लगाते तब वह उनके बदनमें लिपटकर मस्तकपर फन फैलाकर झूमने लगता और जब वह समाधिसे उठते अर्थात् इनकी देहमें श्वासोच्छ्‌वास चलने लगते तब वह भी वहाँसे निकल जाता। कई दिन यही क्रम था। एकनाथको इसकी कोई खबर भी नहीं थी। पीछे एक अवसरपर यह बात खुली। उस पर्वतके नीचे एक श्रद्धालु किसान रहता था।

गौओंको चराते हुए एक दिन उसने एकनाथजीको देखा। उसने यह सोचा कि यह कोई महान् तपस्वी पुरुष है जो यहाँ तप कर रहा है। उसने उन्हें दण्डवत् किया। उस दिनसे नित्य नियमपूर्वक वह एक लोटा दूध भरकर एकनाथजीको ला देता था। नाथ भी उसका यह शुद्ध भाव देखकर, समाधिसे उठनेपर वह दूध पी लिया करते थे। एक दिन उस किसानने यह हालत देखी कि नाथजीकी कमरमें वह साँप लिपटा हुआ है। इससे घबराकर वह बड़े जोरसे चीख उठा। शीघ्र ही नाथ व्युत्थानपर आये। (समाधिसे उठे) और उन्होंने साँपको जाते हुए देखा। देखकर उन्होंने वह दूध साँपके सामने रख दिया। इस प्रसंगपर एकनाथ महाराजने एक अभंग रचा है जिसका आशय इस प्रकार है—

'हमें दंश करनेको काल आया पर आते ही कृपालु हो गया। यह अच्छी जान-पहचान हो गयी। इससे चित्त अच्युतमें जा मिला। देहमें जो सन्देह था वह दूर हो गया और काल ही अवकाश हो गया। 'एका'की जनार्दनसे जो भेंट हुई उससे आने-जानेके चक्करसे ही छुट्टी मिल गयी।'

इसके पश्चात् एकनाथने गुरुकी आज्ञाके अनुसार अनुष्ठान पूरा किया और तब वह गुरुके घर आये। सब हाल उन्होंने गुरुको कह सुनाया। उसे सुनकर जनार्दनस्वामीने यह विचार किया कि 'अब उसका यहाँका कार्य समाप्त हो गया है, इसे अब तीर्थयात्रा करने भेज देना चाहिये जिसमें अनेक संत-महात्माओंका सत्संग लाभकर यह गुरु दत्तदेवके वरके अनुसार भागवत-धर्मका महान् प्रवर्तक हो।'

एकनाथकी तीर्थयात्रा

जिस तीर्थमें जो विधान है, जिस तीर्थमें जो स्नान है वह करके दान-सम्मानके द्वारा रामने सबको सुखी किया।

भावार्थ-रामायण

जनार्दनस्वामीने एकनाथको तीर्थयात्रा करनेकी आज्ञा दी और नाशिक-त्र्यम्बकेश्वरतक स्वयं भी साथ चलना स्वीकार किया। गुरु-शिष्य दोनों ही तीर्थयात्राके निमित्तसे अपने पादस्पर्शके द्वारा अखिल भूमिको पावन करने चले। चलते-चलते एक रात गोदावरीके तटपर चन्द्रभट नामक ब्राह्मणके आश्रममें उन्होंने डेरा डाला। यह ब्राह्मण महान् तपोनिष्ठ था। स्नान-सन्ध्यादि सब नित्यकर्म करते हुए यह इस एकान्तस्थानमें निष्ठापूर्वक परमार्थ-साधन करता था। ये गुरु-शिष्य रातभर उसके आश्रममें रहे, उसने भी इनका बड़े प्रेमसे आतिथ्य किया। रातको ब्यालू करनेके पश्चात् उस ब्राह्मणके मुखसे इन्होंने चतुःश्लोकी भागवतका सुन्दर निरूपण सुना। उसे सुनकर जनार्दनस्वामीने एकनाथको इस चतुःश्लोकी भागवतपर 'ओवी' वृत्तमें ग्रन्थ लिखनेका आदेश किया। एकनाथ उसीका अहर्निश मनन करने लगे। दूसरे दिन गुरु-शिष्य वहाँसे चलकर पंचवटी पहुँचे। वह ब्राह्मण भी (सत्संगके लोभसे) उनके साथ हो लिया। वहाँ श्रीराममन्दिरमें तीनोंने डेरा डाला। ब्यालू आदि होनेके पश्चात् एकनाथने उसी राममन्दिरमें श्रीरामचन्द्र और सद्गुरुके सम्मुख ओवी-वृत्तमें स्वरचित कथा कही। एकनाथजीका यही पहला ग्रन्थ हुआ। यह चतुःश्लोकी भागवत अत्यन्त प्रौढ़ और सुबोध है। यह चतुःश्लोकी मूल भागवतमें, द्वितीय स्कन्ध (अ० ९) में है। इन चार श्लोकोंमें

आदिनारायणने ब्रह्मदेवको अध्यात्मरहस्य बताया है। यही ज्ञान फिर ब्रह्मदेवने व्यासको, व्यासने फिर बारह स्कन्धोंमें उसका विस्तार करके शुकको और शुकने परीक्षित्‌को बताया। भागवत ग्रन्थका बीज इसी चतुःश्लोकीमें है। भागवत-सम्प्रदायका जो महत्कार्य आगे एकनाथके द्वारा होनेवाला था, उसका आरम्भ इस प्रकार पंचवटीमें सद्‌गुरु जनार्दनस्वामीने उनसे अपने सामने ही करा दिया। इस ग्रन्थके आरम्भमें ही गुरु-स्तवन करते हुए गुरुके सामने एकनाथने ये उद्‌गार निकाले हैं—'अब मैं श्रीजनार्दनका वन्दन करता हूँ जिनका वचन श्रवण करनेसे तीनों लोक आनन्दघन हो जाते हैं और जो अपने शिष्यके लिये निज-जीवन हैं, जिनके चरणोंकी रज चित्तपर पड़ जानेसे जन्म-मरणसे शान्ति मिलती और चारों प्रकारकी मुक्ति प्राप्त हो जाती है।'

एकनाथ महाराजकी चतुःश्लोकी अपूर्व है। अभी नाथकी अवस्था अल्प ही थी, पर उनके इस पहले ग्रन्थकी वाणी भी सिद्ध वाणी ही है। ग्रन्थके उपसंहारमें उन्होंने यह भी स्पष्ट लिख दिया है कि कब किस प्रसंगसे यह ग्रन्थ लिखा गया, कैसे श्रीसद्‌गुरुके साथ चन्द्रभटके आश्रममें पहुँचे और चन्द्रभटके मुखसे पहले वह ग्रन्थ सुना और फिर कैसे गुरुकी आज्ञासे अपना यह ग्रन्थ रचा। उस समय नाथ कहते हैं कि 'ग्रन्थ कैसे लिखा जाता है, यह मुझे कुछ भी मालूम नहीं था, तथापि गुरुकी आज्ञाके प्रतापसे यह काम मुझसे बन पड़ा।' गुरु-आज्ञाकी महिमा आप बतलाते हैं—

'गुरु-आज्ञाकी विलक्षण सामर्थ्य है। मैं ग्रन्थ लिखना क्या जानता था? उसका अर्थ जानना भी मेरे लिये कठिन था। पर वह ग्रन्थार्थ (गुरुकी आज्ञासे) मेरे अन्दर ओतप्रोत भरकर बलपूर्वक ज्ञानार्थ ठूँस-ठूँसकर भरने लगा। गुरुकी आज्ञा ऐसी

जबर्दस्त है कि इस ग्रन्थार्थमें मेरी दृष्टि गड़ गयी। गुरु-आज्ञाने ऐसा पीछा किया कि फालतू बातोंसे भी ज्ञान उठने लगा। शब्दके आगे ज्ञान दौड़ने लगा, छन्दके आगे अर्थ चलने लगा, जो-जो कुछ जीमें आने लगा वह सब ग्रन्थार्थ होने लगा।'

अस्तु, पंचवटीसे प्रस्थानकर गुरु-शिष्य त्र्यम्बकेश्वर पहुँचे। वहाँ वे गोदावरी जहाँसे निकली हैं उस ब्रह्मगिरि-पर्वतकी परिक्रमा करके और निवृत्तिनाथकी समाधिके दर्शन करके बहुत ही आनन्दित हुए। उस अवसरपर उनके उत्साह और दिव्य-लाभका क्या कहना है! कुशावर्तमें स्नान और फिर वहाँ निवृत्तिनाथके दर्शनकी उत्सुकता उनकी उस समयकी अभंग-रचनासे फूट निकलती है। निवृत्तिनाथके उन्हें जो दर्शन हुए, उसे उन्होंने यह समझा, यह अनुभव किया कि आज नेत्र धन्य हुए। ब्रह्मगिरिकी परिक्रमा करते हुए यह अनुभव करने लगे कि 'चौरासीके चक्करसे' छूट रहे हैं और गंगाद्वारमें स्नान करते हुए उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि उस पतितपावनीने 'पयपानकी सारी व्यथा' हर ली। और यह सारा गुरुके नामका प्रताप है यही भावना सबके ऊपर बनी रही।

गंगास्नान, ब्राह्मणसंतर्पणादि करके और एकनाथको आगेका यात्राक्रम बताकर जनार्दनस्वामी देवगढ़ लौट गये। उनके साथ चन्द्रभटजी भी चले गये। चन्द्रभट फिर जनार्दनस्वामीके साथ ही रहे, उन्हींकी सेवा करते रहे। स्वामीने उनपर पूर्ण अनुग्रह किया। कुछ काल पश्चात् देवगढ़पर ही चन्द्रभटजीका देहावसान हुआ। वहाँ उनकी समाधि बनायी गयी। अभीतक वह समाधि है।

इधर एकनाथ महाराज तीर्थयात्रामें आगे बढ़े। दक्षिणोत्तर-यात्रा करते हुए सवा दो या ढाई वर्ष बीत गये। चलते समय गुरुके वियोगका उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। तब स्वामीने उन्हें

हृदयसे लगा लिया और कहा कि 'मैं सदा तुम्हारे सन्निधि— तुम्हारे हृदयमें ही हूँ।' नाथका हृदय मक्खनसे भी अधिक मृदु था। गुरुके परम उपकारोंका स्मरण करके बड़े कष्टसे उनसे आज्ञा ली। उस समय गुरुने उन्हें बोध किया—'योगक्षेम चलानेवाले भगवान् सर्वसमर्थ हैं, तुम उसकी चिन्ता मत करो। अपना ज्ञान कहीं प्रकट मत करो और साधु-महात्माओंसे मिलते हुए अपना स्वानन्द अन्दर ही अनुभव करो। इससे तुम्हें जो पद प्राप्त हुआ है वह स्थिर होगा। संतोंका संग और नामका अहर्निश स्मरण करनेसे सौरस-लाभ होगा। सबके प्रति नामका अहर्निश स्मरण करनेसे परम रस-लाभ होगा।' यह कहकर उन्होंने आगे कहा—

'सबके प्रति एक ही भाव रखो, हृदयमें द्वैत कहीं भी रहने मत दो। यही अनुभव सुगम और पार लगानेवाला है। इससे बहुतोंका उद्धार हुआ है। ध्रुव, उपमन्यु, विभीषण, नारद, गौएँ और गोपवृन्द इसीसे तर गये। देखो, भगवान् ईंटपर समचरण * ही खड़े हैं; इसे ध्यानमें रखो।'

एकनाथने जनार्दनके रूपका ध्यान करते हुए तीर्थयात्रा की। उस समयके उनके आनन्दका वर्णन केशवने उनके चरित्रमें किया है—'मुखसे गुरुका नाम स्मरण हो रहा है। मनमें जनार्दनका ध्यान हो रहा है। सब इन्द्रियोंमें पूर्ण समाधान है। अपने ही रूपमें स्वतन्त्र, स्वच्छन्द विचर रहे हैं, जनार्दनका ऐसा ध्यान है कि जो जनार्दन हैं, वही श्रीकृष्ण हैं; और जो श्रीकृष्ण हैं वही श्रीजनार्दन हैं।' एकनाथ

---

* पण्ढरपुरके श्रीविट्ठल भगवान्‌का यह ध्यान प्रसिद्ध है—

समचरणसरोजं सान्द्रनीलाम्बुदाभं
जघननिहितपाणिं मण्डनं मण्डनानाम्।
तरुणतुलसिमालाकन्धरं कुञ्जनेत्रं
सदयधवलहासं विट्ठलं चिन्तयामि॥

इस बोधसे सम्पन्न, आनन्द-चिद्घनसे बाह्य-अन्तर परिपूर्ण थे।

इस मनःस्थितिमें अखण्ड रहकर एकनाथने सम्पूर्ण तीर्थयात्रा की; पयोष्णी, नर्मदा, ताप्ती, गंगा, यमुना, कावेरी, तुंगभद्रा आदिमें शतशः स्नान किये और आठों विनायक तथा बारहों ज्योतिर्लिंगोंके दर्शन किये। गोकुल, मथुरा, वृन्दावन आदि कृष्ण-कीर्तिसे सरसाये क्षेत्रोंमें विहार करके तथा वहाँका भक्ति-सुखानुभव प्राप्तकर एकनाथने गया, प्रयाग और काशीकी त्रिस्थली-यात्रा की। कहीं एकरात्र, कहीं त्रिरात्र और कहीं पंचरात्र ठहरे। अयोध्याकी यात्रा करके बदरिकाश्रम गये। निज धामको जानेके पूर्व श्रीकृष्णने उद्धवको उपदेश करके भागवत-धर्मका प्रचार करनेके लिये जिस स्थानमें भेजा था और जहाँसे उद्धवके शिष्य-प्रशिष्योंने भारतवर्षभरमें भागवत-धर्मका प्रचार किया, उस बदरिकाश्रममें एकनाथका चित्त बहुत ही रम गया। नाथ वहाँसे द्वारका गये। श्रीकृष्णकी लीलाका ध्यान करते हुए उन्होंने द्वारकाका सम्पूर्ण प्रदेश देखा और श्रीकृष्ण-प्रेमसे उनका अन्तःकरण भर गया। परम कृष्णभक्त एकनाथने द्वारकामें रहते हुए श्रीकृष्णकी सब लीलाओंका चिन्तन करके 'मुक्तिके परेकी पराभक्ति'का परम आनन्द अनुभव किया। द्वारकासे नाथ नरसी मेहताके जूनागढ़-स्थानमें आये और कुछ काल गिरनार-पर्वतपर रहे। वहाँसे डाकोर जाकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन किये और इस प्रकार यात्रा पूरी करते गोदावरीके किनारे-किनारे चलते हुए वह पैठणकी सीमामें आये और पहले जिस स्थानमें उन्होंने आकाशवाणीकी गम्भीर ध्वनि सुनी थी, उस पिपलेश्वरके मन्दिरमें आकर ठहरे। उत्तरकी यात्रा पूरी करके नाथ अपनी जन्मभूमिमें लौट आये।

यहाँतक हमलोग श्रीनाथके साथ, उनके वृद्ध दादा-दादीको

भूल-से गये थे, अब उनकी सुध भी लेनी चाहिये।

एकनाथ अपनी वयस्‌के बारहवें वर्ष घरसे निकल पड़े और पचीसवें वर्ष कृतार्थ होकर लौटे। एकनाथ कहाँ चले गये, यह किसीको पता नहीं था। इससे उनके दादा और दादीने बहुत शोक किया। उन्होंने गाँवके सब कुएँ, तालाब और दह ढूँढ़ डाले, आस-पासके गाँवोंमें भी ढूँढ़नेके लिये आदमी भेजे, कोई बात उठा नहीं रखी, पर उन्हें नाथका पता नहीं लगा। भानुदासके कुलका यही एकमात्र तन्तु टूटकर कहीं कुल-लता निर्वंश ही न हो जाय, इस चिन्तासे वे और पैठणके सभी सुहृद्सुजन बहुत ही विकल हो उठे। पुत्र यौवनमें ही काल-कवलित हो गया और पोता बचपनमें ही न जाने कहाँ चला गया, इससे उन वृद्ध-वृद्धाको कितना दुःख हुआ होगा, इसकी पाठक ही कल्पना करें। वृद्धावस्था, इन्द्रियाँ सब विकल हुईं, घरमें एक गिलास पानी देनेवाला भी कोई नहीं, सिर पीट-पीटकर रोनेपर भी प्रेमसे आँसू पोंछनेवाला कोई स्नेही नहीं, ऐसी विपद्-अवस्थामें ये दोनों वृद्ध स्त्री-पुरुष अत्यन्त दुःखके साथ दिन काट रहे थे। 'क्या एकनाथका कभी कोई पता चलेगा, मेरा लाल क्या मुझे कभी मिलेगा, वह हमें लात मारकर इस लोकसे चला तो नहीं गया, वह इस समय कहाँ होगा, उसे कोई कष्ट तो नहीं हो रहा होगा' इत्यादि विकल हृदयके प्रश्न वे जिस-तिस पथिकसे पूछा करते थे और वैरी भी नहीं सोचता जितना यह मन सोचता है, इस न्यायसे उसके कुछ अनिष्टकी जरा-सी भी आशंका होते ही वे मूर्छित होकर गिर पड़ते थे। अड़ोसी-पड़ोसी उनका दुःख देखकर दुःखी होते और सान्त्वना देनेका भरसक यत्न करते थे। कभी-कभी उनके हृदयाकाशसे यह ध्वनि भी उठती थी कि

'भानुदासका पुण्यबल अभी समाप्त नहीं हुआ है' और यह ध्वनि सुनकर उनको धैर्य बँधता था। एकनाथके गुण और बचपनमें ही दिखायी दी हुई उनकी अपूर्व निष्ठा याद करके उन्हें यह भी प्रतीत होता था कि भगवान् मेरे लालकी रक्षा करेंगे। ध्रुव-प्रह्लादादिकी कथाएँ स्मरण करके वे कभी-कभी ऐसे मनोहर सुखस्वप्न भी देखा करते थे कि 'हमारे नाथको भी सद्‌गुरुके दर्शन हुए और वह कृतार्थ हो गया। सहस्रों मनुष्य उसकी जयध्वनि कर रहे हैं और इस जयघोषके साथ नाथ फिर आ गये।' इस प्रकार सुख-दुःखकी लहरोंसे नीचे-ऊपर होनेवाली उनकी जीवन-नौका अब डूबती-सी मालूम होने लगी। नाथका कहीं पता ही नहीं चलता था। उनके यहाँ कथा बाँचनेवाले पण्डितजी भी, नाथ जब चले गये तभी वहाँसे चल दिये थे। वह दस-ग्यारह वर्ष बाद फिर पैठणमें आये, तब उनके द्वारा चक्रपाणिने फिर नाथकी ढूँढ़—खोज आरम्भ की। बहुतोंकी यह शंका थी कि यह पण्डितजी नाथको फुसलाकर कहीं ले गये होंगे। पर उन्होंने विश्वास दिलाया और वह शंका दूर हो गयी। नाथका बचपनका चेहरा, उस समयके उनके प्रिय-अप्रिय पदार्थ और उनकी मनोवृत्ति, इन सब बातोंकी याद करके पण्डितजीने मन-ही-मन यह अनुमान किया कि यह बालक किसी सत्पुरुषकी शरणमें गया होगा। यह विचार मनमें आते ही पण्डितजी चले और सत्पुरुषकी खोज करते-करते सीधे देवगढ़में श्रीजनार्दनस्वामीके चरणोंमें पहुँच गये। वहाँ सम्पूर्ण समाचार मालूम हुआ और यह मालूम हुआ कि गुरुकृपा प्राप्त करके छः महीने पहले ही एकनाथ तीर्थयात्रा करने चले गये हैं। जब यह पता लगा तब पण्डितजीने गढ़पर रहनेवाले अन्य लोगोंसे नाथके सम्बन्धकी छोटी-मोटी सब बातें जाननेका पूरा उद्योग

किया। पण्डितजी एकनाथसे और उनके दादा-दादीसे बड़ा स्नेह रखते थे। उन्होंने बड़ी आकुलताके साथ जनार्दनस्वामीको चक्रपाणिकी शोकाकुल अवस्था बता दी और उनसे चक्रपाणिकी ओरसे यह प्रार्थना की कि आप ऐसा आज्ञापत्र दीजिये कि तीर्थयात्रा करके जब एकनाथ पैठणको लौट आवें, तब दादा-दादीको छोड़कर फिर कहीं न जायँ और विवाह करके भानुदासके पवित्र वंशको आगे चलावें। स्वामीने भविष्यार्थको मनमें लाकर तदनुसार आज्ञापत्र दिया, उस आज्ञापत्रको लेकर पण्डितजी बड़ी जल्दी पैठणको लौट आये। यह शुभ समाचार उन्होंने उन वृद्ध और वृद्धाको सुनाया कि 'एकनाथ केवल जीते ही नहीं हैं, बल्कि गुरुकृपा प्राप्त करके तीर्थाटन करने गये हैं और जनार्दनस्वामीने यह आज्ञापत्र लिख दिया है कि वह यात्रासे लौट आनेपर गृहस्थाश्रम स्वीकार करके पैठणमें ही रहें।' आनन्दका यह समाचार पाकर उन वृद्ध दादा और दादीको कितना आनन्द हुआ उसका वर्णन करनेकी अपेक्षा कल्पना करना ही अधिक ठीक होगा। देवगढ़पर एकनाथके सम्बन्धमें पण्डितजीने जो-जो बातें सुनीं, उन्हें उनकी दादी तो पण्डितजीसे बार-बार सुनकर भी सन्तुष्ट नहीं होती थीं और बार-बार फिर उन्हीं बातोंको पण्डितजीसे कहनेके लिये कहती थीं, जब एकनाथका यह समाचार पैठणवासियोंको मालूम हुआ तो उन्हें भी बड़ा आनन्द हुआ और वे बड़ी उत्सुकताके साथ एकनाथके आनेकी बाट जोहने लगे। वृद्ध दादा-दादीके तो निकले हुए-से प्राण ही लौट आये, यही कहना चाहिये। अब उन्हें और कुछ वर्ष जीनेकी इच्छा होने लगी। बारह वर्षके अवर्षण-दुर्भिक्षके पश्चात् दैवकी अनुकूल बयार बहने लगी और आनन्दकी वर्षा

होनेकी आशा दिलानेवाले शुभ समाचारोंके मेघ पैठणक्षेत्रके आकाशमें एकत्र होने लगे।

आज आनन्दका दिन उदय हुआ। पिंपलेश्वरके देवालयमें एकनाथ आकर ठहरे और मध्याह्नकालमें जो कुछ मिल जाय उसीसे निर्वाह करके सन्तोषके साथ रहने लगे। योगाभ्याससे गठा हुआ उनका वह तेजःपुंज शरीर, मस्तकपर सोहनेवाला वह दीर्घ जटाकलाप, वह प्रसन्न और आनन्दमय मुखमण्डल, नेत्रोंका वह ब्रह्मतेज और दर्शनमात्रसे दर्शकोंके मनमें पूज्यभाव उत्पन्न करनेवाली उनकी सहज-सरल रहन-सहन देखकर कुछ लोग जान गये कि यह कोई महात्मा हैं। एक दिन पण्डितजीने एकनाथजीको देखा, पहचान लिया और चुपचाप वृद्ध चक्रपाणिका हाथ पकड़कर वह सन्ध्याके समय उन्हें एकनाथके पास ले चले। रास्तेमें ही दादा और पोतेका सामना हो गया और पण्डितजीने एकनाथको रोका। दादाकी साध पूरी हुई। एकनाथ और चक्रपाणिकी भेंट हो गयी! चक्रपाणिने नाथको गले लगाया और प्रेमसे उन्हें चूम लिया। चक्रपाणि इस समय दुःख और आनन्दके ज्वार-भाटेमें पड़ गये। पर इस समयका दुःख भी सुखरूप ही था। एकनाथसे उन्होंने कहा, 'मेरे तात! हम बूढ़ोंको छोड़कर तुम क्यों चले गये? तुम्हारा कोमल चित्त वज्रसे भी इतना कठोर कैसे हो गया? तुम्हीं तो अन्धेकी लाठी थे। आओ, आओ, अब तुम्हें हम कहीं न जाने देंगे।' इस प्रकार आनन्दके आँसू गिराते हुए चक्रपाणिने बहुत शोक किया। एकनाथका निजबोधका आसन अभंग होनेसे मोह उनके चित्तको स्पर्श नहीं कर सका। चक्रपाणिने जनार्दनस्वामीका पत्र निकालकर उनके हाथमें दिया। गुरुके अक्षर देखते ही नाथने उस पत्रको मस्तकपर धारण किया और फिर पढ़ा। श्रीगुरुकी

आज्ञासे उसी स्थानमें उन्होंने वास किया। पत्र मिलते समय जिस स्थानमें बैठे थे, उस स्थानको उन्होंने नहीं छोड़ा। तीर्थयात्रा वहीं समाप्त करके, गुरुकी आज्ञाके अनुसार, उसी जगह डेरा डाला। शीघ्र उस स्थानमें उनकी कुटी बन गयी और वहीं फिर उनका भवन भी बना। वह भवन आज भी वहाँ विद्यमान है। एकनाथ पैठणमें स्थित होकर रहने लगे। पोतेकी पुनः भेंट होनेसे जीवन-सूर्यके अस्त होनेके पूर्व दादा-दादीको परम सुख-लाभ हुआ। ये अब एकनाथका विवाह करा देनेकी चिन्तामें लगे।

नाथका गृहस्थाश्रम

चित्त मेरे ही रंगमें रँग गया, इससे घरकी आसक्ति छूट गयी। तब इस गृहस्थाश्रममें मेरी मिलकियत, मेरा सुख और मेरी सम्पत्ति यही आत्मबोध है। घर-द्वार, स्त्री-पुत्र सबके होते हुए भी उनकी आसक्ति न रखनी चाहिये। परमात्ममुक्ति-साधनसे चित्तवृत्तिको सावधान रखना चाहिये।

—एकनाथी भागवत

जनार्दनस्वामीने चक्रपाणिकी प्रार्थनाके अनुसार एकनाथको विवाह करके गृहस्थाश्रममें जानेकी आज्ञा दी। 'गृहस्थाश्रम सब आश्रमोंमें श्रेष्ठ है। सब भूतोंमें भगवद्‌भाव रखकर स्वधर्म और भूतदयाको बढ़ाना चाहिये।' गुरुकी इस आज्ञाको मानकर एकनाथ विवाह करनेपर राजी हुए। पैठणकी दक्षिण-पूर्व दिशामें विजापुर या बैजापुर नामक स्थानमें एक अच्छे सम्पन्न गृहस्थ थे, उनकी कन्या विवाहके योग्य हो गयी थी। पैठणवासी किसी मित्रसे नाथकी इच्छा मालूम होनेपर वह अपनी कन्याके साथ चक्रपाणिके पास आये। कन्या सुलक्षणा, सुरूपा और बुद्धिमती मालूम हुई। जन्मपत्री भी दोनोंकी मिल गयी। चक्रपाणि अब विवाहकी तैयारीमें लगे। विजापुरवाले सज्जनने यह जानकर कि भानुदासके पवित्र कुलके साथ सम्बन्ध हो रहा है, 'सालंकृत कन्यादान' करनेका निश्चय किया। दोनों ओरके बराती जुटे। विजापुरमें एकनाथजीके उद्धव नामक एक निकट सम्बन्धी थे, वह भी आये। यह बड़े श्रद्धालु और कष्टसहिष्णु परिश्रमी आदमी थे। उनके उद्योग और गाँववालोंके प्रेमसे विवाह-समारम्भ बड़ी धूम-धामके साथ हुआ। मधुपर्क, विवाह,

ऐरणीपूजन, गृहप्रवेश, लक्ष्मीपूजन इत्यादि सब कुछ यथोचित हुआ। वधूका नाम गिरिजा रखा गया। एकनाथ और गिरिजाबाईका विवाह विवेक और शान्तिका ही चिरसम्मेलन था। एकनाथके वृद्ध दादा-दादीके नेत्र आनन्दसे डबडबा आये। जहाँ उन्हें यह आशंका होती थी कि भानुदासका वंश आगे चलेगा या नहीं, वहाँ अब उनकी आशाके अंकुरित होकर महान् वृक्षमें परिणत होनेका योग उपस्थित हो गया। एकनाथ गृहस्थाश्रमी हो गये।

नाथकी दिनचर्या इस प्रकार थी। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातःस्मरण करके गुरु-चिन्तन करना, अनन्तर शौच-मार्जनादिसे निवृत्त होकर प्रातः स्नानके लिये गंगाजी जाना, सूर्योदयके पूर्व सन्ध्या-वन्दन आदि कर लेना, पश्चात् घर लौटकर देवपूजन, ध्यान-धारणा आदि करके गीता-भागवतादि ग्रन्थोंका पाठ या श्रवण करना। इतना करते-करते मध्याह्न हो जाता था। फिर मध्याह्नमें गंगाजी जाकर सन्ध्या और ब्राह्मयज्ञ करके घर लौटकर नैवेद्य-निवेदन और बलिवैश्वदेव आदि करके अतिथि-अभ्यागतोंका यथेष्ट सत्कार करके भोजन करना। भोजनके पश्चात् विद्वान् और भावुक ब्राह्मणोंके साथ आत्मचर्चा करना; तीसरे पहर भागवत, रामायण अथवा ज्ञानेश्वरी-जैसे ग्रन्थपर, भानुदासद्वारा स्थापित श्रीविट्ठल-मूर्तिके सामने प्रवचन करना, सायंकाल फिर गंगाजी जाकर सन्ध्या-वन्दन करना, फिर लौटकर धूप-दीपके द्वारा भगवान्की आरती, स्तोत्रपाठ और पीछे कुछ थोड़ा-सा उपाहार करना। इसके पश्चात् मध्यरात्रितक भगवत्कीर्तन करना या वेदोपनिषद्-पुराणादि ग्रन्थोंका मननपूर्वक अध्ययन करके चार घण्टे निद्रा लेना। इतनी निद्रा ही उन्हें पर्याप्त होती थी। युक्ताहार-विहार तो उनका नित्य ही था। पुराण,

कीर्तन, भजन, नामोच्चारण आदिका प्रचार करनेमें उनका हेतु सर्वसाधारण जनोंको भक्तिमार्गमें प्रवृत्त करना ही था। आत्मानुसन्धान उनका अहर्निश जारी रहता था और इसी बीच वह सब कर्म करते थे और सब कर्म भगवान्‌को अर्पण करके प्रपंचमें अलिप्त—अनासक्त होकर रहते थे। आत्मानुसन्धान, हरिचिन्तन, गुरुस्मरण, नामस्मरण—ये शब्द देखनेमें तो एक-दूसरेसे पृथक् हैं, पर इन सबका स्वरूप एक ही है। अभेदभक्ति उनके प्रत्येक आचरणसे स्पष्ट ही प्रकट होती थी। भगवान्‌से कोई भेदभाव न रखकर सब भूतोंमें भगवान्‌को ही देखते हुए सारे संसारको ही उन्होंने ब्रह्मरूप कर डाला। एकनाथ महाराजके यहाँ सदावर्त था। सबको अन्न बाँटा जाता था। ब्राह्मणोंका सत्कार करनेमें तो एकनाथ महाराज बहुत ही दक्ष रहते थे। रातको महाराज कीर्तन करते थे। करताल और मृदंगकी ध्वनि सुनकर गाँवके सब लोग वहाँ पहुँच जाते थे। भंगी-चमार आदिके बैठनेके लिये भी अलग प्रबन्ध किया हुआ रहता था। उनकी दृष्टिमें छोटे-बड़ेका कोई भेद तो था ही नहीं; छोटा हो, बड़ा हो, अमीर हो, गरीब हो; जो कोई उनके सामने आता उसमें वह जनार्दनको ही देखते थे। सबके साथ उनका समदर्शिताका व्यवहार था। घरका सब काम-काज उद्धव ही बड़ी प्रसन्नतासे देख लिया करते थे, इससे एकनाथ महाराजको उस ओर देखनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं होती थी। घरमें क्या है, क्या लाना है, यह सब उद्धव ही देख लेते थे। वह सच्चे शिष्य बनकर नाथ महाराजकी केवल दया-दृष्टि प्राप्त करनेके लिये ही उनके साथ रहते थे।

एकनाथ महाराजको सहधर्मिणी भी उन्हींके योग्य मिलीं। अल्प वयस्‌में ही उन्होंने घरका सब काम सँभाल लिया। जबतक

वृद्ध चक्रपाणि और उनकी स्त्री विद्यमान थीं, तबतक पतिके मनमें अपनी ओरसे प्रीति उत्पन्न करनेके लिये वह सास-ससुरकी सेवामें तत्पर रहती थीं और इस तरह उन्होंने पतिको प्रसन्न कर उनकी प्रीति लाभ की। एकनाथ महाराजका विवाह होनेके कुछ वर्ष बाद उनकी वृद्धा दादीका देहान्त हुआ और इसके कुछ ही दिन बाद वृद्ध दादा भी परलोक सिधारे। इसके बाद घरका सारा भार गिरिजाबाईपर आ पड़ा। नाथके समान ही गिरिजाबाई भी शीलवती, शान्त और दयालु थीं। महद्भाग्यसे नाथ-जैसे प्राणनाथ मिले यह सोचकर वह अपने-आपको धन्य समझती थीं। ऐसी अनुकूल, कुलवती, कुशल और सुशील पत्नी नाथको भी महत् पुण्यसे ही प्राप्त हुईं। परोपकारमें तथा आबालवृद्ध सबके साथ समान प्रेमके व्यवहारमें वह नाथसे किसी प्रकार कम नहीं थीं। सदा ही दीन-दुःखियोंके दुःखोंके निवारणमें लगी रहती थीं और उन्हींके आशीर्वाद सुना करती थीं। एकनाथ महाराजकी यह इच्छा रहती थी कि द्वारपर आया हुआ कोई भी अतिथि खाली हाथ न लौटे। उनकी यह इच्छा ही उनकी गृहिणीके रूपमें उनके घर विराज रही थी। रात-बेरात चूल्हा जलाकर रसोई बनाकर, भूखोंको भोजन करानेमें उन्होंने कभी आलस्य नहीं किया। नाथके यहाँ अन्न-वस्त्रकी कोई कमी नहीं थी। भगवान्ने कभी किसी बातमें कोई कमी नहीं होने दी! यह प्रभाव नाथके पुण्यका जितना रहा हो उतना ही गिरिजाबाईके भी पुण्यका फल था। घरका सब काम-काज सँभालकर वह भी नाथके समान ही सदा हरि-चिन्तनमें ही मग्न रहती थीं। एकनाथ महाराजका प्रपंच और परमार्थ एकरूप होनेमें गिरिजाबाईकी बड़ी सहायता थी। नाथभागवतमें स्वयं एकनाथ महाराजने ही एक

जगह कहा है कि 'स्त्री-पुरुष दोनोंकी चित्तवृत्ति' एक होकर 'जब धर्म-प्रवृत्तिमें अनुकूल-वृत्ति होती है तभी उनको परलोक सधता है, औरोंको नहीं।' उनका यह कथन उनके स्वानुभवसे ही निकला है। प्रपंचका अन्तरंग गिरिजाबाईने सँभाला और बहिरंग सँभाला उद्धवने, इससे एकनाथजीको उस ओर कुछ भी नहीं देखना पड़ा और इन्होंने भी दक्षताके साथ एकनाथजीकी सेवा करके अपना भी परमार्थ-साधन किया। 'भोजनके समयमें अतिथि, पति और पुत्र सब जिसकी दृष्टिमें समान हैं और धनका लोभ जिसके मनको स्पर्श भी नहीं करता उसी स्त्रीको ही परमार्थका अधिकार है।' यह स्वयं एकनाथजीने ही कहा है। इसी प्रकार गिरिजाबाई परमार्थकी अधिकारिणी हुईं और महाराजके सत्संगसे उन्हें परम सद्गति प्राप्त हुई। एकनाथ महाराजकी घर-गृहस्थीमें भी जो इतना आनन्द रहा सो गिरिजाबाईके ही सद्गुणोंके कारण। पति-पत्नी इतने एकचित्त होकर रहे कि ऐसा दृष्टान्त ही अत्यन्त दुर्लभ है। अनेक साधुओंने घर-गृहस्थी ही त्याग दी, जिसमें कोई झंझट ही न रहे। अनेक साधु ऐसे भी हुए जिन्होंने विवाह किया; पर उनकी घर-गृहस्थीका बुरा हाल रहा! परन्तु एकनाथ महाराजकी घर-गृहस्थी भी उत्तम प्रकारसे हुई। भगवद्भजन और सदावर्तके कारण एकनाथ महाराजका घर एक देवमन्दिर-सा ही शोभा पा रहा था और फिर इस मन्दिरमें नाथ और गिरिजाबाई ऐसे एकचित्त होकर रहते थे जैसे स्वयं श्रीलक्ष्मी-नारायण हों। उनके उस उदार प्रेम और प्रपंच-परमार्थके अलौकिक अभेद-आनन्दको देखकर भक्तजनोंको बड़ा ही सुख होता था। एकनाथ-जैसे सम्मान्य पुरुष-रत्नोंके अग्रणी और सत्क्रियाकी साक्षात् प्रतिमा गिरिजाबाई-

जैसी लक्ष्मीस्वरूपा स्त्री, ऐसे तुल्यगुण वर-वधूको एकत्र करके ब्रह्मा भी ऐसे धन्यवादके पात्र हुए जो उनके लिये प्रायः दुर्लभ ही होता है। इस कलियुगमें एकनाथ महाराजका-सा प्रपंच एकनाथ महाराजको ही नसीब हुआ।

नाथ जब पैठणमें आये तब ठीक उसी स्थानमें ठहर गये जहाँ गुरु-पत्रिका उनके हाथ आयी। पहले उन्होंने वहाँ एक कुटी बनायी थी, पीछे वहीं एक बड़ी हवेली बन गयी। पैठणमें उनका समय भजन-पूजन और परोपकारमें ही बीतने लगा। इनके वैराग्य, समत्व, शान्ति और पर-उपकारके लिये त्याग आदि गुण ज्यों-ज्यों लोगोंपर प्रकट होने लगे, त्यों-त्यों उनका आदर बढ़ने लगा। उन्होंने पहले-पहल एकादशीके दिन आत्मस्फूर्तिसे हरि-कीर्तन किया। उसे सुनकर उनपर लोगोंकी बड़ी श्रद्धा हुई। पीछे जन्माष्टमीके अवसरपर एकनाथने बड़े समारोहके साथ भगवान्‌का जन्मोत्सव किया। जबतक एकनाथ महाराज जीते थे तबतक यह जन्मोत्सव बराबर होता और उनके पीछे अबतक भी बराबर होता है। जन्माष्टमीका उत्सव जब उन्होंने आरम्भ किया तब हरि-कीर्तन करते हुए वह तत्काल 'अभंग' रचकर अपनी प्रासादिक वाणीसे सुनाने लगे। कीर्तन सुननेके लिये सब वर्णों और वृत्तियोंके लोग बड़े उत्साहसे एकत्र हुआ करते थे, किसीको मनाई नहीं थी। कीर्तन सुनकर सब लोग चित्रवत् मुग्ध हो जाते थे। जन्माष्टमीके इस प्रथम उत्सवमें विशेष बात यह हुई कि इसके लिये देवगढ़से एकनाथ महाराज जनार्दनस्वामीको लिवा लाये थे। तीर्थयात्राके पश्चात् गुरु-शिष्यकी यह पहली ही भेंट थी। उत्सवके निमित्त बहुत-सी सामग्री स्वामी महाराज देवगढ़से अपने साथ ले आये थे। उत्सवके लिये एक बड़ा मण्डप खड़ा

किया गया था। चौदह दिन उत्सव हुआ और उत्सवके इन दिनोंमें प्रतिदिन अन्नदान होता रहा। गुरुका सत्कार भी एकनाथजीने अपूर्व-जैसा किया। जनार्दनस्वामी सामने आसनपर विराजमान हैं, पैठणस्थ विद्वान् तथा अन्य लोग श्रवण कर रहे हैं, वृद्ध दादा-दादी भी अपने पोतेका गौरव देख रहे हैं, इस ठाटके साथ नाथ कीर्तन करने लगे। एकनाथजीका वक्तृत्व, विषय-प्रतिपादनकी मनोहर शैली, ज्ञान-वैराग्यका निर्मल बोध करानेवाली उनकी पद्धति और भक्ति-प्रेमकी सरिता बहानेवाले उनके हृदयोद्गार, इन कारणोंसे श्रोताओंके लिये मानो वह परमानन्दकी दावत ही थी। गुरुके सामने कीर्तन करनेका जो सुयोग प्राप्त हुआ उससे शिष्यके अन्तःकरणमें प्रेमसरिताकी बाढ़ ही आ गयी। नाथके कीर्तनका रंग उत्तरोत्तर गाढ़ा ही होता गया। यहाँतक कि पण्ढरपुरके मन्दिरके एक ब्राह्मणको बिट्ठलभगवान्ने स्वप्न दिया कि 'आज-कल मैं पैठणमें एकनाथके कीर्तनमें पीछे ध्रुवपद* धरे खड़े रहता हूँ।' कीर्तनकी क्या महिमा और मर्यादा है इसका वर्णन स्वयं एकनाथ महाराजने एक बड़ी सुन्दर कवितामें कर रखा है। (उसका हिन्दी-गद्यानुवाद मूलके पदलालित्यका आनन्द तो नहीं दे सकता पर शायद भावका आभास मिल जाय) एकनाथ महाराज कहते हैं—

'भगवान्के सगुण चरित्र जो परम पवित्र हैं उन्हींका वर्णन करना चाहिये। सबसे पहले सज्जनवृन्दोंका मनोभावसे वन्दन करना चाहिये। सत्संगमें अन्तरंगसे भगवान्का नाम लेना चाहिये

* हरिकीर्तनमें कीर्तनकारके पीछे तानपूरा लिये या झाँझ लिये एक व्यक्ति खड़ा रहता है, जो कीर्तनकारके गाने या भजन करनेके पश्चात् वही सुर अलापता है। इसीको ध्रुवपद धरे खड़े रहना कहते हैं।

और कीर्तनरंगमें भगवान्‌के समीप आनन्दसे झूमना चाहिये। भक्ति-ज्ञान-विरहित बातें न करके प्रेमभरे भावोंसे वैराग्यके ही उपाय खोलकर बताने चाहिये, जिससे भगवान्‌की मूर्ति अन्तःकरणमें बैठ जाय, यही सन्तोंके घरकी कीर्तन-मर्यादा है। अद्वय भजन और अखण्ड स्मरणसे करताल बजे तो एक क्षणमें श्रीजनार्दनके अन्दर एका (एकनाथ) कहते हैं कि मुक्ति हो जाय।'

सगुण भक्ति बढ़े और सगुण-निर्गुणके ऐक्यकी भावना उदय हो, यही रुख एकनाथजीके कीर्तनका रहा करता था। 'आन्तर-शुद्धिका कारण मुख्यतः हरि-कीर्तन' ही है, यही वह सदा कहा करते थे।

'कीर्तनसे स्वधर्मकी वृद्धि होती है, कीर्तनसे स्वधर्मकी प्राप्ति होती है, कीर्तनसे परब्रह्म समा जाता है, कीर्तनके सामने मुक्ति भी लज्जित होकर भाग जाती है। भाव-भक्तिपूर्वक कीर्तन करनेसे जनार्दनको सन्तोष होता है; एक-दूसरेका आलिंगन होता और एक-दूसरेके गलेमें पड़ी बाँहें फिर विलग नहीं होतीं। तब भगवान् बाहर और अन्दर, चराचरमें प्रकट होते हैं, फिर संसारमें देखनेयोग्य और कुछ नहीं रह जाता। इस प्रकारसे योग-यागादि तप-साधनोंको हरि-कीर्तनने अनाथ कर डाला। कलियुगमें नाम-स्मरणसे हरि-कीर्तनमें जडका उद्धार होता है।'

कीर्तन और नाम-स्मरणके सम्बन्धमें एकनाथ महाराजके सैकड़ों अभंग हैं, उन सबका यही सारांश है। एकनाथ महाराजके यहाँ सबके लिये सदावर्त था—कोई आये, ब्राह्मण या चाण्डाल, उसमें कोई भेद नहीं था, सबको समानरूपसे अन्नदान किया जाता था। रातके समय बाललीलाका कीर्तन होता और फिर दधिकाँदोका उत्सव भी। कीर्तनके अन्तमें ललित (एक प्रकारका प्रहसन जिसमें

सब पात्रोंकी भूमिका अकेले वक्ताको ही करके दिखानी पड़ती है)—यह प्रहसन एकनाथ महाराजने शुरू किया। इससे सब प्रकारके खेल और कौशल उनके कीर्तनके उपांग-स्वरूप इस उत्सवमें आ गये, इस क्रमसे सब प्रकारके लोग भी आ गये और इस प्रकार सब प्रकारकी वृत्तियों, खेलों और कौशलोंपर उनकी कविताएँ बनीं। ये कविताएँ कबड्डीपर हैं, गुल्ली-डण्डेपर हैं, पुरुषोंके, स्त्रियोंके और बच्चोंके सब प्रकारके खेलोंपर हैं; साँप-बिच्छूपर भी हैं, छोटी-बड़ी कई चीजों और ढोंगियोंके ढंगोंपर भी हैं। इन कविताओंकी भाषा बड़ी सरल, बाल-बोध है, सबकी समझमें आ जाय, ऐसी है। नित्यके व्यवहारमें, नित्यकी भाषा और भावसे ही सर्वसाधारणमें हरि-भक्ति उत्पन्न करनेका उनका यह ढंग देखकर उनकी उदारता धन्य मालूम होती है। किसी भी धर्मको माननेवाला मनुष्य हो, कोई भी पेशा करता हो, किसी जातिका हो, स्त्री हो या पुरुष हो, वह सबका स्वागत करते थे और सबको, जिसको जैसा अधिकार मिला उसी अधिकारके अनुसार ब्रह्मज्ञानका उपदेश करते थे*। उनकी यह उदार चित्त-वृत्ति देखनेसे यह मालूम होता है कि धर्म-प्रवर्तकोंमें इस परम भागवतोत्तमकी गणना इतनी प्रधानताके साथ क्यों की गयी? हरि-भक्तिका पन्थ

---

* स्वामीविवेकानन्दने धर्म-प्रवर्त्तकोंका लक्षण इस प्रकार बताया है—

The only true teacher is he who can convert himself as it were into a thousand persons at a moment's notice. The only true teacher is he who can immediately come down to the level of the student and transfer his soul to the student's soul, and see through the student's eyes and hear through his ears and understand through his mind, Such a teacher and none else can teach.

ही ऐसा है कि जिसमें श्रद्धा है वही इसका अधिकारी है। जो अन्तःकरणसे यह चाहता है कि जिस तरह हो भगवान् मिलें वही परमार्थका अधिकारी है, उसकी जाति, वर्ण, वृत्ति चाहे कुछ भी हो।

हो कां वर्णामाजी अग्रगणी। जो विमुख हरि चरणीं।
त्याहुनि श्वपच श्रेष्ठ मानी। जो भगवद्‌भजनीं प्रेमल॥

(नाथभागवत, अध्याय ५। ६०)

'कोई सब वर्णोंमें श्रेष्ठ हो पर हरि-चरणसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जो भगवद्‌भजनका प्रेमी है।' अस्तु, इस प्रकार एकनाथ महाराजने जन्माष्टमीका उत्सव आरम्भ करके भागवत-धर्मका मानो झण्डा ही फहरा दिया।

श्रीमद्‌भागवत सुननेमें उद्धवकी उत्कण्ठा और श्रद्धा देखकर एकनाथ महाराजने भागवत बाँचना आरम्भ किया। उनका निरूपण स्वानुभवपूर्ण और प्रेमसे भरा हुआ होनेके कारण झुण्ड-के-झुण्ड श्रोता कथा सुनने दौड़े आने लगे और कथामें प्रेमानन्दसे झूमने लगे। भक्तोंको इसका ऐसा चसका लगा कि क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी अपना काम-धाम छोड़कर कथा सुनने जाने लगे। केशव कविने एकनाथ महाराजकी कथाका वर्णन किया है—'उनकी कथा भक्तिज्ञान-वैराग्ययुक्त हुआ करती थी। उनकी वाणीमें विलक्षण रस था, जिसका नित्य नया आस्वाद श्रोताओंको मिलता और प्रेमसे उनके हृदय भर जाते थे। सबके चित्त नित्य उस आनन्दको भोगते हुए उसी आनन्दमें लग गये। भक्ति-पन्थ ऐसा बढ़ा कि घर-घर भगवान्‌के नामका घोष होने लगा।'

कई श्रोता तो ऐसे थे कि भोजन भी एकनाथ महाराजके यहाँ ही कर लेते और फिर आनन्दसे कीर्तन भी सुनते हुए तल्लीन

हो जाते। महाराजके यहाँ नित्य ही नये पाहुन आया करते। पर इतने बड़े प्रपंचका यह सारा खर्च कैसे चलेगा, इसकी उन्हें कभी कोई चिन्ता नहीं हुई। 'मैं और मेरा परिवार या संसार' यह भाव ही उनके मनमें कभी नहीं आया। सारा परिवार और संसार भगवान्‌का है यही उनकी निरहंकार भावना थी। भगवान्‌के चरणोंमें संसार समर्पित करके भक्त निश्चिन्त रहते हैं और तब वह सारा प्रपंच भगवान्‌का ही हो जाता है।

सब दानोंमें श्रेष्ठ अन्नदान है और उससे भी श्रेष्ठ स्वस्वरूपदान है। एकनाथ महाराज ये दोनों दान आजीवन करते रहे और स्वयं भगवान् उनके घरमें विराजते थे। इससे उन्हें कभी किसी बातकी कमी नहीं हुई और फिर उनके हरि-कीर्तनका जो इष्ट परिणाम जनतापर हो सकता था वह तो हुआ ही। पर इससे भी अधिक लोकोपकार उनके सदाचारसे हुआ। सैकड़ों व्याख्यानों और कथा-प्रवचनोंसे जो काम नहीं होता वह सत्पुरुषके सदाचारसे होता है। सुनकर जो बात समझमें नहीं आती वह देखकर आ जाती है! क्षमा, शान्ति, भूतदया, निरहंकार, निःसंगता, हरि-भक्ति, परोपकार और इन्द्रिय-दमनादि गुणोंसे जो ओत-प्रोत है और जिसके नित्य-नैमित्तिक आचरणमें ये गुण सदा व्यक्त होते हैं ऐसे एक क्रियावान् पुरुषको देखकर जितने लोग सचेत होते हैं उतने व्याख्यान-कीर्तन, पुराणादि-श्रवणसे नहीं होते। एकनाथ महाराजने ग्रन्थ भी लिखे और कथा-कीर्तन भी किये, इससे समाजपर उनकी जो धाक जमी उससे सहस्रों गुण अधिक उनके आचरणसे जमी। संत उन्हींको कहते हैं जो केवल कहते नहीं, करके दिखाते हैं। संत पूर्णकाम ही होते हैं, पर बद्धोंको मुमुक्षु और मुमुक्षुओंको मुक्त करनेके लिये ही उनका जीवन होता है।

ज्ञानेश्वर महाराजने (ज्ञानेश्वरी, अ० १६ में) कहा है—

कां फेडित पापाताप । पोखीत तीरींचें पादप ।
समुद्रा जाय आप । गंगे जैसे ॥ १९९ ॥
कां जगाचें आंध्य फेडित । श्रियेचीं राउलें उघडीत ।
निधे जैसा भास्वत । प्रदक्षिणे ॥ २०० ॥
तैसीं बांधलीं सोडीत । वुडालीं काढीत ।
सांकडी फेडीत । आर्तांचिया ॥ २०१ ॥
किं बहुना दिवसराती । पुढिलांचें सुख उन्नती ।
आणीत आणीत स्वार्थी । प्रवेसिजे ॥ २०२ ॥

'गंगा सागरसे मिलने जाती हैं, पर जाती हुई जगत्‌का पाप-ताप निवारण करती और किनारेके वृक्षोंको पोसती जाती हैं। अथवा सूर्यभगवान् नित्यकी परिक्रमा करते हुए संसारका अन्धकार दूर करते और कमलोंको विकसित करते जाते हैं। उसी प्रकार आत्मस्वरूपको प्राप्त जो संत हैं, वे अपने सहज कर्मोंसे संसारमें बँधे बन्दिओंको छुड़ाते, डूबे हुओंको उबारते, आर्तोंके दुःख दूर करते रहते हैं। और यह सब वे यह समझकर नहीं करते कि हम कोई महान् उपकार कर रहे हैं, प्रत्युत उनका यह आचरण सहज होता है और उनके उस आचरणको देखकर सहस्रों मनुष्य अपने-अपने उद्धारका मार्ग ढूँढ़ने लगते हैं। संतोंकी जीवन-चर्या ही संसारके लिये आइनेके समान होती है। उनके सदाचरणको प्रमाण मानकर लोग उसका अनुकरण करने लगते हैं। एकनाथ महाराजका सदाचरण और निष्काम भगवद्भजन देखकर सहस्रों जीव तर गये।

एकनाथ महाराजके कीर्तनका लोगोंके चित्तपर इतना अच्छा परिणाम हुआ कि पैठणके लोग परमार्थचर्चा और नाम-स्मरणके

आनन्दमें ऐसे मग्न हो गये कि सकाम व्रतादिसे बहुतोंका चित्त हट गया और इससे बहुतोंकी जीविका भी छिन गयी। सत्यके तेजके सामने झूठ फीका पड़ जाता है और असलके सामने नकल नहीं ठहर सकती, उसी प्रकार उस अन्तर्बाह्य एकरूप महाभागवतके सामने पैठणके वैदिक, पण्डित, याज्ञिक और सब विद्वान् हतप्रभ हो गये और इनमेंसे बहुतेरे इनका द्वेष भी करने लगे। द्वेषसे निन्दाका नाला बहने लगा और निन्दासे अत्याचारके जहरीले कीड़े पैदा हुए। एकनाथ महाराज-जैसे महात्माको अनेक प्रकारसे पीड़ा पहुँचानेके लिये कुछ लोगोंने कमर कसी। इनपर अनेक प्रकारके आक्षेप किये जाने लगे। लोग कहने लगे कि यह देववाणीका अपमान करके मराठी-भाषामें ग्रन्थ रचता है, कर्मठताको नष्ट करके नाम-स्मरणके पीछे लोगोंको पागल बना देता है। सकाम व्रतादिका उपहास करके निष्काम प्रेमको ही बढ़ाता है, इस कारण वेद-शास्त्रोंकी अपेक्षा भक्ति-मार्गका ही प्राधान्य बढ़ता जा रहा है, आत्माकी ही धुनमें सब मस्त हो रहे हैं, प्रवृत्तिका शास्त्र कोई हमसे पूछता ही नहीं है, फिर यह श्रोत्रिय ब्राह्मणोंके समान ही अन्य हीन वर्णों और अन्त्यजोंतकको भी अपनाता है, इससे ब्राह्मणोंकी कुछ महिमा ही न रह गयी, ब्रह्मज्ञान भी यह सबको राह चलते बाँटा करता है जिससे मान्त्रिकों और ओझाओंको भी कोई नहीं पूछता।' इस प्रकार जहाँ-तहाँ निन्दा आरम्भ करके इन लोगोंने एकनाथ महाराजकी फजीहत करने और अन्य प्रकारसे उन्हें पीड़ित करनेका उद्योग आरम्भ किया! एकनाथ महाराज किसीके चित्तको जरा भी कष्ट नहीं पहुँचाते थे, ब्राह्मणोंका यथोचित सम्मान करते थे, वेद-स्मृति-पुराणादिका पूर्ण आदर करते थे, तथापि अन्तःशुद्धि ही

भगवान्‌को प्राप्त करनेका मुख्य साधन है, और '**अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः**' भगवान्‌के इस शुद्ध स्वरूपको अपने ही हृदयके अन्दर जानो और अनन्यमन होकर उसे पुकारो तो वह तुम्हारे बिलकुल पास ही है, यही उनका मुख्य उपदेश होता था। यह वास्तविक ज्ञान जिनकी जीविकामें बाधक होता था वे उनसे द्वेष करते थे। दम्भ और दाम्भिकोंपर एकनाथ महाराज निर्भय होकर प्रहार किया करते थे। झूठको कभी उन्होंने आश्रय नहीं दिया और सच बोलनेमें कभी संकोच नहीं किया। 'बाह्यवेशधारियोंको बोध दिलानेवाले उनके कुछ 'अभंग' हैं। इन अभंगोंको देखनेसे मालूम होता है कि भण्डाफोड़ करनेमें उन्होंने कितनी कुशलतासे काम लिया है। परमार्थके लिये अन्तःसाधन ही मुख्य साधन है, यही वह कहा करते थे, इससे बाहरी साधनोंकी दूकान लगाकर बैठे हुए धनलोभी उनसे चिढ़ गये थे।

दाम्भिक वेशवाले पेटपरायण महात्मा सदा ही सत्यका प्रतिपादन करनेवालोंका द्वेष किया करते हैं। एकनाथ स्वयं ब्राह्मण थे, और सच्चे ब्राह्मणभक्त भी थे; परन्तु दुराचारी, धर्मध्वजी, पाखण्डी और नास्तिक ब्राह्मणोंका पक्ष उन्होंने कभी नहीं किया। उनके दरबारमें सदाचार और हरिभक्तिका ही सर्वोपरि मान था। हरिभक्त भंगीको वह नास्तिक और दुराचारी ब्राह्मणकी अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ मानते थे। उन्हें संकरता प्रिय नहीं थी, तथापि—

जन्म कर्म वर्णाश्रम जाती। पूर्ण भक्त हातीं न धरिती॥
चहूँ देहांची अहंकृती। स्वप्नीं ही न धरिती हरिभक्त॥

अर्थात् 'जन्म, कर्म, वर्णाश्रम, जातिको जो पूर्ण भक्त हैं वे पकड़े नहीं रहते। चारों देहोंका अहंकार त्याग देते हैं, स्वप्नमें भी

हरिभक्त ऐसा अहंकार नहीं धारण करते।' इस बातको वह मानते थे। ब्राह्मणको केवल इसलिये कि वह ब्राह्मण है अथवा भंगीको केवल इसलिये कि वह भंगी है, अपनानेवाले वह नहीं थे। देह-भावको त्यागनेवाले उच्च कोटिके महात्माओंकी जो समत्वदृष्टि ब्राह्मण और चाण्डालके प्रति होती है वही समत्वदृष्टि एकनाथ महाराजकी थी। उनपर जो आक्षेप और अत्याचार हुए, उनकी अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। एकनाथ महाराजने स्वयं भी अपने भागवत-ग्रन्थमें अपने विषयमें लोग क्या-क्या तर्क करते हैं, इसका बड़ा मनोरंजक वर्णन किया है—

'एका जनार्दनकी यह तारीफ है कि कोई कहते हैं, वह भक्त है; कोई कहते हैं, वह जीवन्मुक्त है और कोई उसे पक्का प्रपंची मानते हैं और कहते हैं कि यह एका जनार्दन न आसन जानता है, न कोई ध्यान जानता है। नियम-मुद्रा-माला कुछ भी नहीं जानता और न इसमें उपासनाका कोई लक्षण है। भला, इसने किस मन्त्रकी दीक्षा ली है? और शिष्योंको क्या उपदेश करता है? किसीको मन्त्र-वन्त्र कुछ नहीं देता। भावुक लोग भावके पीछे इसके फेरमें पड़ गये हैं। केवल हरिनामका घोष कराकर इसने लोगोंको चक्करमें डाल रखा है। ऐसे नाना प्रकारके विकल्प स्वयं जनार्दन ही तो उत्पन्न किया करते हैं।'

एकनाथ महाराजकी सहिष्णुता, क्षमाशीलता अथवा समता अलौकिक कोटिकी थी, इससे निन्दक और अत्याचारी उनका कुछ भी बिगाड़ न सके। अपकारियोंका भी उपकार करनेवाले महात्माओंका भला कोई क्या अपकार कर सकता है? अत्याचारियों और निन्दकोंसे भी एकनाथ महाराजने कभी घृणा नहीं की, उनके वाग्बाण शान्तिके साथ सह लिये और उनका भी

पारलौकिक कल्याण हो, यही इच्छा की। एकनाथ महाराजसे समय-समयपर जो प्रायश्चित्त कराये गये उन्हें उन्होंने बड़ी शान्तिके साथ किया। निन्दकोंकी कभी उन्होंने निन्दा नहीं की, प्रत्युत उन्हें सम्मानित कर उनका आत्यन्तिक क्षेम-साधन करनेमें ही उनका ध्यान रहता था। महाराजने एक जगह कहा है—'शिष्यके क्षोभको जो सह नहीं सकता, निन्दकोंकी निन्दाको जो अपने चित्तमें पचा नहीं सकता वह परमार्थमें कोरा ही रह जाता है, क्षोभके कारण वह सचमुच ही परमार्थसे वंचित होता है। दूसरोंके प्रकृति-गुणोंको देखनेसे मन सर्वथा क्षुब्ध होता है, इसलिये उन प्रकृति-गुणोंको देखना ही न चाहिये, सब भूतोंमें समदृष्टिसे केवल एक चैतन्य ही देखना चाहिये। इसीसे यह निश्चय होता है कि गुरु तो गुरु है ही, पर शिष्य भी संवाद-गुरु है और निन्दक तो निरपराध परम गुरु है और यह सब कृपा है सद्गुरु जनार्दनकी।'

सबके प्रकृति-गुणधर्मोंको न देखकर उनके अन्तस्तलमें उनके चिद्रूपको देखना, यही तो सन्तोंका लक्षण है। और एक स्थानमें साधु-असाधुकी चर्चा करते हुए महाराजने कहा है—'संसारमें साधु भी हैं, असाधु भी हैं; पर वह (पारमार्थिक) दोनोंको ब्रह्मरूप ही देखता है। इस प्रकार तद्रूपको देखते-देखते तद्रूप ही होकर निज आत्मरूपको देख लेता है, अपने आत्मरूपको जान लेता है। जहाँ ऐसी बात है वहाँ किसकी निन्दा की जाय और किसका गुण गाया जाय? मैं ही विश्व हूँ, जब यह बोध हो गया तब स्तुति-निन्दा तो उसीमें लय हो गयी।'

निन्दकोंके सम्बन्धमें महाराजने एक बड़ा ही सुन्दर पद्य बनाया है—जिसका भावार्थ यह है—'निन्दक बड़े कामका होता

है, आत्मारामका वह सखा ही है। निन्दक हमारी काशी है, हमारे सब पापोंका विनाशी है। निन्दक हमारी गंगा है, हमारे सब पापोंको भंग करनेवाला है। निन्दक हमारा सखा है, हमारे कपड़ोंको बिना कुछ लिये ही धो डालता है। निन्दक हमारा गुरु है, सद्गुरु जनार्दन महाराजके महद्रूपके बाहर नहीं।'

एकनाथ महाराजकी निन्दा करनेवालोंके प्रति उनका ऐसा विशुद्ध भाव था। शान्ति, क्षमा, दया आदि गुणोंसे वह निन्दकोंको सन्मार्गपर ले आते थे। उनके धैर्य, समत्व और शम केवल अनुपम थे।

सभी महात्माओंको दुष्ट और निन्दक लोग पीड़ा पहुँचाया करते हैं। प्रत्येक महान् पुरुषको अपनी महत्ताके लिये संसारकी चौकीपर निन्दारूप कर देना ही पड़ता है। जो निन्दाकी कसौटीपर ठहरते हैं वे ही महत्ता लाभ करते हैं। सत्य-असत्यके लिये मनको साथी बनाकर सन्त विचरा करते हैं। मनुष्य स्वभावतः ही आत्मस्तुति-प्रिय है, इससे निन्दाको वह सह नहीं सकता। परन्तु सन्त ऐसे मुलायम चमड़ेके मृग नहीं होते, सन्त होते हैं सिंह। जो दूसरोंकी निन्दा नहीं करते और दूसरोंके द्वारा होनेवाली अपनी निन्दाको उदार-चित्तसे सह लेते हैं। यही मेरुतुल्य धीर पुरुष महत्पद लाभ करते हैं। उनमें इतनी मिठास होती है कि निन्दक भी उन्हें प्यारा होता है। जो काम भगवान्‌की ओरसे उनके लिये नियत होता है, उसमें वे इतने संलग्न रहते हैं कि दूसरोंके कामोंमें सिर खपानेकी उन्हें फुरसत ही नहीं होती और जो उनके दोष बतलाकर उन्हें जगाते हैं उन्हें वे अपने मित्र, हितकर्ता और गुरु कहकर अपनाते हैं। एकनाथ महाराजने भावार्थ-रामायणमें कहा है—'मेरी कथाकी जो निन्दा करते हैं

और जो स्तुति करते हैं वे दोनों ही मेरी माताके समान हैं। निन्दक भी मेरे लिये दयालु और प्यारी माता ही हैं। जैसे माताके हाथ बाहरी मलको बाहरसे ही धो डालते हैं वैसे ही कलिका जो बाह्य मल है उसे निन्दक अपने मुँहसे निर्मल कर देता है। इसलिये वास्तवमें निन्दक परमार्थमें सहायक सखा है। उस निन्दककी जो निन्दा करता है वह सर्वथा दोषी होता है। निन्दा क्या है, परमामृत है, निर्द्वन्द्व सुखस्वार्थ है। सच पूछिये तो निन्दक अपना स्वार्थ नहीं देखता, परोपकारमें ही अति समर्थ होता है। जहाँ निन्दा सुखसे समाती है उसके चरणोंपर मैं मस्तक नवाता हूँ। जो निर्द्वन्द्व होकर निन्दा सह लेता है उसकी माता धन्य है।'

कैसी विलक्षण उदारता है? एकनाथ महाराज जबतक जीते थे तबतक उनके पीछे निन्दक और दुष्ट लोग लगे थे। गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके समयसे गोदावरी-तीरपर अपनी देह छोड़नेके समयतक जैसे उन्होंने अपना सारा जीवन परोपकारमें बिताया, वैसे ही उनके निन्दकोंने भी अन्ततक उनका पीछा करनेमें कोई बात नहीं उठा रखी! पर एकनाथ महाराजकी समदृष्टिमें निन्दक भी गुरुरूप ही थे!

कर्णाटकमें एक बड़े महाजनने विट्ठल और रुक्मिणीकी सुन्दर मूर्तियाँ तैयार करायीं और वह अब इनकी स्थापना कराना चाहता था। तीन दिन लगातार स्वप्नमें उसे यह आदेश हुआ कि 'इन मूर्तियोंको पैठणमें श्रीएकनाथ नामक सत्पुरुषके पास पहुँचा दो।' इसे भगवान्‌का आदेश मानकर वह साहूकार उन मूर्तियोंको बड़े ठाट-बाटके साथ पैठणमें ले आया। नगरमें उसके पहुँचते ही यजमान-वृत्तिवाले ब्राह्मण अपनी-अपनी बहियाँ लेकर उसके पास पहुँचे। पर उसे एकनाथ महाराजके पास ही जाना था और

किसीसे कुछ मतलब नहीं था, इसलिये वह सीधे एकनाथ महाराजके घरपर ही पहुँचा। महाराज उसके आगमनका हेतु समझ गये। यथोचित आवभगत होनेके पश्चात् उसने अपना अभिप्राय निवेदन किया। एकनाथ महाराजने साइत देखी और उस दिन बड़े समारोहके साथ विट्ठल-रुक्मिणीका विधिपूर्वक विवाह कराके मूर्तियोंकी प्राण-प्रतिष्ठा की और ब्राह्मण-भोजन, दान-धर्मादि बड़े प्रेमके साथ करके अपनी विट्ठल-भक्ति व्यक्त की। वह साहूकार कुछ दिन वहाँ रहा, उसने एकनाथ महाराजके कीर्तन श्रवण किये और परम प्रसन्न हुआ। उसने एकनाथ महाराजसे दीक्षा ली और महाराजके गुणोंकी परम आनन्ददायक स्मृतिके साथ घर लौट गया। इस प्रकार स्थापित विट्ठल-मूर्तिकी पूजा आदि एकनाथ महाराज बड़े भक्तिभावसे करते थे, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। मन्दिर बनवानेका सब खर्च उसी महाजनने दिया था।

एकनाथ महाराजकी कर्मनिष्ठा उनकी ब्रह्मनिष्ठाके समान ही थी। वह ऐसे कठोर-कर्मठ भी नहीं थे कि कर्मको ही सब कुछ समझें और ऐसे कर्महीन भी नहीं थे कि कर्मको कुछ भी न समझें। इन दोनों चरम बिन्दुओंको छोड़कर वह दोनोंके उस मध्य-बिन्दुमें रहते थे जहाँ दोनोंके सत्य समन्वित होते हैं। उनका सिद्धान्त उन्हींके शब्दोंमें यों था कि 'जिससे आत्मानुसन्धान टूटता हो वह कर्म त्याज्य है और जिससे मन स्वरूपनिष्ठ होता हो वह कर्म कर्तव्य है।' इसी सिद्धान्तके अनुसार उनका व्यवहार था। अनाचार और अत्याचार इन दो सिरोंके बीचमें सदाचार है वही सन्तोंको स्वीकार होता है। वर्णसंकर भी न हो और वर्णाभिमान भी न हो, इस समतुल्य अवस्थामें रहना सन्तोंसे ही बन पड़ता

है। कर्म, ज्ञान, योग, याग, जप, तप, वेदाध्ययन, वर्णाश्रम आदिमेंसे किसी एकके पीछे पड़कर उसीके वृथाभिमानसे शब्द-पण्डित झगड़ा किया करते हैं, पर सन्त इन सब उपायोंका प्रयोजन जिस साध्यके लिये होता है उसी साध्यकी ओर मुख्यत: देखते हैं और उसी दृष्टिसे सम्पूर्ण व्यवहार करते हैं! भगवान् ही सब साधनोंके साध्य हैं और सब चराचर प्राणियोंमें भगवान्को देखकर सर्वत्र अखण्ड ब्रह्मबुद्धिको स्थिर रखना और सबके कल्याणका उद्योग करना अर्थात् लोकसंग्रह और लोकोपकारमें तन-मन-प्राण अर्पण करना ही सच्ची हरिभक्ति है। समदर्शी, निरपेक्ष और निरहंकार होकर, सब भूतोंमें भगवान् भरे हैं जानकर, जो लोकोपकार होता है, वही उत्तम हरि-भजन है। सब प्राणियोंमें भगवान्को विद्यमान जानकर उनके हितार्थ अहं-भावरहित होकर काया-वाचा-मनसा उद्योग करना ही भगवान्की सेवा है। ऐसे लोकोपकारमें एकनाथ महाराज सदा ही लगे रहते थे। संसार और जगत्से पृथक् आत्माको ही सब कुछ मानकर उसीको पकड़े रहनेवाले निर्गुणवादी और मूर्ति तथा सगुणको ही श्रेष्ठ माननेवाले मूर्तिपूजक इन दोनोंके मध्यमें, अर्थात् इन दोनोंका अपने अन्दर समावेश करनेवाले भागवत-धर्मके एकनाथ महाराज एक बहुत बड़े प्रवर्तक थे। भक्तिके बिना जो केवल मूर्ति-पूजाकी रस्म अदा करते हैं, भेड़-बकरियोंका बलिदान कर जो केवल कामनिक व्रतोंका आचरण करते हैं, भगवान् अपनी मायासे छोटे बनकर केवल मूर्तिमें ही रहते हैं ऐसा जो समझते हैं, उनकी एकनाथ महाराजने कभी परवा नहीं की। जो स्थूल है वही सूक्ष्म है, दृश्य है वही अदृश्य है, व्यक्त है वही अव्यक्त है, सगुण है वही निर्गुण है, अन्दर है वही बाहर है—इसीका उन्होंने सब जगह डंका बजाया है।

सगुण-निर्गुणकी एकताका प्रतिपादन एकनाथ महाराजने अपने भागवत-ग्रन्थमें अनेक स्थानोंमें बहुत ही सुन्दर किया है। एक स्थानमें सगुणोपासनाका मर्म बतलाते हुए उन्होंने कहा है— 'निर्गुणका बोध होना बड़ा कठिन है, वह अगम्य है, मन-बुद्धिके परे है; शास्त्रोंके संकेत वहाँ कुछ काम नहीं देते; वेद भी मौन ही रह जाते हैं। सगुण मूर्तिकी यह बात नहीं है। वह सुलभ है, सुलक्षण है। देखते ही भूख-प्यास छूट जाती है। मन शान्त हो जाता है। जो नित्य-सिद्ध सच्चिदानन्द है, प्रकृतिके परे परमानन्द है, वही स्वानन्दकन्द गोविन्द अपनी लीलासे सगुण हुआ है। (श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—) हे उद्धव! मेरे धैर्य, वीर्य, उदार-कीर्ति, गुण-गाम्भीर्य, शौर्य, ख्याति आदि जो गुण प्रकट होते हैं, उनका कारण तो मेरी सगुण मूर्ति ही है। मेरी इस मूर्तिके दर्शनसे ही नेत्र सार्थक होते हैं, प्राणी जन्म-मरणके चक्करसे छूटते हैं, विषयोंके परे पहुँचते हैं। इसी मूर्तिके दर्शनसे जो दीपकलिका हाथमें आ जाती है, उससे सारा घर प्रकाशमय होकर जगमगा उठता है। ज्यों ही मेरी इस मूर्तिका ध्यान जिस किसीको लग जाता है त्यों ही वह स्वयं चैतन्यमय हो जाता है। इस प्रकार यह देख लो कि सगुण-निर्गुण दोनों एक ही हैं।........'

इस प्रकार सगुण-निर्गुणका अभेद ही भागवत-धर्मकी शिक्षा है और इसलिये महाभाग भागवतोंने कहीं भी मूर्ति-पूजाका अनादर नहीं किया है। एकनाथ महाराजने तो अपने भागवत-ग्रन्थके २७ वें अध्यायमें सम्पूर्ण पूजा-विधिका विस्तारके साथ वर्णन किया है। उसी प्रकार ११ वें अध्यायके ३७-३८ वें श्लोकोंपर एकनाथ महाराजने जो टीका लिखी है वह भक्तजनोंके अवश्य मनन करनेयोग्य है। महाराजने ७ वें अध्यायमें कहा है—

भगवान्‌का तो पहले नाम भी नहीं होता। भक्ति ही उनके नाम-रूप सब कुछ प्रतिष्ठित करके उन्हें देखती है, भक्ति ही उन्हें नाना प्रकारके विलास भी अर्पण करती है। इस प्रकार भगवान्‌को भक्तिने ही भगवान् बनाकर वैकुण्ठमें ला रखा। भक्तके इस भावसे भगवान् गद्‌गद हो गये और भक्त जो कहे वही करने लगे। भगवान् न तो नर बने न नाहर। हाँ, भक्तोंके वचनोंको उन्होंने सत्य किया। खम्भमें भी प्रकट हुए भक्तके शब्दको सत्य करनेके लिये। अब भी प्रत्यक्ष प्रमाण है इस बातका कि दासके वचनसे पत्थरकी मूर्तिमें भी आनन्दघन भगवान् प्रकट होते हैं।'

यह जो अन्तमें प्रत्यक्ष प्रमाणकी बात कही है वह एकनाथ महाराजने अपने ही अनुभवको संकलितरूपसे प्रकट किया है। कर्णाटकका साहूकार जो विट्ठल-मूर्ति ले आया और एकनाथ महाराजने जिसकी स्थापना की उसीके सम्बन्धमें यह कथा प्रसिद्ध है कि महाराजकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् उस मूर्तिमें प्रकट हुए और महाराजके हाथपर रखा हुआ मक्खन उन्होंने भक्षण किया। भगवान्‌के सम्बन्धमें महाराजने कई उत्तम अभंग रचे हैं, जिनमेंसे कुछका भाव यहाँ इस अवसरपर देना बहुत ही उपयुक्त होगा—

'मैं जो हूँ वही मेरी प्रतिमा है, वहाँ कोई दूसरा धर्म नहीं है। उसमें मेरा ही वास है, भेद और आयासका कुछ काम नहीं। कलिमें प्रतिमा ही सबसे श्रेष्ठ साधन है, ऐसा दूसरा साधन नहीं। एका जनार्दनकी शरणमें है, दोनों रूप भगवान्‌के ही हैं।

'भगवान् सर्वत्र हैं, पर जो भक्त नहीं हैं उन्हें नहीं दिखायी देते। जलमें, थलमें, पत्थरमें, कहाँ नहीं हैं? जिधर देखो उधर ही भगवान् हैं, पर अभक्तोंको केवल शून्य दिखायी देता है।

जनार्दनके चरणोंमें जबतक भक्ति नहीं होती तबतक भगवान्‌के दर्शन नहीं होते।'

'एकत्वके साथ सृष्टिको देखनेसे दृष्टिमें भगवान् ही भर जाते हैं। वहाँ द्वैतकी भावना नहीं होती, ध्यान भगवान्‌में ही लगा रहता है। वहाँ मैं-तू या मेरा-तेरा कुछ भी नहीं रहता, रहते हैं केवल भगवान् ही। ध्यानमें, मनमें, अन्तर्जगत्‌में और बहिर्जगत्‌में एक जनार्दन ही हैं, एक भगवान् ही हैं।'

एकनाथ महाराजके चरित्रमें उनके साधुत्वके विषयमें जो अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं वे आगे यथाप्रसंग कही जायँगी। पितरोंके लिये बनाया हुआ भोजन दयावश अन्त्यजोंको परोस देना, चोरोंको भोजन कराना, महारके बच्चेको गोदमें उठा लेना और उसे उसकी माताके पास पहुँचा देना, तीर्थोदक गधेको पिलाकर उसकी प्यास बुझाना इत्यादि अनेक बातोंसे एकनाथ महाराजके समचित्तत्व और भूतदयाका यथेष्ट परिचय मिलता है। अपनी स्त्रीकी पीठपर उछलकर बैठ जानेवाले ब्राह्मणको पुत्रवत् मानना और प्रतिदिन अपने बदनपर थूकनेवाले यवनके लिये १०८ बार स्नान करना इत्यादि बातें उनकी अनुपम शान्तिका परिचय देनेवाली हैं। कृष्णदास नामक रामायणके एक अनुवादक कविकी मृत्युको टाल देना, श्रीविट्ठल-मूर्तिसे मक्खन खिलवाना, पाषाणके नन्दीसे चरी चबवाना, पत्थरको पारस बना देना, श्राद्धमें ग्रामवासियोंके पितरोंको स्वर्गसे नीचे बुला लाना इत्यादि चमत्कार इस बातके परिचायक हैं कि किस प्रकार एकनाथ महाराजकी अनन्य भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् अपना प्रभुत्व भुलाकर भक्तके आश्रित हो गये। ऐसी बातें लोकप्रिय होनेका मुख्य कारण भी यही है कि सहस्रों मनुष्योंका यही शुद्ध विश्वास

रहा कि एकनाथ महाराज अलौकिक विभूति और भगवान्‌के प्रिय और भक्त हैं। एकनाथ महाराज जब पण्ढरपुर गये तब वहाँके लोगों और हजारों वारकरियोंने उनका बड़ा सत्कार किया, जब वह आलन्दी गये तब वहाँ उन्होंने श्रीज्ञानेश्वर महाराजका प्रत्यक्ष दर्शन किया, काशी गये तब उन्हें कष्ट देनेवाले संन्यासी और विद्वान् शास्त्री अन्तको उनके भागवतका जय-जयकार करने लगे और उनके चरणोंमें शीश नवानेको उत्सुक हो उठे। इन सब बातोंसे यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि एकनाथ महाराज कितने लोकमान्य थे। रुक्मिणी-स्वयंवर, भागवत, भावार्थ-रामायण, अन्य दस-पाँच ग्रन्थ और सहस्रों अभंग उनकी भगवत्-स्फूर्तिके चिरजीवी साक्षी हैं। इस प्रकार गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते समयसे लेकर सारा जीवन लोकोपकारमें व्यतीत करते हुए हजारों जीवोंका उद्धार करके अन्तमें शाके १५२१ (संवत् १६५६) में वह महापुरुष अपना मर्त्य कलेवर छोड़कर परमधाम सिधारे।

एकनाथकी गुरुभक्ति

शिष्य ऐसा होना चाहिये कि 'गुरु-सम्प्रदाय-धर्म ही जिसका वर्णाश्रम-धर्म हो, गुरु-परिचर्या ही नित्य-कर्म हो, जिसकी जिह्वापर गुरु-नामका ही मन्त्र हो और जो गुरु-वाक्यके बिना शास्त्रको भी स्पर्श न करे।'

ज्ञानेश्वरी, अ० १३

शाके १४९७ के लगभग अर्थात् एकनाथ महाराजका भागवत-ग्रन्थ पूर्ण होनेके दो वर्ष बाद श्रीजनार्दनस्वामीने शरीर त्यागा। जनार्दनस्वामीके अनेक शिष्योंमें रामा-जनार्दन, एका-जनार्दन और जनीं-जनार्दन—ये तीन प्रधान शिष्य थे और इन तीनोंमें एका-जनार्दन अर्थात् एकनाथ महाराज ही उनके पट्ट शिष्य थे। रामा-जनार्दनको श्रीविट्ठलभगवान्का वर प्राप्त हुआ और '**आरती ज्ञानराजा महाकैवल्यतेजा**' यह आरती उनकी सर्वमान्य हुई। जनीं-जनार्दन एकनाथ महाराजके दो वर्ष पश्चात् अर्थात् शाके १५२३ में इस लोकको छोड़ गये। यह बीजापुरके मुसलमान-राज्यमें तहसीलदार थे। इनके उपास्यदेव गणेश थे। पैठणके समीप गंगामसाले गाँवमें इन्होंने श्रीगणेशजीकी स्थापना की है। बीड स्थानके पाटांगण नामक देवस्थानके अधिकारीजन जनीं-जनार्दनके वंशज हैं। तीसरे शिष्य एका-जनार्दन जो इस चरित्रके नायक हैं, जगद्विख्यात ही हैं। इन तीनोंके अतिरिक्त उनके और भी बहुत-से शिष्य थे। गुरु जनार्दनस्वामी असामान्य पुरुष थे। एकनाथ-जैसे शिष्यके कारण उनकी कीर्ति दिग्-दिगन्तमें फैल गयी। अकर्तात्मबोध होनेसे गृहस्थाश्रममें भी भगवत्-प्राप्ति हो सकती है यह उन्होंने अपने जीवनसे दिखा

दिया। जनार्दनस्वामी यद्यपि देवगढ़पर ही रहते थे तथापि महाप्रस्थानके लिये वह धौम्य ग्राममें आ गये थे और वहीं चैत्र बदी ६ को उन्होंने देहविसर्जन किया। यह ग्राम नगर जिलेमें जामखेड और शेवगाँवकी सीमापर है। वहाँ प्रतिवर्ष इस दिन उनकी तिथि मनायी जाती है।

जनार्दनस्वामीके देहपातका समाचार जब एकनाथ महाराजको मालूम हुआ तब पूर्णबोध होनेसे उनकी ब्राह्मी स्थिति भंग नहीं हुई। 'नाथभागवत' उन्होंने एक स्थानमें कहा है, 'मरता गुरु और रोता चेला' दोनोंको क्या ज्ञान मिला? ये दोनों ऐसे गुरु और चेला नहीं थे। गुरु मरे नहीं और चेला रोये भी नहीं। एकनाथ महाराजने उद्धवसे सब तैयारी करायी। और षष्ठीका उत्सव बड़े ठाटसे किया। एकनाथ-चरित्रमें षष्ठीकी महिमा बहुत बड़ी है। चैत्र बदी ६ को पाँच घटनाएँ बड़े महत्त्वकी हुई हैं। पहले ही महोत्सवके अवसरपर एकनाथ महाराजने उद्धवसे कहा—'चैत्र बदी षष्ठी श्रीजनार्दनका जन्म-दिवस है। उसी दिन उन्हें श्रीदत्तात्रेय-दर्शनका विलास भी प्राप्त हुआ था। मुझे भी श्रीजनार्दनके दर्शन इसी षष्ठीके दिन हुए जिससे सारी सृष्टिको अद्वैतरूपसे देखनेकी अभिनव दृष्टि प्राप्त हुई। इसी दिन श्रीजनार्दन स्वच्छन्द गतिसे देहाकृतिको त्यागकर सुख-स्थितिमें निज धामको चले गये। इन चार पर्वोंको जानकर इस दिन बड़े उत्साह और समारोहके साथ उत्सव करना चाहिये। पाँचवाँ पर्व भी इसी दिन है, यह तुम आगे अपनी आँखों देखोगे। इस प्रकार भावार्थी भक्तोंके लिये यह षष्ठी पंचपर्वश्रेणी है।'

(केशवकृत नाथ-चरित्र)

यही बात महीपतिने भक्त-लीलामृतमें भी कही है, इससे

यह मालूम हो जाता है कि १—जनार्दनस्वामीका जन्म, २—जनार्दनस्वामीको दत्तात्रेयभगवान्‌का साक्षात्कार, ३—जनार्दन-स्वामीका श्रीएकनाथपर अनुग्रह, ४—जनार्दनस्वामीका देह-त्याग और ५—आगे होनेवाला एकनाथ महाराजका देह-विसर्जन—ये पाँचों घटनाएँ चैत्र बदी ६ को ही हुईं और इस कारण यह 'पंचपर्वश्रेणी' भक्तोंमें बहुत ही विख्यात हुई। पैठणमें षष्ठीका जो उत्सव होता है वह एकनाथ महाराजके प्रयाणके पश्चात् उनकी पुण्यतिथिके तौरपर आरम्भ हुआ होगा, ऐसा बहुतोंका खयाल हो सकता है, पर बात ऐसी नहीं है; प्रत्युत एकनाथ महाराजने ही अपने गुरु जनार्दनस्वामीकी पुण्यतिथिके तौरपर आरम्भ किया और एकनाथ अपने गुरुके स्वरूपमें समरस होकर मिल गये, मानो इसी बातको दिखानेके लिये गुरुकी पुण्यतिथिके दिन ही एकनाथ महाराजने अपना शरीर-विसर्जन किया। पैठणकी षष्ठी इन पाँचों पुण्य-प्रसंगोंकी स्मृति-तिथि होनेसे उस दिन वहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। अस्तु, जनार्दन-स्वामीके देह-त्यागके पहले ही वर्ष एकनाथ महाराजने महोत्सव करके कीर्तन, भजन और अन्नदानके द्वारा सहस्त्रों जीवोंको सन्तुष्ट किया; पर इससे एकनाथ महाराजपर बनियेका ७०० रुपये कर्जा हो गया। बनियेने बड़ा तकाजा किया, तब भगवान्‌ने उद्धवके रूपमें स्वयं पहुँचकर सम्पूर्ण ऋण शोध कर दिया।

एकनाथ महाराजकी गुरुभक्ति अपूर्व थी। आजकल जहाँ-तहाँ गुरु और चेला मारे-मारे फिरते नजर आते हैं; पर नाथ-जैसे विरक्त शिष्य और जनार्दनस्वामी-जैसे विचारवान् गुरुका संयोग अति दुर्लभ है। एकनाथजीकी श्रद्धा-भक्ति और धी-शक्ति प्रचण्ड तो थी ही, परन्तु जनार्दनस्वामी-जैसे दत्तात्रेयस्वरूप सद्‌गुरुकी

प्राप्ति हो, इसके लिये उनका दैव-बल इससे भी महान् रहा होगा। जैसे किसी मनुष्यको तीव्र क्षुधा लगी हो और उसी क्षण उसके सामने कोई अत्यन्त स्वादिष्ट षड्रसयुक्त भोजन परोस दे, वैसी ही यह बात हुई। पूर्वाभ्यासबलसे निष्पाप हुए इस शिष्यको जनार्दनस्वामीने लोह-चुम्बकके समान अपनी ओर खींच लिया और स्वामीकी इस दयालुताको इस शिष्योत्तमने कृतकृत्य किया। स्वामीपर नाथजीकी देवतुल्य श्रद्धा थी। गुरु और ईश्वर भिन्न नहीं हैं; यही नहीं बल्कि ईश्वर प्राप्त करानेवाला गुरु ईश्वरसे भी श्रेष्ठ है, यह स्वयं उन्होंने ही अपने भागवत-ग्रन्थमें कहा है। उपासनाके लिये उपासकको सगुण भगवान्‌की कोई-न-कोई मूर्ति सामने रखनी पड़ती है। अखण्ड ध्यान-धारणाके द्वारा उस मूर्तिमें बोलते-चालते भगवान् जगानेके लिये और सगुण-साक्षात्कारके लिये प्रचण्ड एकनिष्ठताकी आवश्यकता होती है। भक्त जिस रूपका ध्यान करते हैं उसी रूपमें भगवान्‌को भक्तके लिये प्रकट होना पड़ता है। परंतु इतना भी कष्ट न करके सामने जो सद्गुरु साकार और सगुणरूपमें प्रत्यक्ष हैं, उन्हींको परमात्मभावसे पूजना और यह नित्य ध्यान करना कि वही सद्गुरु अपने सहित विश्वके अंदर और बाहर सर्वत्र व्याप रहे हैं, इसीका नाम गुरुभक्ति है। नाथकी भावना महान् थी और गुरु समर्थ थे। शिष्य शुद्ध हो, गुरु समर्थ हो और शिष्यकी भावना दृढ़ हो, इस त्रिवेणी-संगममें ही निर्मल गुरुभक्तिका शुद्ध स्वरूप दिखायी देता है। गुरु और भगवान्‌में भेद नहीं है। सगुण भगवान् और निर्गुण भगवान्‌में भेद नहीं है, भगवान् और विश्वमें भेद नहीं है तथा भगवान् और हममें भेद नहीं है। ऐसी अभेद-भक्तिका मर्म एकनाथ महाराजने गुरु-सेवामें ही जाना। भागवत-

धर्ममें अद्वैत और भक्तिका बड़ा ही सुन्दर मेल हुआ है। द्वैत-भक्तिमें कठिनता है और खण्डितता भी है; परन्तु अद्वैतभक्ति—अभेदभक्ति अनायास और अखण्ड होती है। ये बातें गुरुगम्य मार्गसे मालूम हो सकती हैं। ज्ञानेश्वर महाराजने कहा है, 'अद्वैतमें भक्ति होती है यह बात अनुभव करनेकी है, बोलनेकी नहीं।' अभेद गुरुभक्तिका आनन्द उद्धव और अर्जुनके समान आधुनिक कालमें नाथ और ज्ञानेश्वर-जैसे महाभागोंने ही लाभ किया। इनके चरित्रों और ग्रन्थोंमें जो जादू है वह इसी बातमें है। गुरु-सेवासे विषयवासना निर्मूल होती है, चित्त चिद्रूप होता है, विश्वाभास हटकर देहातीत देव ही पूर्ण कलासे प्रकट होते हैं, काया ब्रह्मरूप हो जाती है, एकत्वका उदय होता है, द्वैत रह नहीं जाता और सर्वत्र स्वस्वरूपाविर्भाव होता है और उसे भी देखनेवाला कोई नहीं रह जाता। नाथने गुरु-सेवामें अनुभव प्राप्त किया, इसका अभिप्राय यह कि वह स्वयं ही अनुभवरूप हो गये। जिन्हें गुरु-पद-नख-कान्तिछटामें स्वानुभवका अनर्घ्य रत्न मिला, वे अपने ग्रन्थोंमें, अभंगोंमें और आचरणोंमें गुरुपदके सिवाय और किसको बखानें? एकनाथ महाराजने अपने ग्रन्थोंमें गुरुके विषयमें शतशः धन्योद्‌गार प्रकट किये हैं।

(१) ध्यानमें गुरुका ध्यान करनेसे काया ब्रह्मभूत हो जाती है।

(२) धन्य हैं श्रीजनार्दन जिन्होंने मेरा ऐसा कल्याण किया जो मुझे देहातीत भगवान् दे दिया।

(३) धन्य हैं सद्‌गुरु जिन्होंने ब्रह्म-भुवन दिखा दिया।

(४) संसाररूपी विषैला अजगर लिपट गया, तब भगवान् जनार्दन ही धन्वन्तरि मिले।

(५) नन्हा एका (एकनाथ) जनार्दनका लाडला है और बड़ा

दुष्ट है तथा जनार्दन उसे प्रेमका दूध ही पान कराते रहते हैं।

इत्यादि अनेक प्रकारसे गुरु-प्रेमके उद्गार प्रकट किये हैं। श्रीजनार्दनस्वामीपर एकनाथकी जो अपार भक्ति थी उसका किंचित् आभास श्रीरामकृष्ण परमहंसके विषयमें स्वामी विवेकानन्दने जो उद्गार प्रकट किये हैं उन्हें पढ़नेसे मिलेगा।* सच्छिष्य होकर सद्गुरु-प्रेम जाना जा सकता है। एकनाथ महाराज अपने अभंगोंमें जो यह कहते हैं कि 'हमारे लिये वेद जनार्दन हैं, शास्त्र जनार्दन हैं, पुराण जनार्दन हैं, योग जनार्दन हैं, तप जनार्दन हैं, कर्म-धर्म जनार्दन हैं, सब कुछ जनार्दन ही हैं', इसका मर्म सच्छिष्य हुए बिना कदापि नहीं जाना जा सकता। 'श्रीगुरुका नाममात्र ही हमारा वेद-शास्त्र है' इस मनोभावनाका मर्म भी गुरु-सेवासे कृतार्थ होनेपर ही मालूम हो सकता है। गुरु-सेवा, गुरुसहवास, गुरुनाम, गुरुकृपामें इतनी प्रचण्ड शक्ति है कि उस शक्तिके सामने अन्य सब साधन फीके पड़ जाते हैं। देवगढ़पर जनार्दनस्वामीकी बारह वर्ष सेवासे एकनाथ-जैसा महात्मा निर्माण हुआ, पर क्या हिन्दुस्थानके सहस्रों विद्यालयों, सैकड़ों कॉलेजों और सारी यूनिवर्सिटियोंको मिलाकर पचास वर्षमें भी एक भी कोई ऐसा महात्मा निर्माण हुआ? बात यह है कि अनन्त शास्त्र पढ़ानेवाले

---

* I began to go to that man (रामकृष्ण परमहंस) day after day, and I actually saw that religion could be given. One touch, one glance can change a whole life. I have read about different luminaries of ancient times how they could stand up and say. Be thou 'whole' and the man became 'whole' I now found it to be true and when myself saw this man all scepticism was brushed aside....In the presence of my master, I found out that, man could be perfect, even in this body.

विद्यापीठोंकी अपेक्षा गुरु-गृहवासका बल अधिक है। शास्त्र-ग्रन्थों और विद्यापीठोंकी अपेक्षा स्वानुभव-सम्पन्न महात्माकी सेवाका फल अनन्त गुणा अधिक है। एकनाथ महाराजने एक स्थानमें कहा है कि शास्त्राध्ययनसे जो बोध न होता वह गुरुचरणकी सेवासे मुझे प्राप्त हुआ। पाठशाला, विद्यालय, शास्त्र आदिका कुछ उपयोग नहीं अथवा ये सब तुच्छ हैं, यह मतलब नहीं। परन्तु महापुरुषकी सेवामें अल्प आयाससे जो महत्कार्य होता है वह महत् प्रयाससे भी अन्यत्र कहीं भी नहीं हो सकता। '**महत्सेवाद्वारमाहुर्विमुक्तेः**' अथवा 'सद्‌गुरुके बिना रास्ता ही नहीं मिलता' इत्यादि वचनोंका यही अर्थ है कि शास्त्रग्रन्थ पढ़कर जो संस्कार मनपर नहीं होता वह अधिकारी पुरुषका आचरण देखनेसे अनायास हो जाता है। शास्त्र अधिक-से-अधिक बुद्धिको प्रगल्भ कर देंगे; पर बुद्धिके कपाट खोलकर '**यो बुद्धेः परतस्तु सः**' उस परमात्मस्वरूपकी पहचान सन्त या सद्‌गुरुकी कृपासे ही हो सकती है। जडभरतने रहूगणको उपदेश करते हुए कहा है—

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥

(श्रीमद्भा० ५। १२। १२)

यह परम ज्ञान तपसे, यज्ञसे, अन्नसंतर्पणसे, गृहस्थाश्रममें रहकर लोकोपकार करनेसे, वेदाध्ययनसे, जल, अग्नि और सूर्यकी उपासनासे—किसीसे भी नहीं प्राप्त होता; केवल महत्पादरजोभिषेक अर्थात् सत्पुरुषके चरणोंकी धूल मस्तकपर धारण करनेसे ही प्राप्त होता है। सन्तके चरणोंमें यह ज्ञान कैसे

प्राप्त होता है। यह आगे जडभरत बतलाते हैं—

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः
प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः।
निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षो-
र्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे॥

(श्रीमद्भा० ५। १२। १३)

अर्थात् सन्तोंके घर भगवान्‌का गुणगान सदा ही होता रहता है, इससे विषयोंकी चर्चा नहीं होने पाती। भगवान्‌की प्रेमकथा अहर्निश सुनते-सुनते मुमुक्षुकी बुद्धि निर्मल होकर वासुदेवात्मक होती है। सन्तोंके घर-द्वार, अन्दर-बाहर, कर्ममें, वाणीमें और मनमें भगवद्भक्तिके सिवाय और कुछ भी नहीं मिल सकता। सन्तोंके कर्म, ज्ञान और भक्ति हरिमय होते हैं। शान्ति, क्षमा, दया आदि दैवी गुण सन्तोंके आँगनमें लोटा करते हैं। वहाँ रहनेसे भी मुमुक्षुओंका उद्धार होता है। सन्त-सेवा—गुरु-सेवा मुक्तिका द्वार होनेसे आत्मकल्याणकी इच्छा करनेवाले उसीका आश्रय ग्रहण करते हैं। भगवान्‌ने भी गीतामें ज्ञान-प्राप्तिका साधन—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(४। ३४)

—यही बताया है। इस अनुभवसिद्ध तत्त्वके अनुसार जनार्दन-स्वामीके चरणोंके समीप रहनेसे एकनाथ महाराजको सहज ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ। यह ब्रह्मज्ञान उनके घरका खेल हो गया। स्वयं उन्होंने ही कहा है—

निज मुक्तिकी उपेक्षा करके एकनाथने जनार्दनकी भक्ति की। उन्हींके प्रसादसे भगवान्‌का मिलना उनके लिये एक खेल हो

गया। वह भगवत्-प्राप्तिका कोई यत्न नहीं करते तो भी भगवान् स्वयं उनके घरमें घुसकर अपना दखल जमाते हैं।

यह गुरुभक्तिकी ही महिमा है जो भगवान् सर्वांगसे अपने-आपको भूलकर यहाँ रम रहे हैं।

(श्रीनाथभागवत, अध्याय १३)

कैसा विलक्षण आनन्दानुभव है। एकनाथ महाराज कहते हैं—'भगवान् मेरी भक्तिपर ऐसे मोहित हो गये कि मेरे अन्तःकरणमें घुसकर रात-दिन खिलौना बने रहते हैं।' आगे आपने कहा है—'गुरु-सेवासे भक्तिका भण्डार मेरे लिये खुल गया और अब कलिकालकी हुकूमत मुझपर नहीं चल सकती।' यह उन्होंने अपने अनुभवके बलपर कहा है। 'जहाँ सद्‌गुरु-कृपा हाथमें आ जाती है, वहाँ भक्तिका भण्डार खुल जाता है। तब कलिकाल देखते ही भागता है, फिर भव-भय कहाँ रह गया?' (भागवत अ० २—४८४) एकनाथ महाराजके चरित्रमें और ग्रन्थोंमें सबसे अधिक महत्त्वकी बात उनकी अनुपम गुरुभक्ति ही है। इसलिये इस गुरुभक्तिके सम्बन्धमें उनके इस बालचरित्रमें भी इतना विस्तार करना पड़ा। गुरुप्रसाद प्राप्त होनेपर एकनाथ महाराज पूर्णत्वको प्राप्त हुए। उनका चरित्र तो यहीं समाप्त हुआ। इसके आगेका चरित्र उनकी केवल लीलामात्र है। भावार्थरामायणमें उन्होंने कहा है कि 'जनार्दनको एकनाथके रूपमें देखना चाहिये, एकनाथको जनार्दनके रूपमें देखना चाहिये। स्वरूप दोनों एक ही है; नाम केवल भिन्न-भिन्न हैं; अनन्यशरण इसी स्थितिका नाम है।' अनन्यशरण-एकत्व जिसे प्राप्त होता है उसका कुछ कर्तव्य नहीं रह जाता। एकत्वमें स्थिर आसन जमाकर बैठनेके पश्चात् दया, क्षमा, शान्ति और समता आदि गुण सहज भाव

हो जाते हैं। संसार इन गुणोंको ही देखता है, परंतु ये गुण जिस गुरुकृपा-जन्य एकत्वके अखण्डानुभवके बाह्य रंग हैं, उसका मर्म कोई विरला ही जानता है। अस्तु! एकनाथ महाराजके गुरुप्रसादके दो अभंगोंका भावार्थ यहाँ देकर यह प्रकरण समाप्त करते हैं।

(१)

'सद्‌गुरु मेरे आनन्दके सागर हैं, मेरे तीनों लोकके आधार हैं। सद्‌गुरु स्वामी स्वयंप्रकाश हैं, उनके सामने सूर्य और चन्द्र फीके पड़ जाते हैं। सद्‌गुरुके सामने वेद मौन हो गये, शास्त्र दीवाने हो गये और वाचा भी बंद हो गयी। सद्‌गुरुकी कृपादृष्टि जिसपर पड़ती है उसकी दृष्टिमें सारी सृष्टि श्रीरंगमय हो जाती है। मेरे गुरु, मेरे स्वामी, मेरे प्रभुराज ही मुझे भक्ति-भाव देते हैं; भूमिको शुद्ध करके उसमें ज्ञान-बीज बोते हैं। जिससे वह अद्वैत उत्पन्न होता है। जिसमें मैं-तू या मेरा-तेरा कोई भेद नहीं है। धन्य हैं गुरु महाराज जिन्होंने ब्रह्म दिखा दिया, अखण्ड नाम-स्मरण करा दिया। मेरे गुरु मेरे लिये तो मेरी माता ही हैं, उनकी उस कृपाकी छायाका भी वर्णन मैं क्या करूँ, जिससे दासका मन गुरुके ध्यानमें लग गया, गुरुचरणोंमें लीन हो गया। जनार्दनमें ही उस परब्रह्मको देख लिया, इसीलिये जिह्वाग्रपर सदा उन्हींका नाम रहता है।'

(२)

'सद्‌गुरुचरणोंका लाभ जिसे हो गया वह प्रपंचसे मुक्त हो गया। उसका चित्त ब्रह्मके ही रंगमें रँग गया; विषय उसके लिये रह ही नहीं गये। उसके मनमें द्वैताद्वैत-भाव नहीं, जगत्‌में सर्वत्र आत्मस्थितिका ही भाव ओतप्रोत है। सद्‌गुरुकी यह कृपा है जो उन्होंने मेरे लिये ब्रह्मानन्द सुगम कर दिया। उन्हीं सद्‌गुरुका

पूजन यह मन सदा किया करता है, इसीसे उसका समाधान होता है। वहाँ सारी कल्पनाएँ लय हो जाती हैं, इन्द्रियाँ बेचारी वहाँ क्या कर सकती हैं? अन्तरिन्द्रियाँ भी कुछ नहीं कर सकतीं, चारों ही शरीर वहाँ बेकार हो जाते हैं। जहाँ मन, इन्द्रिय, प्राण लीन हो गये उस सुखका वर्णन कोई क्या करे? जहाँ वक्ता, वाच्य और वचनकी त्रिपुटी ही क्षीण हो जाती है। अब तो जगदन्धकार ही अस्त हो गया, सारा संसार मूलसहित प्रकाशमय हो गया। सद्गुरुकी कृपासे जीव-शिव-भेद नहीं रह जाते, '**एकमेव ब्रह्म द्वितीयो नास्ति**' हो जाता है। हम उस परम आनन्दको भोग रहे हैं जहाँ कोटि-कोटि आनन्द बसते हैं। मैं तो ब्रह्मसुखसे सम्पन्न हो चुका, परिपूर्ण ब्रह्मको अनुभव कर चुका। सारा प्रपंच छोड़कर गुरु-चरणोंका ही सदा ध्यान करना चाहिये। प्रपंच छोड़कर यह देखना चाहिये कि यह कैसे मिथ्या है, पर पीठपर सद्गुरु हों। सद्गुरुका सहारा जिसे मिला, कलिकाल उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। एकनाथ जनार्दन गुरुके चरणोंमें मस्तक रखकर सम्पूर्ण ब्रह्म हो गया।'

— एकनाथ महाराजकी कुछ कथाएँ —

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥

—गोस्वामी तुलसीदास

एकनाथ महाराजके चरित्रमें जहाँ जिस प्रसंगसे जो बातें कही गयी हैं उनके अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी मनोरम कथाएँ हैं, जिनका संग्रह एक स्वतन्त्र अध्यायमें करना आवश्यक मालूम होता है, महाराष्ट्रमें एकनाथ महाराजके सम्बन्धमें जितनी जैसी चमत्कारभरी कथाएँ प्रसिद्ध हैं उतनी और किसी भी महात्माके सम्बन्धमें नहीं हैं। गृहस्थाश्रममें रहते हुए एकनाथ महाराजको ऐसे-ऐसे अवसरोंका सामना पड़ा है जहाँ उनके विलक्षण धैर्य, शान्ति आदि गुण प्रकट हुए। ऐसा धैर्य या ऐसी शान्ति सामान्यतः किसीके आचरणमें नहीं देखनेमें आती। उनकी दृष्टि समदृष्टि थी। ब्राह्मण, चाण्डाल, यवन सब उन्हें एक-से ही नजर आते थे और चोर तथा वेश्याको भी कृतार्थ करनेमें उन्होंने कुछ कसर नहीं रखी। प्राणिमात्रमें भगवद्भाव रखते हुए वे जो कुछ कहते वैसा ही आचरण करते थे। वर्णाश्रम-धर्मको उन्होंने नहीं छोड़ा और भूतदयाके भावको भी उन्होंने नहीं दबाया—दोनोंके सम परिमाणपर वह रहते थे। निन्दकों और दुष्टोंके लिये कभी कोई कठोर शब्द कहकर उन्होंने उनके प्रति घृणा नहीं प्रकट की; यही नहीं, बल्कि उन्हें सन्मार्गपर लानेके लिये उन्होंने बड़े कष्ट उठाये। लोकोपकारके लिये ही उनका अवतार था। उनकी शान्ति-भंग करनेवालोंको इनाम दिलानेतककी जहाँ बारी आयी वहाँ शान्तिकी पराकाष्ठामें कमी ही क्या रह गयी? आगे कुछ कथाएँ दी जाती हैं जिनसे

उनके रोम-रोममें भरे हुए भागवत-धर्मके उत्तमत्वका और भी विशेष परिचय मिलेगा। जैसी बानी, वैसी करनीवाले वह महात्मा थे। अपने भागवत-ग्रन्थमें उन्होंने एक स्थानमें लोक-संग्रहकी व्याख्या की है—'अभेद-भक्ति, वैराग्य और ज्ञानका स्वयं आचरण करके दूसरोंको इसी आचरणमें लगानेका नाम ही लोकसंग्रह हैं।' ऐसा ही लोकसंग्रह वह करते थे।

१—शरीरपर थूकनेवाला यवन

पैठणमें एकनाथ महाराजके स्थानसे गंगाजीको* जानेवाले रास्तेमें एक जगह एक धर्मशाला-सी है। वहाँ एक यवन रहा करता था। वह उस रास्तेसे आने-जानेवाले हिन्दुओंको बहुत तंग किया करता था। एकनाथ महाराज जब स्नान करके लौटें तब वह इनके ऊपर पिचकारी छोड़े। इससे महाराजको किसी-किसी दिन चार-चार पाँच-पाँच बार स्नान करना पड़े। जहाँ वह स्नान करके लौटने लगे कि यह उन्मत्त मनुष्य फिर उनपर थूके और महाराज फिर गंगा-स्नान करने जायँ। इस बदमाशीसे कोई भी आदमी चिढ़ जाता—चिढ़ना भी बिलकुल स्वाभाविक था, पर एकनाथ महाराजकी शान्ति ऐसी विलक्षण थी कि बार-बार एकनाथ महाराज 'मातर्गंगे!' कहकर वन्दन करके आनन्दसे स्नान करें और धन्यवाद दें उस यवनको यह कहकर कि इसकी कृपासे मेरे इतनी बार स्नान हो जाते हैं। एक दिन तो यह बात हुई कि वह यवन उस मौकेपर नहीं था, पर नाथ उसका नियम भंग न हो इस खयालसे कुछ कालतक उसकी राह देखते हुए वहाँ ठहर गये। कुछ काल प्रतीक्षा करके उसके आनेका कोई

* यहाँ गंगाजीसे अभिप्राय गोदावरीसे है। प्रायः श्रद्धालु और धार्मिक लोग, विशेषकर महाराष्ट्रमें सभी नदियोंको गंगाजी कहते हैं।

लक्षण नहीं देखा तब आगे बढ़े। एक बार वह यवन अत्यन्त उन्मत्त होकर महाराजके बार-बार स्नान करके लौटनेपर उनकी देहपर बार-बार थूकता ही रहा। वह थूकता जाय और महाराज स्नान करते जायँ, इस तरह कहते हैं कि एक सौ आठ बार हुआ। तथापि महाराजकी शान्ति भंग नहीं हुई। उन्मत्त क्रोध और शान्त सहिष्णुताका यह द्वन्द्व देखनेके लिये हजारों लोग वहाँ जुटे थे। अन्तको यवन थक गया। लज्जित हुआ। महाराजके चरणोंपर लोट गया। यवनने महाराजके महात्मापनकी बड़ी स्तुति की। इतनेपर भी वह अपनी मसजिदपर अपने चार बार नमाज पढ़नेकी तारीफ करनेसे बाज न आया। तब महाराजने हँसकर कहा—

मसजिदमें ही जो अल्लाह खड़ा।
तो और स्थान क्या खाली पड़ा?॥
चारों वक्त नमाजोंके।
तो क्या और वक्त हैं चोरोंके?॥
एका जनार्दनका बंदा।
जमीन आसमान भरा खुदा॥

तात्पर्य—अल्लाह यानी परमात्मा किसी एक जगहमें ही बँधा नहीं, वह सब जगह मौजूद है। सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वसाक्षी है। सबका है, सबके हृदयमें है और उसकी यथार्थ स्तुति यही हो सकती है कि मनुष्य उसका अखण्ड स्मरण करे, सब कुछ वही करता है, यह जाने और निरहंकार होकर रहे। यवनने पहचाना कि एकनाथ महाराज बड़े औलिया हैं और तबसे वह उनके साथ बड़े विनय और नम्रतासे पेश आने लगा।

२—शान्ति-भंग करनेवालेको २०० रुपयेका पुरस्कार

पैठणमें एकनाथ महाराजके निन्दक और द्वेषी जिस चबूतरेपर

बैठकर गप-शप किया करते थे और महाराजकी फजीहत करनेकी घातमें रहा करते थे वह चबूतरा कुचरचौतरा कहलाता था। अब भी पैठणमें यह स्थान प्रसिद्ध है। महाराजका कीर्तन सुनकर जिनका सिर दर्द करता ऐसे कुछ अभागे पैठणमें थे ही। इस चबूतरेपर बैठकर ये लोग तम्बाकू, गाँजा आदि नशा किया करते थे और रात बारह-एक बजेतक यहीं बैठकर शतरंज आदि खेलते थे। बेमतलब हँसना-हँसाना, गप-शप लड़ाना, खिल्ली उड़ाना, निन्दा करना, षड्यन्त्र रचना, स्त्रियोंके सम्बन्धमें भद्दी बातें करना, कोई-न-कोई उपद्रव खड़ा करना—उसकी टोपी इसके सिरपर और इसकी टोपी उसके सिरपर इत्यादि नाना प्रकारके बेकार कार करना, यही सब वहाँ हुआ करता था, इसीसे उसे कुचरचौतरा कहा करते थे। गुण्डोंके ऐसे अड्डे हर शहर और बस्तीमें हुआ ही करते हैं। एक दिन ये कुचर निशाचरलोग रातको इसी तरह अपनी मौजमें थे, इस बीच एक ब्राह्मण पथिक वहाँ पहुँचा। पैठण भले और विद्वान् लोगोंका स्थान होनेसे वह ब्राह्मण वहाँ इस आशासे आया था कि लड़केके उपनयनके लिये यहाँसे सौ-दो-सौ रुपये मिल जायँगे। दुर्भाग्यसे वह सबसे पहले इस चाण्डाल-चबूतरेपर ही पहुँचा और उसे इन्हीं लोगोंके दर्शन हुए। ब्राह्मण भी कुछ अपने ही ढंगका आदमी था। इन गुण्डोंने उससे कहा—'यहाँ एकनाथ नामके एक बड़े भारी महात्मा हैं। बड़े ही शान्त हैं। उन्हें कभी क्रोध तो आता ही नहीं। तुम यदि कोई ऐसा काम करो कि उन्हें चिढ़ा दो तो तुम्हें हम दो सौ रुपये देंगे।' उस ब्राह्मणने एकनाथ महाराजकी शान्ति भंग करनेका निश्चय किया। इन दुष्टोंके लिये मनोरंजनकी यह नयी सामग्री मिली। अब एकनाथ महाराजको चिढ़ानेका उपाय सोचता-सोचता

वह ब्राह्मण दूसरे दिन सबेरे महाराजके घरपर पहुँचा। महाराज उस समय पूजामें थे। यह ब्राह्मण घरमें घुसकर बिना हाथ-पैर धोये, बिना पूछे, बिना कपड़े उतारे, सीधे ठाकुरघरमें पहुँचा और उसी हालतमें उनके आसनसे कुछ दूर नहीं, उनके पास भी नहीं, उन्हींकी पालथीपर जाकर बैठ गया। वह समझता था कि अब एकनाथको क्रोध आये बिना रह ही नहीं सकता। पर शान्तिके सागर और धैर्यके मेरु क्या इससे क्षुब्ध हो जायँगे? किंचित् हँसकर महाराजने उस ब्राह्मणसे कहा कि 'आपके दर्शनसे मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मिलनेको तो बहुत लोग आते हैं पर आपका प्रेम कुछ विलक्षण है। आपने ज्यों ही घरमें पैर रखा त्यों ही मुझे आपसे मिलनेकी प्रबल उत्कण्ठा हुई, यह सचमुच ही आपके ही प्रेमका प्रभाव है।' इस प्रकार ब्राह्मणका पहला वार खाली गया। उसने समझा मामला जरा टेढ़ा है। पर दो सौ रुपयेका लोभ था। उसने फिर एक बार प्रयत्न करनेका निश्चय किया। एकनाथ महाराज स्नान-सन्ध्या आदिसे निवृत्त हो चुके थे, मध्याह्न-भोजनका समय था। भोजनके लिये उस ब्राह्मणका आसन महाराजके आसनके समीप ही लगाया गया था। पत्तलें परोसी गयीं, घी परोसनेके लिये गिरिजाबाई आयीं और ब्राह्मणके सामने दोनेमें घी डालनेके लिये ज्यों ही वह झुकीं, त्यों ही ब्राह्मण लपककर उनकी पीठपर चढ़ बैठा। तब महाराज गिरिजाबाईसे कहते हैं—'हाँ, सँभलना, ब्राह्मण कहीं नीचे न गिर पड़े।' गिरिजाबाई भी एकनाथ महाराजकी ही धर्मपत्नी थीं। उन्होंने मुसकराते हुए उत्तर दिया—'कोई हर्ज नहीं, हरिपण्डितको (पुत्रको) पीठपर लादे काम करते रहनेका तो मुझे अभ्यास है! मैं भला अपने इस दूसरे बच्चेको नीचे कैसे गिरने दूँगी!' यह सब देखकर ब्राह्मणके होश

उड़ गये, वह नीचे लुढ़ककर एकनाथ महाराजके चरणोंपर गिर पड़ा। महाराजने उसे उठाया। ब्राह्मणने सब हाल कह सुनाया और इस बातपर दुःख भी प्रकट किया कि मेरे दो सौ रुपये गये। तब एकनाथ महाराजने उससे कहा कि 'यदि यह बात थी तो मुझसे पहले ही कह देते! तुम्हें इनाम मिलनेवाला था, यह मुझे मालूम होता तो मैं जरूर तुम्हारे ऊपर क्रोध करता।'

३—श्राद्धान्न और महार—

एकनाथ महाराजके पिताका श्राद्ध था। रसोई तैयार हो गयी थी, आमन्त्रित ब्राह्मणोंकी प्रतीक्षामें नाथ दरवाजेपर खड़े थे। इसी समय चार-पाँच महार उधरसे निकले और दरवाजेपरसे जाने लगे। घरमें जो रसोई तैयार हुई थी उसकी गन्ध पाकर ये लोग आपसमें कहने लगे—'वाह! कैसी अच्छी गन्ध है, भूख न हो तो लग जाय? कैसे-कैसे पक्वान्न बने होंगे! पर हमलोगोंको भला ये कहाँसे नसीब हों? यह तो ब्राह्मणोंका नसीब है जो रोज नये-नये पक्वान्न उड़ाते हैं! हम अभागोंको तो इसकी गन्ध भी दुर्लभ है।' इन लोगोंके ये शब्द सुनकर महाराजको दया आ गयी। यह इस बातको माननेवाले थे कि जितने शरीर हैं, सब हरि-मन्दिर हैं। उन्होंने चट उन महारोंको बुलाया और गिरिजाबाईसे कहा कि श्राद्धीय-अन्न सब इन्हें खिला दो। नाथकी सहधर्मचारिणी गिरिजाबाईको पति-आज्ञाका पालन करते कितनी देर लगती? बल्कि एक पग और आगे रखकर उन्होंने कहा—'अन्न तो बहुत है, इसलिये इनके बाल-बच्चों और स्त्रियोंको भी बुलवाइये, सबको परोसकर खिलाया जाय। जनार्दन तो सर्वत्र हैं, सब प्राणियोंमें हैं, इसलिये आज इन्हीं अतिशूद्रोंको खिलाकर तृप्त किया जाय।' उन सबको बुलाया गया, रास्तेपर पत्तलें रखी गयीं,

ब्राह्मणोंके लिये जो चन्दन, अक्षत, पुष्प आदि जुटाकर रखे गये थे, वे इन्हें ही अर्पण किये गये और सब पक्वान्न बाहर लाकर शूद्रोंद्वारा ही इन्हें परोसवाये गये। पश्चात् एकनाथ महाराजने '**जनी जनार्दन आहे निश्चित**' (जनमें स्वयं जनार्दन हैं इसमें कोई सन्देह नहीं) कहकर संकल्प छोड़ा, बाल-बच्चोंसहित वे अन्त्यज भोजन करके अति तृप्त हुए। जिसकी गन्ध भी दुर्लभ थी वही भोजन इन्हें, इनकी स्त्रियों और बच्चोंको भी यथेष्ट भरपेट प्राप्त हुआ। उस भोजनसे तथा नाथ-गिरिजाबाईके हार्दिक प्रेमभरे शब्दोंको सुनकर अन्त्यजोंके अन्तरात्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्हें पान देकर विदा करनेके बाद गिरिजाबाईने घर-आँगन सब धोकर स्वच्छ किया, बर्तन मल लिये और सब सामग्री फिर जुटाकर रसोई बनवायी, पर आमन्त्रित ब्राह्मणोंको जब यह सब किस्सा मालूम हुआ तब उन्होंने यह निश्चय किया कि 'हमें आमन्त्रित कर जिसने अनामिकोंको भोजन कराया उस भ्रष्टके यहाँ हमलोग अन्न-जल कदापि ग्रहण नहीं करेंगे।' कई ब्राह्मण तो एकनाथ महाराजके घरके आँगनमें पहुँचकर अनाप-शनाप बकने भी लगे। कहने लगे 'तुमने ब्राह्मणाचारका लोप किया और वर्णसंकर आरम्भ किया है। तुमने जो हमसे पहले अन्त्यजोंको भोजन करा दिया तो क्या तुम्हारे बाप-दादा अन्त्यज थे! कहाँ भानुदास और कहाँ उनके कुलमें आग लगानेके लिये उत्पन्न हुआ यह कुलांगार?' इत्यादि। नाथ उनके सामने आकर खड़े हुए, बड़ी गम्भीर शान्तिके साथ हाथ जोड़कर उन्होंने विनय की, 'पहली रसोई बनी थी तो आपलोगोंके लिये ही, पर उसकी गन्ध अन्त्यजोंकी नाकोंतक पहुँची। ऐसा उच्छिष्ट अन्न आपलोगोंको कैसे परोसा जाता? इसलिये वह अन्न तो उन्हीं लोगोंको परोस

दिया गया और आपलोगोंके लिये फिरसे सब सामग्री जुटाकर भोजन तैयार किया गया है। इसलिये आपलोग क्षमाकर इसे ग्रहण करें।' पर उन ब्राह्मणोंको यह बात नहीं जँची और वे उन्हें कोसते हुए अपने-अपने घर चले गये। नाथ बड़े चिन्तित हुए। उनके यहाँ श्रीखण्डिया रहता ही था। उसने उन्हें सुझाया, 'आप कोई चिन्ता न करें, पत्तल परोसें, आपके पितर ही स्वयं आकर भोजन करने बैठेंगे।' इस प्रकार पत्तलें रखी गयीं, 'आगतं' कहते ही सूर्यनारायण, चक्रपाणि और भानुदास तीनों पितर आकर बैठ गये। एकनाथ महाराजने बड़ी भक्तिसे उनकी पूजा की और भोजन परोसा। तीनों पितर तृप्त हुए और आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार एकनाथ महाराजने यथार्थ पितृतर्पण किया। आमन्त्रित ब्राह्मण भी मौजसे वहाँ पहुँच गये, तब श्रीखण्डियाने उन्हें बताया कि महाराजके पितर ही स्वयं उतर आये और भोजन करके चले गये। उन ब्राह्मणोंने जूठी पत्तलोंको देखा, श्रीखण्डियाकी बात सोचने लगे। एकनाथ महाराजके सदाचारका ध्यान किया और यह समझा कि यह कोई महान् अवतारी पुरुष हैं। दूसरे दिन ब्राह्मणोंने सभा करके सर्वसम्मतिसे यह निश्चय किया कि एकनाथसे प्रायश्चित्त कराकर उसे शुद्ध करके जातिमें ले लिया जाय। भस्म, गोमय आदि लगाकर उनसे गंगास्नान कराया गया और वेद-मन्त्रोंद्वारा उनकी शुद्धि की गयी। मयूर कविने एकनाथ महाराजके इस 'भूताराधन-यज्ञ' का दो आर्याओंमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन करके कहा है कि इस परम समदर्शी एका (एकनाथ) के सिवा ऐसा शील इस लोकमें औरोंके लिये त्रिकालमें भी दुर्लभ है।

४—दण्डवत्-स्वामी

दण्डवत्-स्वामी नामके एक साधु पुरुष पैठणमें रहते थे। यह नमन-भक्ति करते थे। किसी भी प्राणीको देखते ही यह उसे दण्डवत्-प्रणाम करते। इसीसे इनका नाम दण्डवत्-स्वामी पड़ा। यह एकनाथ महाराजके शिष्य थे। कहीं एक गधा मरा पड़ा था, कुछ ब्राह्मणोंने दण्डवत्-स्वामीसे कहा कि इन्हें भी प्रणाम करिये। इन्होंने मरे गधेको भी प्रणाम किया और आश्चर्यकी बात यह कि वह गधा उठ खड़ा हुआ। इस विलक्षण सिद्धिको देखकर गाँवके सब लोग दण्डवत्-स्वामीको मानने और वन्दन करने लगे। योग-साधनासे अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं इसमें सन्देह नहीं, पर ये सिद्धियाँ परमार्थमें बाधक होती हैं, इस कारण भगवान्‌के भक्त इन सिद्धियोंके पीछे नहीं पड़ते। नाथभागवतके १५ वें अध्यायमें सिद्धियोंका वर्णन करके एकनाथ महाराज कहते हैं—'मेरा स्वरूप शुद्ध अद्वैत है, वहाँ सिद्धियोंके मनोरथ केवल मनोरंजन हैं, उनमें परमार्थ नहीं।' साधकोंका मन जब सिद्धिके पीछे पड़ता है तब भगवत्प्राप्तिमें बड़ी बाधा पड़ती है। जरा कोई सिद्धि या चमत्कार दिखाते बना कि यह ध्यान होता है कि अब भगवान् अपने हाथमें आ गये और भोले-भाले आदमी जो बेचारे यह नहीं जानते कि भगवान् क्या होता है, ऐसी छोटी-मोटी सिद्धि देखकर ऐसे मोहित हो जाते हैं कि ऐसी सिद्धिवालेको महात्मा मान लेते हैं, उन्हींको पूजने लगते हैं और सच्चे परमार्थसे हाथ धो बैठते हैं। जो सच्चे महात्मा हैं, सिद्धियाँ उनके वशमें होती हैं और कार्य-गौरवके लिये वे चमत्कार भी दिखा देते हैं। पर सिद्धियोंका मूल्य कितना है, इसे भी वे खूब समझते हैं। प्रायः बने हुए लोग ही सिद्धियोंका बाजार लगाते हैं

और गरीबोंको ठगते हैं। सिद्धि-लाभ करना कोई परम अर्थ नहीं है। अस्तु, एकनाथ महाराजने दण्डवत्-स्वामीसे कहा कि 'मरे गधेको तुमने जिलाया, यह अच्छा नहीं हुआ; इससे लोग तुम्हारे पीछे पड़ेंगे। अब जो कोई मरेगा उसके आदमी तुम्हें घेरेंगे, तुम मोहमें गिरोगे, नाम होगा और परमार्थ रह जायगा। यवन तुम्हें पकड़कर कैदखानेमें डाल देंगे और बड़ी फजीहत होगी। इसलिये कलिकाल बड़ा भीषण है, यह जानकर तुम समाधिस्थ हो जाओ, यही अच्छा है।' यह उपदेश पाकर दण्डवत्-स्वामीने आसन लगाया और भगवान्‌का ध्यान करते हुए स्वच्छन्दतापूर्वक देह त्याग कर दिया! पैठणके ब्राह्मणोंको एकनाथ महाराजको तंग करनेका यह अच्छा अवसर मिला। दण्डवत्-स्वामीके मरनेका कारण हमलोगोंने एकनाथ महाराजको माना और हत्याका अपराधी बताया। महाराजके मनकी शान्ति इससे भंग नहीं हुई। केशवकृत नाथ-चरित्रमें कहा है—

निश्चया चा मेरु अचल, श्रीनाथ मनीं निर्मल।
प्रसन्न श्रीमुखकमल, बुद्धि अविकल निज स्थिति॥

पर ये लोग इन्हें कोस-कोसकर कहने लगे कि 'कैसा दुस्साहसी आदमी है। परमहंसको गाड़कर निश्चिन्त बैठा है। वेद-शास्त्रका एक अक्षर नहीं जानता, मनमाना व्यवहार करता है, उद्धतपनेसे महन्त बना बैठा है और दुनियाको ठग रहा है। नाम-जपके बहाने न जाने क्या-क्या करता है। देखते तो यह हैं कि सबको कर्मभ्रष्ट कर रहा है, ब्राह्मण्यको ही नष्ट करनेपर तुला है।'

फिर ब्राह्मणोंने ही परमहंसकी हत्याके दोषका परिहार भी सुझाया। कहा—'पहले ज्ञानदेवने भैंसेसे वेदमन्त्र कहलवाये वैसे

तुम इस पत्थरके नन्दीसे चरी चरवाओ, अन्यथा बड़े पापके भागी बनोगे।' इसपर नाथ महाराज हाथमें चरी लेकर नन्दीके सामने खड़े होकर बोले—'जिन ब्राह्मणोंके वचनसे मूर्तिमें भी देवत्व आ जाता है, उन ब्राह्मणोंकी बात रखो।' यह वचन एकनाथ महाराजके मुखसे निकलते ही नन्दीने जीभ बाहर निकालकर वह चरी खा ली। यह देखकर ब्राह्मण आश्चर्यसे दंग रह गये। इस प्रकार परमहंस दण्डवत्-स्वामीकी 'हत्याके पाप' से उन्होंने नाथको मुक्त किया। अनन्तर नाथ महाराजकी आज्ञासे वह नन्दी गंगातटपर जाकर नदीमें कूद पड़ा। पैठणमें दण्डवत्-स्वामीकी समाधि और नन्दी दोनों ही यात्रियोंको दिखायी देते हैं।

५—क्षुधित ब्राह्मणोंका सत्कार

एकनाथ महाराजको कष्ट देनेवाले लोग कष्ट देनेमें एक-दूसरेके साथ मानो होड़ बदा करते थे। एक बार आधी रातके समय चार प्रवासी ब्राह्मण पैठणमें आये और रहनेके लिये आश्रय ढूँढ़ने लगे। मार्गके श्रमसे वे बहुत क्षुधित थे। उनसे इन दुष्टोंने कहा—'आपलोगोंके ठहरने लायक एक स्थान है। यह सामने जो मकान है इसमें एकनाथ नामका एक बड़ा दाता रहता है। सैकड़ों ब्राह्मण एक साथ आ जायँ तो भी सबको भोजन कराके वह सन्तुष्ट करता है। उसे सिद्धियाँ भी प्राप्त हैं। आपलोग वहीं जाइये।' सात दिनसे रात-दिन ऐसी मूसलधार वृष्टि हो रही थी कि नाथ महाराजके यहाँ सूखा ईंधन बिलकुल नहीं रह गया था। जब ये प्रवासी नाथ महाराजके यहाँ पहुँचे तब सदाकी भाँति उनका आगत-स्वागत हुआ। जब मालूम हुआ कि प्रवासी ब्राह्मण भूखे हैं तब नाथ महाराजने बहुत जल्द रसोई बनानेको गिरिजाबाईसे कहा। लकड़ी गीली होनेसे रसोई जल्दी न बनेगी

यह सोचकर उन प्रवासियोंकी क्षुधा-व्याकुलतासे नाथका चित्त बड़ा ही व्याकुल हो उठा और उन्होंने उद्धवसे कहा कि 'देखो, अपना यह मकान लकड़ीका ही तो है। एक मंजिल गिराकर लकड़ी इकट्ठी करो।' पर यह सोचकर कि इसमें कुछ देर लगेगी, उन्होंने और भी जल्दीका एक उपाय किया। अपने पलंगकी निवार खोल दी और पावा-पाटी तोड़कर ईंधन प्रस्तुत कर दिया और चट रसोई बनानेको कहा! नाथ ऐसी खातिर करनेवाले थे कि इस मौकेपर ठण्डे पानीसे स्नान करनेमें प्रवासियोंको कष्ट होगा यह सोचकर उन्होंने तुरंत पानी गरम कराया और स्नान करनेके लिये गरम पानी दिया। गिरिजाबाईने स्वयं रसोई बनायी और भोजन परोसा। भोजनके समय गरमाहटके लिये अँगीठियाँ ब्राह्मणोंके समीप रखी गयीं। ब्राह्मणोंने यथेष्ट भोजन किया और उनके सन्तोषसे नाथको भी बड़ा सन्तोष हुआ। नाथ महाराजका यह अतिथि-प्रेम देखकर उन ब्राह्मणोंने उनकी बड़ी सराहना की और कहा कि 'भोजनार्थियोंको तृप्त करनेवाले आप ही-जैसे धन्य हैं।' नाथ जो कुछ करते, अन्तःकरणपूर्वक करते थे। चार भले आदमी हमें अच्छा कहें और हमारा नाम हो, इस खयालसे भी अतिथिसत्कार करनेवाले लोग होते हैं, पर नाथ जो अतिथिसत्कार करते थे वह स्वधर्म जानकर निष्काम-बुद्धिसे करते थे। उनके सब कर्मोंमें और सबके साथ सब प्रकारके व्यवहारोंमें उनका प्रेममय अन्तःकरण रहता था। '**आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति**' इस सिद्धान्तके अनुसार उनका बर्ताव था। ऐसा शुद्ध भाव, ऐसा सच्चा प्रेम हमारे अंदर कब कहाँ जाग उठता है, यह जिस-तिसको स्वयं ही देख लेना चाहिये।

६—वडारियोंका सम्मान

किसी-न-किसी प्रकार लोगोंके कान भगवान्‌का नाम सुनें, इसलिये नाथ महाराजने कई दिन यह उपाय किया कि जो कोई कीर्तन सुनने आता उसे अंजलिभर शक्कर बाँटते थे। एक बार वडारीजातिके दो पुरुष और एक स्त्री शक्कर पानेकी आशासे महाराजके यहाँ आये, कीर्तन सुननेवाले श्रोताओंकी इतनी भीड़ थी कि इन्हें कहीं बैठने या खड़े होनेकी भी जगह न मिली। इसलिये ये लोग नाथके शयनागारमें ही घुस गये। कभी कीर्तन तो सुना था नहीं, यह अभ्यास ही नहीं था कि घड़ी-दो-घड़ी आसन लगाकर बैठते और श्रवण करते। शयनागारमें जो घुसे सो शयान ही हो गये। ये दोनों पुरुष नाथका पलंग मुलायम देखकर, उसपर जो जरा लेट गये कि उन्हें नींद ही आ गयी और उनके पायताने वह स्त्री भी सो गयी। जब कीर्तन हो चुका, तब शक्कर लेकर सब लोग अपने-अपने घर चले गये। मकानके बाहरी दरवाजे बंद करके उद्धव जब नाथका बिस्तर लगानेके लिये उनके शयनागारमें गये तब उन्होंने उन स्त्री-पुरुषोंको खर्राटे मारते हुए बेढंगे तौरपर पड़े देखा। उद्धवने शोर मचाना शुरू किया, तब नाथ उस कमरेमें आये और वे लोग भी जाग उठे। उद्धव मारे क्रोधके उनपर झपटे पर नाथने उनका हाथ पकड़कर उन्हें अलग किया और वडारियोंसे बड़े प्रेमसे पूछा, 'तुम लोगोंको नींद अच्छी लगी थी न? उद्धवने व्यर्थ ही तुम्हें जगाया! तुम लोग सोओ, आरामसे सोओ, अब तुम्हें कोई नहीं जगावेगा और कोई गुस्सा भी नहीं होगा। सबेरेतक आनन्दसे सो रहो।' यह सुनकर वडारी बड़े लज्जित हुए, नाथके चरणोंपर लोट गये। आधी रात बीत चुकी थी, इसलिये नाथने उन्हें रातभर अपने ही यहाँ टिका

लिया और दूसरे दिन उन्हें भोजन कराकर, पुरुषोंको धोती और स्त्रीको साड़ी देकर विदा किया। विदा होते समय नाथके बारेमें इन वडारियोंके हृदयमें क्या-क्या भाव उठे होंगे!

७—गधेको प्राणदान!

काशीकी यात्रा करके नाथ रामेश्वर जा रहे थे। रामेश्वरके समीप पहुँचे तब उद्धव आदि पीछे-पीछे आ रहे थे और नाथ भगवच्चिन्तन करते हुए आगे-आगे चल रहे थे। ऐसे समय पासके रेतीले मैदानमें नाथको एक गधा लोट-पोट करता दिखायी दिया। नाथ उसके समीप गये। देखा, गधा पानीके बिना छटपटा रहा है। नाथने तुरंत अपनी काँवरसे पानी लेकर उसके मुँहमें डाला। त्यों ही गधा उठा और मजेमें वहाँसे चल दिया। उद्धवादि सब लोगोंने पास आकर प्रयागका जल गधेको पिलाते देखा तब मन-ही-मन उन लोगोंने सोचा कि प्रयागका गंगाजल व्यर्थ ही गया और यात्रा भी निष्फल हो गयी। तब नाथ महाराजने हँसकर उन लोगोंसे कहा—'भले मानसो! बार-बार सुनते हो कि भगवान् सब प्राणियोंके अंदर हैं, फिर भी ऐसे बावरे बनते हो! समयपर याद न रहे तो वह ज्ञान किस कामका? प्रसंगपर काम न आना क्या ज्ञानका लक्षण है? यह मच्छर है और यह हाथी, यह चाण्डाल है और यह ब्राह्मण, यह गौ है और यह गधा इस तरहका भेद क्या आत्मामें भी है? मेरी पूजा तो यहींसे श्रीरामेश्वरको पहुँच गयी। भगवान् सर्वगत और सद्रूप हैं। भगवान्‌से खाली भी क्या कोई जगह हो सकती है? देहको ही देखो तो राजाकी देह और गधेकी देह समान ही तो है। इन्द्र और एक चींटी दोनों देहतः समान ही हैं। देहमात्र ही नश्वर है। ब्रह्मासे लेकर चींटीतक सबके शरीर नाशवान् हैं। शरीरका परदा हटाकर देखो तो सर्वत्र

भगवान् ही हैं। भगवान्‌के सिवा और क्या है? अपनी दृष्टि चिन्मय हो तो सर्वत्र चैतन्य ही है। चैतन्यके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।' नाथके ये शब्द सुनकर उद्धवादिको महाराजके समदर्शनका फिर एक बार स्मरण हो आया। मयूर कविने कहा है कि एकनाथने प्यासे गधेको जो दयार्द्र-अन्तःकरणसे पानी पिलाया, उनका यह सत्कर्म 'लक्ष विप्र-भोजन' के समान ही हुआ।

८—विष्णुसहस्रनामका पाठ

नाथके मकानके समीप ही एक उद्यमी आदमी रहता था। उसे द्रव्योपार्जनके सिवा और कोई बात नहीं सूझती थी। कभी दर्शनके लिये किसी देवमन्दिरमें जाने या हरिकीर्तन अथवा कथा-पुराण सुननेमें उसे कोई आनन्द नहीं आता था। वह केवल शिश्नोदरपरायण था। नाथको उसपर दया आ गयी और वह स्वयं ही रोज उसकी दूकानपर जाकर बैठने लगे। नित्य उसे एक श्लोक लिख देते, उससे वह याद कराते और फिर दूसरे श्लोकका पाठ देते। यह क्रम था। होते-होते उसे अनायास समग्र विष्णुसहस्रनाम कण्ठ हो गया। तब उससे कहा कि इसका पाठ रोज किया करो। फिर कुछ दिन बाद एकनाथ महाराजने उसे एक आसन सिखाया और नित्य ब्राह्ममुहूर्तमें स्नान करके आसन लगाकर इसके दस पाठ करनेको कहा। इस तरह उसकी वाणीपर कुछ ऐसा संस्कार हुआ कि मृत्युकालमें वह अस्खलित वाणीसे विष्णुसहस्रनामका पाठ करता रहा। उसके प्राण अनायास निकले और वह स्वयं विष्णुलोकको प्राप्त हुआ।

९—वेश्याका उद्धार!

पैठणमें एक वेश्या बड़ी चतुर, सुन्दर और नृत्य-गायनादिमें निपुण थी। नाथ महाराजके यहाँ श्रीहरि-कीर्तनादि श्रवण करनेके

लिये कोई भी जा सकता था, किसीको भी मनाई नहीं थी। वह वेश्या भी महाराजका भागवतपुराण सुननेके लिये जाया करती थी। उसका पैसा खराब था और दुराचार बढ़ानेवाले पैसेको कोई भी अच्छा नहीं कह सकता। पर यह मानना पड़ेगा कि उसके भी हृदयमें भगवान्‌का प्रेम था। नाथकी अमृतमय वाणीसे भागवतके आठवें अध्यायमें पिंगलाख्यान जब उसने सुना तबसे उसकी चित्तवृत्तिमें बड़ी क्रान्ति हो गयी! जिन दीन-हीन पुरुषोंके हाथ केवल धनके लिये यह शरीर बेचना पड़ता है, उनमेंसे प्रत्येक पुरुष नाथ महाराजकी उक्तिके अनुसार किस प्रकार कृपण है कि 'उससे धन भी नहीं दिया जाता' किस प्रकार दुर्बल है कि 'उससे कामवासना भी तृप्त नहीं होती' किस प्रकार छली है कि 'उससे सच्चा प्रेम करना भी नहीं बनता' और तो और 'पीछे मिलनेसे भी इन्कार कर देता है' यही वह मन-ही-मन बराबर सोचा करती थी। पिंगलाके समान उसके मनमें भी विराग उत्पन्न हुआ। मनुष्यका शरीर कितना गन्दा है यह उसने देख लिया और उसे इससे घृणा हो गयी।

'शरीरके अंदरसे कैसी विलक्षण दुर्गन्ध आती है। यही दुर्गन्ध नवों द्वारोंसे रात-दिन बहा करती है। मैला बराबर बाहर निकल रहा है। देखकर अपना ही जी अपनेसे हट जाता है। ये मल रात-दिन जलसे धोनेपर भी साफ होनेवाले नहीं हैं। यह शरीर हड्डी और मांससे घिरा विष्ठा-मूत्रका गोला है जिसे बार-बार आलिंगन किया और फिर भी जिससे जी नहीं भरा। अच्युत भगवान्‌ने जिसे अपना वह सुख दिया जो किसी भी हालतमें नष्ट नहीं होता, उस हृदयस्थ आनन्दको मैं भूल गयी और कामकी तृप्ति ही जहाँ नहीं हो सकती उसपर लट्टू हुई।'

ऐसे-ऐसे भाव हृदयमें उठने लगे, उनसे वह वेश्या अत्यन्त सन्तप्त हुई। आठ दिन वह अपने घरका द्वार बंद करके अकेली ही बैठी रही। उसका जीवन-क्रम बदल गया, अनुतापसे चित्त झुलस गया। एकनाथ महाराजका बारम्बार स्मरण होता और वह यह सोचती कि क्या इस पापराशिके इस पापसदनमें महाराजके पवित्र चरण आ सकते हैं। एक दिन इसी प्रकार वह सोच रही थी, उसी समय गंगा-स्नान करके एकनाथ महाराज उसी रास्तेसे लौट रहे थे। ऊपरसे उसने महाराजको देखा और दरवाजेपर आकर वह बड़े विनम्रभावसे बोली, 'क्या महाराजके चरण इस घरको पवित्र करेंगे?' नाथ महाराजने कहा, 'हाँ चल सकता हूँ।' यह कहकर वह उसके पीछे-पीछे ऊपर गये। उद्धव भी साथ ही थे। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा और यह सोचकर कि दुष्टोंको निन्दा करनेका यह अच्छा अवसर दिया, वह बहुत दुःखी हुए। उद्धव भी नाथके पीछे ऊपर गये। वहाँ एक चौकी रखी थी। जिसके चारों ओर चौक पूरा गया था। इस चौकीपर उसने महाराजको बैठाया और स्वयं कमरेके द्वारपर अष्टभाव-रोमांचित होकर खड़ी रही। उसके मुँहसे शब्द न निकले, महाराज भी मौन थे। आधी घड़ी सन्नाटा छाया रहा, किसीके मुँहसे कोई शब्द नहीं निकला। 'कहाँ यह महात्मा और कहाँ मैं महापापिनि! फिर भी विनती करते ही यह यहाँ आ गये, यह इनकी कितनी बड़ी दया है।' यह सोचकर उसका कण्ठ रुँध गया। सूर्यके उदयके साथ ही सारा अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी तरह नाथके दर्शनमात्रसे उसकी हृदय-गत सारी पाप-वासनाएँ नष्ट हो गयीं। इसे सच्चा अनुताप हुआ है और इसके हृदयमें सच्चा भगवत्प्रेम जाग उठा है। यह देखकर महाराजके चित्तमें दया आ गयी और

उन्होंने उसे धैर्य दिलाया। उसके नेत्रोंसे अखण्ड अश्रुधारा बह रही थी और इसके साथ सारा पाप निकला जा रहा था। बीजको शुद्ध देखकर महाराजने 'रामकृष्णहरी' मन्त्रका उपदेश कर उसे सत्कर्मका क्रम बताया। तदनुसार अपनी जीवनचर्या बनाकर वह दस वर्षमें इतनी विमल हो गयी कि मृत्युकालमें श्रीकृष्णस्वरूपका ध्यान और 'कृष्ण कृष्ण जय कृष्ण कृष्ण' मन्त्रका घोष करते हुए उसने बड़ी शान्तिसे देह-त्याग किया।

१०—चोरोंका सत्कार

एकनाथ महाराजके यहाँ एक दिन रातको हरिकीर्तन हो रहा था, जब तीन चोर श्रोताओंकी भीड़में घुसे और इस विचारसे कि कीर्तन समाप्त होनेपर सब लोग अपने-अपने घर चले जायँगे और घरमें सब लोग सो जायँगे तब अपना काम बनावेंगे, ये लोग मौका देखते हुए एक जगह छिपे बैठे थे। कीर्तन समाप्त हुआ और सब लोग अपने-अपने घर चले गये। दो बजेके लगभग चोरोंने अपना काम आरम्भ किया। कपड़ा-लत्ता और कुछ अच्छे बर्तन जो हाथ लगे इन्होंने पिछले दरवाजेके पास ला रखे, दरवाजा खोलकर बाहर निकलनेको तैयार हुए, पर इस लोभसे कि और जो कुछ मिले ले लें, दबे पाँव घरमें इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते देवगृहके पास पहुँचे, वहाँसे देखा अंदर एक दीपक टिमटिमा रहा है और एकनाथ महाराज आसनपर बैठे समाधिके आनन्दमें मग्न हैं। यह दृश्य एक बार उन्होंने देखा और उनकी दृष्टि नष्ट हो गयी, फिर उन्हें कुछ दिखायी नहीं दिया। कुछ सूझता ही नहीं था, अगला-पिछला कोई दरवाजा ही नहीं मिलता था। आँखमिचौनी खेलते-खेलते वे उन बर्तनोंपर गिरे, और नाथ देवगृहमेंसे बाहर निकले। चोरोंने महाराजको देखा था

और यह समझ लिया था कि इसी महात्माके प्रभावसे हमलोगोंकी आँखें अन्धी हो गयी हैं। वे महाराजके चरणोंपर गिर पड़े और रोने लगे। एकनाथ महाराजने उनकी आँखोंपर हाथ फेरा तब उन्हें पूर्ववत् दृष्टि प्राप्त हुई। चोर यह चमत्कार देखकर अत्यन्त चकित हुए, उनकी बुद्धि भी पलट गयी। उन्होंने महाराजको बता दिया कि हमलोग चोर हैं और चोरी करके ये कपड़े और बर्तन लिये जा रहे थे। चोरोंने कपड़े और बर्तन उन्हें दरवाजेके पास ले जाकर दिखा दिये। एकनाथ महाराजकी समता अटल थी। उन्होंने चोरोंसे कहा 'तुमलोग बहुत थक गये होगे, इसलिये पहले भोजन कर लो और पीछे यह सब सामान ले जाओ। हमलोग कोई रुकावट नहीं करेंगे। बल्कि तुम्हारे लिये मैं इसे तुम्हारे स्थानतक ढोकर पहुँचा भी सकता हूँ! कोई सोच-संकोच मत करो। चोरी करना तुम्हारा धन्धा है। तुमलोग यह सब ले जाओ। शान्ति, क्षमा, दया हमलोगोंका धर्म है, उसका पालन हमलोग करेंगे।' यह कहकर नाथ महाराजने अपनी उँगलीमेंसे अँगूठी निकालकर वह भी उनकी ओर फेंक दी! नाथके इस निष्कपट सौजन्यसे वे चोर अत्यन्त चकित हुए तथा और भी अधिक नम्र हो गये। दुर्जन भी सज्जनोंके व्यवहारसे सज्जन बनते हैं। संसारमें दुर्जनता अनेक बार हमारी दुर्जनतासे ही बढ़ा करती है। सौजन्यका व्यवहार देखकर भी यदि दुर्जन न चेतें तो उनकी दुर्जनताका कोई इलाज ही इस मृत्युलोकमें नहीं है यही कहना पड़ेगा। पर जलमें जैसे चट्टानोंको फोड़नेकी ताकत है वैसे ही सौजन्यमें दुर्जनताको जीतनेकी सामर्थ्य है। परंतु सौजन्यकी इस सामर्थ्यका भरोसा सन्तोंके समान साधारण मनुष्योंको न होनेसे साधारण मनुष्य 'जसको तस' का राजसी उपाय ही किया करते हैं। 'जसको तस' के न्यायसे

दुर्जनोंको वश करना जितना सम्भव है, उससे अधिक सम्भव सौजन्यसे उन्हें वशमें करना है। इस बातके उदाहरण सन्तोंके चरित्रोंमें मिलते हैं। दुर्जनका दुर्जनत्व दुर्जनोंकी संग-सोहबतसे ही उत्पन्न होता और बढ़ता है। स्वयं मनुष्य स्वभावतः भगवद्रूप है और सब विकार मायिक हैं। बाहरी उपाधिसे वह भला-बुरा बना दिखायी देता है। जलका सहज धर्म तो शीतलत्व है, पर अग्निसंयोगसे वह गरम होता है, वह अग्निसंयोग यदि हटा दिया जाय तो जैसे जल अपने सहज रूपको प्राप्त होगा, वैसे ही बुराईकी उपाधियाँ हटा देनेपर मनुष्य स्वभावतः निर्मल सच्चिदानन्दरूप ही है। सन्त यह अनुभव करते हैं कि ईश्वर सब प्राणियोंके हृदयमें हैं और इसलिये वे केवल चिद्रूपत्व ही ग्रहण करते हैं, बाकी गुण-दोष जो प्रकृतिके हैं वे प्रकृतिको ही दे डालते हैं। इस चिद्रूपपर नित्य आरूढ़ होनेसे शान्ति, समता, निरहंकार आदि गुण सन्तोंमें सहजभावसे ही रहते हैं। इसी प्रकारसे एकनाथ महाराजके सौजन्यसे उन चोरोंका मन पलट गया। महाराजने गिरिजाबाई और उद्धवको जगाकर रसोई तैयार करायी और चोरोंको भोजन कराया। चोर अपने साथ कुछ भी नहीं ले गये। ले गये केवल एकनाथ महाराजकी उदारताका स्मरण और उस स्मरणसे शुद्ध होकर उन्होंने चोरी करना छोड़ दिया, वे सदाचारपूर्वक रहने लगे और बार-बार एकनाथ महाराजके कीर्तन सुनकर सद्गतिको प्राप्त हुए।

११—रनिया महार और उसकी स्त्री

रनिया उर्फ विवेक नामका एक महार पैठणमें रहता था। वह बड़ा श्रद्धालु और सदाचारी था। उसकी स्त्री भी उसके ही समान सुशीला थी। स्त्री-पुरुष दोनों ही एकनाथ महाराजका कीर्तन सुनने प्रतिदिन आया करते थे और बाहर बैठकर नामघोष किया

करते थे। एकनाथ महाराज गंगास्नानके लिये जायँ उससे पहले रनिया और उसकी स्त्री आरी-पारीसे उनके चलनेका रास्ता झाड़ू देकर साफ करते थे। एक दिन एकनाथ महाराजके ज्ञानेश्वरीके प्रवचनमें विश्वरूप-दर्शनका प्रसंग छिड़ा था। प्रवचन जब समाप्त हुआ तब रनियाने महाराजसे पूछा, 'महाराज! भगवान् श्रीकृष्णने जब विश्वरूप धारण किया तब यह रनिया कहाँ था?' महाराजने तत्काल ही उत्तर दिया—'तुम भी श्रीकृष्णरूपमें ही थे।' रनिया और उसकी स्त्रीने घर जाकर सोचा कि जब सारे विश्वमें भगवान् ही रम रहे हैं, तब हमारा शरीर महारका होनेपर भी अपने हृदयमें तो भगवान् ही विराज रहे हैं। कुछ दिन बीतनेपर उन पति-पत्नीकी यह इच्छा हुई कि एक दिन एकनाथ महाराजको अपने यहाँ भोजनके लिये बुलाना चाहिये। उनका इस प्रकार समागम होनेसे हमलोगोंका उद्धार हो जायगा। रनिया और उसकी स्त्री अन्य महारोंकी अपेक्षा अधिक शुचिता और स्वच्छताके साथ रहा करते थे, अशुचि पदार्थको स्पर्श भी नहीं करते थे और खाने-पीनेमें बड़ा विचार रखते थे। मुखसे सदा विट्ठल-नामका जप करते हुए अपने प्रत्येक काममें दक्ष रहते थे। शरीर अवश्य ही महारका था, पर आचरण सर्वथा ब्राह्मणका-सा था। उनकी बिरादरीके लोग विनोदसे उन्हें अपनी बिरादरीका ब्राह्मण ही कहा करते थे और शुद्धाचरण तथा भगवद्भक्तिमें तो वे दोनों सचमुच ही लाखों ब्राह्मणोंकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ थे। एकनाथ महाराजको उन्होंने बड़े सद्भावसे भोजनके लिये न्योता दिया और नाथ महाराजने उसे स्वीकार किया। नगरके लोगोंको जब यह बात मालूम हुई तब ब्राह्मणोंने बड़ा कोलाहल मचाया। नाथ महाराजने इस कोलाहलका यही उत्तर दिया कि 'वह अन्त्यज तो

है पर उसके ज्ञानमें 'मेरा-तेरा' इस भेदभावकी कोई पहचान नहीं है। वह आत्मत्वसे परिपूर्ण दिखायी देता है, वह सबके लिये समान है।' ब्राह्मणोंने सोचा कि देखें, एकनाथ महाराज उस महारके यहाँ कैसे भोजन करने जाते हैं। एकनाथ महाराजके घरसे उस महारके घरतक रास्तेमें थोड़े-थोड़े फासलेपर ब्राह्मण लोग प्रतीक्षामें बैठे रहे। नाथ बेखटके सबके सामने घरसे बाहर निकले और रनियाके घर पहुँचे। रनिया और उसकी स्त्रीने एक साथ उनकी पूजा की, भोजनके लिये आसन बिछाया, पत्तल रखी, चौक पूरा और महाराजसे बैठनेके लिये प्रार्थना की। महाराज आसनपर बैठे, पक्वान्न परोसे गये और महाराजने भोजन किया। पर इसी समय एक चमत्कार हुआ। वह यह कि जिस समय नाथ यहाँ भोजन कर रहे थे, उसी समय बहुतोंने उन्हें अपने घरपर भी उसी रूप और भेषमें देखा था। एक ही एकनाथ एक ही समयमें कहाँ तो अपने घरपर भागवतका प्रवचन कर रहे हैं और कहाँ उसी समय रनियाके यहाँ भोजन भी कर रहे हैं। यह चमत्कार जब उन ब्राह्मणोंने देखा तब उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उनके लिये यह समझना कठिन हो गया कि उन दोनोंमेंसे सच्चे एकनाथ कौन हैं? तब उन लोगोंकी यही धारणा हुई कि रनियाका सद्भाव जानकर भक्तवत्सल भगवान् पाण्डुरंगने ही एकनाथके भेषमें रनियाके घर जाकर भोजन किया होगा।

१२—ब्राह्मण और पारस

पैठणमें एक ब्राह्मणके पास पारस-पत्थर था। इस पत्थरको वह अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करता था। एक बार उसे यात्राके निमित्त कहीं दूर जाना था। अब यह पारस कहाँ रखा जाय? एकनाथ पूर्ण भगवद्भक्त हैं यह जानकर ब्राह्मणने पारस

उन्हींके पास रखा। एकनाथ महाराजने उसे देवताओंके सिंहासनके नीचे रख दिया। दूसरे दिन जब उद्धव देवताओंका निर्माल्य उठाने लगे तब उसके साथ पारस भी आ गया। निर्माल्यके साथ पारस भी गंगाजीमें गया। डेढ़ वर्ष पश्चात् वह ब्राह्मण लौटा और अपना पारस माँगने लगा। नाथको अबतक कभी उसका स्मरण भी नहीं हुआ था। उन्होंने उद्धवसे कहा कि देखो, सिंहासनके नीचे कहीं होगा उसे उठा लाओ। पर वह अब वहाँ काहेको मिलता? उद्धवने कहा कि निर्माल्यके साथ उसे भी गंगा-प्रवाह हो गया होगा। ब्राह्मणको एकनाथ महाराजपर सन्देह हुआ। सोचा, दालमें कुछ काला है। वह और क्या सोचता? वह पारसको जितना मूल्यवान् समझता था, उतना ही मूल्यवान् उसे एकनाथ महाराज भी समझते होंगे, इससे अधिक वह और क्या समझ सकता था? हर कोई हर किसीको अपनी ही कसौटीपर कसा करता है। वह बेचारा यह क्या जाने कि 'भगवान्‌के चरणोंमें आधे क्षणकी स्थिति भी इतने अनुपम आनन्दकी होती है कि उसके सामने भक्तलोग त्रिभुवन-विभवसम्पत्तिको भी तृणप्राय मानते हैं।' एकनाथ महाराज उस ब्राह्मणको गंगा-किनारे ले गये, जलमें उतरकर गोता लगाया और दोनों हाथ भरकर पत्थर उठा लाये, हाथ ऊपर करके बोले, 'इनमें जो तुम्हारा पारस हो उसे निकाल लो।' ब्राह्मणने अपनी जेबसे पारसकी परीक्षाके लिये लोहखण्ड निकाला। देखा, सभी पत्थर पारस ही तो हैं। एकनाथ महाराजने एक पत्थर उसे दिया और बाकी गंगाजीमें डाल दिये। जिस महात्माके हाथके स्पर्शसे जीव ब्रह्म हो जाता है वह क्या सोना-मोतीसे ललचा सकता है? नालेके लिये वर्षाका भले ही बड़ा महत्त्व हो पर इससे समुद्रको क्या?

१३—अन्त्यज बालक और कोढ़ी ब्राह्मण

एक दिन एकनाथ महाराज मध्याह्न-सन्ध्याके लिये गंगाजी जा रहे थे। रास्तेमें एक महारका बच्चा अपनी माँके पीछे दौड़ता जा रहा था। माँ पानी भरने जा रही थी, जल्दीमें कुछ आगे बढ़ गयी और बच्चा पीछे कहीं लड़खड़ाकर गिर पड़ा। बालूका वह मैदान सूर्यकी प्रखर किरणोंसे भट्ठी हो रहा था। बच्चेके मुँहसे लार और नाकसे सीड़ें निकल रही थीं। बच्चा तेजीसे दौड़ नहीं सकता था और माँको आगे जाते देख उसका मन पीछे लौटनेको भी न होता था। इस हालतमें पड़े, धूपसे हैरान उस बच्चेको देखकर नाथका अन्तःकरण विकल हो उठा। उन्होंने चट उस बच्चेको गोदमें उठा लिया, उसका नाक-मुँह साफ किया और उसे अपनी धोती ओढ़ाकर धूपसे बचाते हुए महारोंकी बस्तीमें ले आये। वहाँ पहुँचते ही बच्चेने अपना घर पहचान लिया। घरमेंसे उसका बाप दौड़ता हुआ बाहर आया, इतनेमें माँ भी गगरी लिये आ पहुँची। महाराजने बच्चेको उसके माँ-बापके हवाले किया और 'बच्चोंको ऐसे छोड़ न देना चाहिये, उनको हर तरहसे पालना-पोसना चाहिये, इसमें लापरवाही करना ठीक नहीं' इत्यादि उपदेश करके गंगातटपर चले गये। स्नान-सन्ध्यादि करके महाराज घर गये और नित्य-कर्ममें लगे। इस घटनाके कुछ दिन बाद त्र्यम्बकेश्वरका एक वृद्ध ब्राह्मण पैठणमें आया। इसे कुष्ठरोग हो गया था और उससे यह बहुत ही पीड़ित था। पैठणमें आकर एकनाथका घर पूछता हुआ वह सीधे एकनाथ महाराजके ही घर पहुँचा। मध्याह्नका समय था। महाराज काकबलि डालने दरवाजेके बाहर आये तो यह दुःखी ब्राह्मण उनके पास गया और अपना हाल बताने लगा। अपना नाम-ठिकाना सब बताकर उसने

कहा, 'यह कुष्ठ ठीक हो जाय इसके लिये मैंने त्र्यम्बकेश्वरमें अनुष्ठान किया। आठ दिन हुए, भगवान् शंकरने स्वप्नमें दर्शन देकर मुझसे कहा कि जाओ तुम पैठणमें जाकर एकनाथसे मिलो और व्याकुल होकर उसने जो महारके एक बच्चेके प्राण बचाये हैं उसकी उसे याद दिलाओ। इस उपकारका पुण्य यदि वह तुम्हारे हाथपर संकल्प कर दे तो तुम रोगमुक्त हो जाओगे।' यह कहकर वह ब्राह्मण रोने लगा और नाथके चरणोंपर लोट गया। नाथ महाराजने त्र्यम्बकेश्वरके ब्राह्मणकी सब कथा सुनी और कहा, 'मेरे न कोई पाप है न कोई पुण्य ही। मैंने क्या पुण्य किया यह भगवान् त्र्यम्बकेश्वर ही जानें! ऐसा कोई भी पुण्य मैंने जन्मसे लेकर आजतक किया हो, तो मैं उसका तुम्हारे हाथपर संकल्प करता हूँ।' यह कहकर एकनाथ महाराजने जलपात्र हाथमें लिया और संकल्प करनेहीवाले थे, इतनेमें उस ब्राह्मणने रोका और कहा कि 'नहीं, आपका सब पुण्य मुझे नहीं चाहिये, केवल उतना ही चाहिये जितनेके लिये त्र्यम्बकेश्वर महादेवकी आज्ञा हुई है। ब्राह्मणकी इस इच्छाके अनुसार महाराजने वैसा ही संकल्प किया और जल उसके हाथपर छोड़ा। उसी क्षण उस ब्राह्मणका रोग नष्ट हो गया और उसकी काया निर्मल हो गयी। दस-पाँच दिन वह ब्राह्मण एकनाथ महाराजके यहाँ रहा, उनके अलौकिक गुणोंको देख-देखकर उसकी प्रसन्नता दिन-दिन बढ़ती गयी। उन्हींके गुण गाता हुआ वह त्र्यम्बकेश्वरको लौट गया।

१४—महार और ब्रह्मराक्षस

पैठणमें एक महार चोरी करके ही अपनी जीविका चलाता था। एक चोरीमें वह पकड़ा गया, पैरोंमें बेड़ियाँ पड़ीं और कारागार पहुँचाया गया। कारागारमें उसे खानेको नहीं मिला,

शरीरको बड़े कष्ट हुए, सिरपर बाल बढ़े, उनमें जूएँ पड़ गयीं और सर्वांग विकल हो गया एवं प्राण आँखोंमें आकर अटक रहे। इस हालतमें उसके पैरोंकी बेड़ियाँ निकाल ली गयीं और वह अधमरा-सा मनुष्य कई दिन आँगनमें लोट-पोट करता पड़ा रहा। एक दिन रातको इसी हालतमें उसने एकनाथ महाराजके कीर्तनकी ध्वनि दूरसे आती हुई सुन ली और सुनते ही उसे अपना छुटकारा करा लेनेकी बात सूझी। वह धीरे-धीरे रेंगता हुआ कैदखानेसे निकला और इसी तरह रास्ता तै करके एकनाथ महाराजके द्वारपर जा पहुँचा। उसकी आर्त्तध्वनि ज्यों ही नाथ महाराजके कानोंमें पड़ी त्यों ही वह बाहर आये। महारका हाल देखा। उसके मुँहसे स्पष्ट शब्द नहीं निकल पाता था, फिर भी संकेतसे उसने सुझा दिया कि पेटमें अन्न नहीं है। नाथ महाराजने तुरंत खीर तैयार कराके उसके मुँहमें डाली। बिछाने और ओढ़नेको उसे वस्त्र दिये, सोनेके लिये स्थान भी दिखा दिया। वह जब सुखसे सो गया तब नाथ सोनेके लिये अपने कमरेमें गये। दूसरे दिन नाथ महाराजने हाकिमोंको चोरके छूट आनेकी खबर दी और साथ ही यह विनती की कि दवा-दारूके लिये इसे अब मेरे ही यहाँ रहने दिया जाय। हाकिमोंने महाराजकी बात मान ली और बाकी सजा भी माफ कर दी। तीन महीने वह नाथ महाराजके यहाँ रहा, उसकी बड़ी सेवा-शुश्रूषा हुई और तीन महीनेमें वह पहले-जैसा हट्टा-कट्टा हो गया। नाथ महाराजके अन्नका ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसकी सारी मलिन वासनाएँ धुल गयीं। एकनाथ महाराजके प्रति उसके हृदयमें परम पूज्यभाव उत्पन्न हुआ। पहलेका कुमार्ग उसने छोड़ा और नाथ महाराजकी कृपासे वह विट्ठलभगवान्‌का उपासक हुआ। इस घटनाके कुछ काल

बाद एक दिनकी बात है कि नाथ गंगाजी जा रहे थे, रास्तेमें एक अश्वत्थ वृक्षके नीचेसे होकर ज्यों ही महाराज आगे बढ़े त्यों ही वृक्षपर रहनेवाला ब्रह्मराक्षस नीचे उतरकर महाराजके सामने खड़ा हो गया। उसने महाराजसे कहा—'आजतक आपने जितने ब्राह्मण-भोजन कराये, उन सबका अथवा कैदखानेसे भगाकर आये हुए महारकी जो आपने सेवा-शुश्रूषा की उसका, दोनोंमेंसे किसी एकका पुण्य मुझे दीजिये, इससे मैं इस योनिके कष्टोंसे मुक्त हो जाऊँगा।' ब्रह्मराक्षसकी यह प्रार्थना उन्होंने सुनी, पर पाप और पुण्य तो सकाम कर्मोंसे होते हैं, एकनाथ महाराज कायिक, वाचिक, मानसिक सारे ही कर्म निष्कामभावसे करते थे, इससे पाप-पुण्यका कोई हिसाब उनके पास नहीं था। पाप और पुण्य नरक और स्वर्गके देनेवाले हैं, सन्त तो इनके परे नैष्कर्म्य बोधके द्वारा सर्वथा मुक्तानन्दमें रहते हैं। अखण्ड आत्मरूपानन्द ही उनका स्वरूप होता है। एकनाथ महाराजने कैदखानेसे छूटे हुए अन्त्यजकी सेवा-शुश्रूषाके पुण्यपर जल छोड़कर ब्रह्मराक्षसको मुक्त किया।

नाथ और श्रीखण्डिया

उसके संगके सुखके लिये मुझ विदेहको देह धारण करना पड़ता है, यही नहीं बल्कि उसके लिये देह धारण करना मुझे इतना प्रिय होता है कि जिसकी कोई उपमा नहीं।

—ज्ञानेश्वरी, अ० १२

एकनाथ महाराजने भगवान्‌की ऐसी निरुपम सेवा की कि उनके संगति-सुखके स्नेहसे भगवान्‌ने उनके घर बारह वर्ष रहकर उनकी सेवा की। '**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः**' इस गीताके वचनके अनुसार सदा सर्वत्र परमात्माको ही देखनेवाले दुर्लभ महात्माओंकी कोटिमें जब एकनाथ महाराज पहुँचे तब स्वयं भगवान् ब्राह्मणरूपसे उनके यहाँ आकर रहने लगे। भक्तने भगवान्‌की ऐसी सेवा की कि भगवान्‌की यह इच्छा हुई कि अब हम भक्तकी सेवा करें। भक्त जब भगवान्‌को प्राप्त हुए तब भगवान् भक्त बनकर नीचे उतर आये! भक्तकी भक्तिका उत्कर्ष भागवतता है और भगवान्‌की भागवतताका उत्कर्ष भक्तकी भक्ति है। भगवान् ही तो भक्त और भक्त ही तो भगवान् हैं। परम भक्तको जब भगवान् देखते हैं तब उन्हें भी भक्त बन जानेकी इच्छा होती है। आर्त्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी भक्तोंसे ज्ञानी भक्त कोटिशः श्रेष्ठ होता है। '**ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्**' अर्थात् अखण्डरूपसे मेरे अन्दर समरस हुआ अभेद भक्त मेरा आत्मा है, मैं ही तो वह हूँ। यही तो भगवान्‌ने स्वयं कहा है। '**प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः**' ज्ञानी भक्तके परम प्रेमके स्थान भगवान् और भगवान्‌के परम प्रेमके स्थान भक्त होते हैं। इस प्रकार वे परस्परके साथ हैं। भक्तको भगवान्‌के सिवाय और कोई

बात अच्छी नहीं लगती और भगवान्‌को भी भक्तके सिवाय और कुछ अच्छा नहीं लगता। भक्तके सर्वस्व भगवान् और भगवान्‌के सर्वस्व भक्त होते हैं।

'**भक्तिमान् मे प्रियो नरः**' (गीता १२। १९) इस भगवद्वचनका मर्म ज्ञानदेव महाराजने इस प्रकार बताया है—'चौथे पुरुषार्थकी सिद्धि अर्थात् सायुज्य-मुक्ति प्राप्त कर वह जो संसारको मुक्ति देने निकलता है, उसे ही देखनेको मेरा जी चाहता है, तब मैं अचक्षु होकर चक्षुवाला बनता हूँ। उसे आलिंगन करनेका आनन्द लेनेके लिये मैं दो-पर-दो याने चार भुजाएँ लगाकर आता हूँ। उसके गुणोंके वर्णन अपनी वाणीपर और उसकी कीर्तिके कुण्डल अपने कानोंमें धारण करता हूँ, अपने हाथके कमलसे उसे पूजता हूँ, उसे अपने माथेका मुकुट बनाता हूँ और उसके पाँव अपने हृदयपर धारण करता हूँ।' इसी अभिप्रायके अनुसार एकनाथ महाराजकी लोकोत्तर भक्तिसे मोहित होकर भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मण-वेशमें एक बार नाथके घर आये और उन्हें नमस्कार कर सामने खड़े हो गये। उस समय उन दोनोंका इस प्रकार संवाद हुआ—

नाथ—आप कैसे आये?

ब्राह्मण—आपका नाम सुना, इच्छा हुई कि आपके साथ अखण्ड समागम हो और आपकी कुछ सेवा बन पड़े इसीलिये आया हूँ। सदासे मैं सन्तोंका सेवक ही रहा हूँ। मुझे वेतन नहीं चाहिये। पेटभर अन्न मिले और आपकी सेवा हो, इतनी ही इच्छा है।

नाथ—आपके कुटुम्ब-परिवारमें कौन-कौन हैं?

ब्राह्मण—मैं अकेला ही हूँ मेरे न कोई स्त्री है न बाल-बच्चे। इस शरीरको श्रीकृष्ण या श्रीखण्डिया कहते हैं।

नाथ—आपसे सेवा लेनेकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। तथापि आप अन्न-वस्त्र लेकर आनन्दसे यहाँ परमार्थ-साधन कर सकते हैं।

ब्राह्मण—बस, इतनी ही कृपा चाहिये। अपने कष्टसे अन्न प्राप्त करनेकी इस दासको अनुमति हो। मेरी सेवा आप अवश्य ग्रहण करें।

श्रीखण्डिया नाथके घर रहने लगा। उसने अपने गुणोंसे सबको मोह लिया। भगवान्‌की लीला कुछ ऐसी अपरम्पार है कि सब प्राणियोंमें भगवान्‌को देखनेवाले नाथ भी उनके उस वास्तविक रूपको नहीं पहचान सके। भगवान्‌ने अपनी मायाका परदा बीचमें रखा, अन्यथा नाथ-जैसे भक्तश्रेष्ठ एक क्षण भी भगवान्‌से सेवा न कराते। परन्तु भगवान्‌को नाथकी सेवा करना प्रिय था, इसलिये नाथ-जैसे पूर्ण पुरुष भी उन्हें पहचान नहीं सके। श्रीकृष्णने माता यशोदाको चौदहों भुवन अपने मुँहके अन्दर दिखा दिये तो भी माताके हृदयका पुत्रभाव ज्यों-का-त्यों बना ही रहा। वैसी ही बात यहाँ भी समझनी चाहिये। भगवान् एकनाथ महाराजके यहाँ नित्य पानी भरें, देव-पूजाके निमित्त चन्दन घिसें, ब्राह्मण-भोजनके पश्चात् जूठी पत्तलें उठावें और नाथकी हर तरहसे सेवा करें। धर्मराजके राजसूय-यज्ञके समयसे उन्हें जूठी पत्तलें उठानेकी मानो आदत ही पड़ गयी है। जिनके चरणोंसे भागीरथी प्रकट हुईं वह नाथके घर पूजाके लिये पानी भरा करते थे। जिनकी प्राप्तिके लिये हजारों तपस्वी सूखकर काठ बन गये, वह नाथके घर देव-पूजाके निमित्त चन्दन घिसा करते थे। जिनकी कीर्ति गाते-गाते 'नेति-नेति' कहकर श्रुतिने हार मानी, वह नाथके गुण गानेवाले भाट बने! जिनके चरणोंकी

रजके लिये भर्तृहरि-जैसे मनस्वी पुरुषोंने राजपाट त्याग दिया, वह नाथके पैर दबाया करते थे! जिनके प्रकाशसे चन्द्र-सूर्य प्रकाशमान हुए, वह नाथके घर दीपक जलाया करते थे। इन्द्रादि देवता जिनके आज्ञाकारी हों, वह नाथकी आज्ञाकी प्रतीक्षामें उनके द्वारपर खड़े रहते थे। जिनके स्मरणमात्रसे योगी विमलाशय हो जाते हैं, वह नाथके घर-पूजाके पात्र मला करते थे! लक्ष्मी जिनके पाँव-तले पड़ी रहती हैं, वह नाथ-पत्नीके चरणोंके पास बैठा करते थे। सब देवता जिनकी आज्ञासे विश्वचक्रको चलाते हैं, वह गिरिजाबाईके घरके काम-काजकी छोटी-से-छोटी बात भी बहुत मन लगाकर किया करते थे! धन्य हैं वह एकनाथ, जिनके भक्तिभावसे मोहित होकर भगवान् भी उनके अंकित हो गये। नाथके घर श्रीखण्ड (दिव्य-चन्दन) घिसकर उन्होंने अपना 'श्रीखण्डिया' नाम सार्थक किया। भगवान् अपने सारे ऐश्वर्यको भुलाकर नाथके घर बारह वर्ष सेवा करते रहे। भूतदया जिनके रोम-रोमसे प्रकट हो रही थी, उन एकनाथके घर वह भूतभावन-भूतेश स्वयं सेवक बनकर रहे। नाथका योगक्षेम भगवान्‌ने वहन किया, इसमें आश्चर्य ही क्या है? नाथके उत्सवमें गंगाजलसे भरे हुए पात्र घृतसे भरे हुए निकले, इसमें भी आश्चर्यकी कोई बात नहीं! नाथके यहाँ ३०—३५ वर्षतक ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतक सबके लिये सदावर्त था। नाथके द्वारपरसे कोई भी अतिथि खाली हाथ नहीं गया! उन्होंने सहस्रों जीवोंको भक्ति-पथमें प्रवृत्त किया। उन्हें अन्न देकर उनके शरीरका और ब्रह्मज्ञान देकर उनकी बुद्धिका पोषण किया। बड़े-बड़े राजाओंको भी जिस दानीपनका यश नहीं मिलता, वह यश उन्हें मिला। भगवान्‌का सख्य प्राप्त करनेके

कारण और स्वयं भगवान्‌के ही उनके घर सेवा करनेके कारण उन्हें लोग 'दीनोंका कल्पवृक्ष' कहने लगे। भगवान्‌की सेवा करनेवाले भक्त करोड़ों हैं, पर भगवान् जिसकी सेवा करके अपनेको धन्य मानते हैं, ऐसे भक्त तो भक्तमणिगणोंके चक्रवर्ती ही हैं। नाथके पुण्यप्रतापकी यह हद हो गयी और भक्ति-पन्थके महत्कार्यपर कलश चढ़ गया।

इस प्रकार बारह वर्ष बीते। तब भगवान्‌ने स्वयं अन्तर्धान होकर भक्तका यश प्रकट करनेका संकल्प किया। उन सत्यसंकल्प, दयानिधि और भक्तवत्सल भगवान्‌को नाथकी रहन-सहन देखकर बहुत संतोष हुआ। अन्दर-बाहर एक रहनेवाले भक्तसे विदा होना भगवान्‌के लिये कठिन हो गया, तथापि भक्तजनोंके उद्धारार्थ भक्तोंका यश भगवान्‌को बढ़ाना ही पड़ता है।

उस समय द्वारकामें एक ब्राह्मण अनुष्ठान कर रहा था। युक्ताहारविहार रहकर यम-नियमादिका पालन करके सदा सुखसे 'कृष्ण-कृष्ण' कहा करता था। भगवान्‌के ही छन्दसे वह परिपूर्ण हो गया था। उसे सदा भगवान्‌का ही निदिध्यास लगा रहता था। शीत और उष्णको सहन करते और मनको एकाग्र करते हुए उसने हृदयमें जो भगवान्‌को धारण किया, उससे भगवान्‌को करुणा आ गयी। उस ब्राह्मणको भगवान्‌ने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि 'मैं पैठणमें एकनाथके घरपर हूँ। उसकी सेवासे मैं प्रसन्न हुआ हूँ। वहाँ 'श्रीखण्डिया' नाम धारणकर मैं रहता हूँ, वहाँ जाओ, वहाँ मेरे दर्शन होंगे।' वह ब्राह्मण पैठणमें पहुँचा, वहाँ सबसे पहले गोदावरीके दर्शन हुए, उसके निर्मल जलसे हाथ-पैर धोकर मुखमार्जन करके वह बस्तीमें पहुँचा और एकनाथ महाराजका मकान ढूँढ़ने लगा। बस्तीमें जिस पहले आदमीको

उसने देखा वह कन्धेपर काँवर लिये जानेवाला श्रीखण्डिया ही था। वह ब्राह्मण गद्गद हुआ नाथके मकानपर आया, अन्दर घुसा नाथ देवगृहमें थे। वह सीधा वहीं उनके पास पहुँचा। भगवान्के दर्शन करने आया हुआ वह ब्राह्मण थोड़ी देरके लिये भगवान्को भी भूल गया और भक्तको देखते ही तन्मय हो गया! उसके शरीरपर सात्त्विक अष्टभाव* उदय हो आये और उसके नेत्रोंसे अश्रुधाराएँ बहने लगीं। कण्ठ रुँध गया, उसी हालतमें उसने काँपते हुए स्वरमें कहा कि 'महाराज, मुझे श्रीकृष्णके दर्शन कराइये।' उसकी वह हालत देखकर नाथ महाराजने कहा, 'श्रीकृष्ण तो सर्वत्र रम रहे हैं। वह सम्पूर्ण विश्वके अन्दर और बाहर व्याप्त हैं, जहाँ हो वहीं देखो, तब तुम्हें वह दर्शन देंगे। वह जहाँ है, वहीं है। उन्हें अलग करके कैसे देख सकते हो? दृश्य, दर्शन, द्रष्टा तीनोंको पारकर देखो तो तुम्हीं श्रीकृष्ण हो।' यह सुनकर उस ब्राह्मणने कुछ झुँझलाकर कहा, 'मुझे इस ब्रह्मज्ञानकी जरूरत नहीं। मुझे तो भगवान्ने यह स्वप्न दिया है कि एकनाथ महाराजके यहाँ तुझे मेरे साक्षात् दर्शन होंगे। श्रीखण्डिया कहाँ है, यह मुझे बताइये। उससे मुझे मिलाइये।' यह सुनते ही एकनाथके हृदयपर चोट-सी लगी और उद्धव आदि सब लोग श्रीखण्डियाको ढूँढ़ने निकले। चारों ओर ढूँढ़-खोज हुई पर कहीं पता न लगा। नाथ अपने आसनपर बैठे थोड़ी देर

---

* स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका मताः॥

स्तम्भित होना, पसीना छूटना, रोंगटे खड़े होना, स्वरका काँपना, कँपकँपी होना, रंग उड़ जाना, अश्रुपात होना और मृतवत् हो जाना—ये सात्त्विक अष्टभाव हैं।

ध्यानमग्न हो गये और उनके ध्यानमें सब बातें आ गयीं। एक बार रोमांचित हो उठे और फिर सोचने लगे, 'भगवान्‌को मैंने कितना कष्ट दिया? लगातार बारह वर्ष उनसे ऐसी सेवा करायी। ऐसे-ऐसे काम कराये जो कभी न कराने चाहिये थे। यह सोचकर उनका कोमल हृदय अत्यन्त व्यथित हुआ। वह और गिरिजाबाई दोनों ही बेबस होकर रोने लगे। फिर उन्होंने भगवान्‌को पुकारा। उस समय चतुर्भुज साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सामने प्रकट हुए। एकनाथ, गिरिजाबाई और उस तपस्वी ब्राह्मणको अत्यानन्द हुआ। तीनों भगवान्‌के चरणोंपर लोट गये। वह वार्ता बात-की-बातमें सर्वत्र फैल गयी और एकनाथ महाराजके दर्शनोंके लिये हजारों लोग दौड़े आये। श्रीखण्डिया जिस कुण्डेमें पानी भरा करता था, वह कुण्डा अभीतक एकनाथ महाराजके घरमें है और षष्ठीके दिन लोग हजारों गगरी पानी उसमें डालें तो भी, कहते हैं कि जबतक भगवान् गगरी भरकर उसमें नहीं डालते, तबतक वह नहीं भरता और ज्यों ही भगवान्‌की गगरीका पानी उसमें आ जाता है, त्यों ही पानी भरकर बाहर बहने लगता है। यह सुनी बात तो है ही, पर देखी हुई भी है।

भगवान् एकनाथके घर गंगाजीसे काँवर लाकर जल भरा करते थे। यह बात आजतक अनेक सन्तों और कवियोंने बड़े प्रेमसे बखानी है। जिन्हें सगुण साक्षात्कार हो चुका है अथवा जो स्वभावतः श्रद्धालु हैं, उन्हें इस बातकी सत्यताके विषयमें कोई सन्देह नहीं होता। परंतु जो श्रद्धालु नहीं हैं और तर्कके द्वारा ही भगवान्‌को जाननेकी चेष्टा करते हैं वे आगे दिये जानेवाले प्रमाणोंका विचार करके ही अपना कोई मत निश्चित करें। जो लोग महापुरुषोंके वचनोंको भी प्रमाण नहीं मानते, अहंकार ही

जिनके सिरपर हर घड़ी सवार रहता है उनसे अवश्य ही हमारा कुछ कहना नहीं है। महीपति-बाबाने अपने भक्तविजय और सन्तलीलामृत दोनों ग्रन्थोंमें यह कथा दी है। केशवकृत एकनाथ-चरित्रमें भी इसका वर्णन है। नीलोबारायने एकनाथकी आरतीमें इसका वर्णन किया है। अमृतरायने अपने एक सुन्दर पद्यमें एकनाथकी भक्तिका वर्णन करते हुए कहा है कि उनकी भक्तिसे भगवान् अपने कन्धेपर काँवर रखकर एकनाथके यहाँ जल भरते थे। रंगनाथस्वामीने वर्णन किया है कि एकनाथके घर 'वैकुण्ठका सगुण ब्रह्म' स्वयं आकर श्रीखण्डियाके नामसे एकनाथकी सेवा करता था। स्वयं एकनाथ महाराजके समकालीन दासोपन्तने भी यही वर्णन किया है कि एकनाथके यहाँ स्वयं 'नन्दनन्दन' चन्दन घिसा करते और पानी भरा करते थे। एकनाथ महाराजके नाती मुक्तेश्वरने एकनाथकी आरतियों और अन्य पद्योंमें इस कथाको दोहराया है और 'श्रीखण्डाख्यान' नामसे ९४ ओवियोंका एक स्वतन्त्र प्रकरण भी लिखा है। दासोपन्त एकनाथ महाराजके साथ बहुत रहे थे और मुक्तेश्वरको बचपनमें एकनाथ महाराजका सत्संग प्राप्त हुआ था। ये प्रमाण हैं। जो सामान्य नहीं हैं, तथापि स्वयं एकनाथ महाराजके अपने हाथके लिखे भी दो प्रमाण मौजूद हैं जो यहाँ दिये जाते हैं। पाठक इनका खूब अच्छी तरहसे विचार करें। एकनाथ महाराजने अपने 'रुक्मिणी-स्वयंवर' नामक लोकप्रिय ग्रन्थके १६ वें प्रसंगमें श्रीकृष्ण-विवाहके पश्चात् वंशपात्रदानका वर्णन करते हुए कहा है—

'पहले पितामहके पिता (भानुदास)-पर भगवान् सुभानु प्रसन्न हुए और उन्होंने भानुदासके वंशको तत्त्वतः हरिचरणोंमें

लगा दिया। प्रह्लादपर कृपा थी इससे भगवान् बलि राजाके द्वारपाल बने। वैसी ही यह बात भी है। भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी कृपादृष्टि है।'

'वैसी ही यह बात भी है' इस कथनमें, हमारे विचारमें उसी कथाका स्पष्ट संकेत है। अन्तर इतना ही है कि बलि प्रह्लादके पोते थे और एकनाथ भानुदासके परपोते। प्रह्लादका पुण्य-बल महान् था, इससे भगवान् उनके पोतेके द्वारपाल बने और भानुदासका पुण्यबल भी महान् था, इससे भगवान् भानुदासके परपोतेके यहाँ सेवक बनकर रहे। एकनाथ महाराजका यहाँ यही अभिप्राय मालूम होता है, पर इससे भी अधिक स्पष्ट प्रमाण एकनाथ महाराजके अभंगोंमें है। 'गाथापंचक' की नाथगाथामेंसे एकनाथ महाराजके रखे हुए कुछ अभंगोंका आशय यहाँ देते हैं—

महाराज कहते हैं—'आपने सेवा करके मेरा नाम बढ़ाया। आप ऐसे कृपालु और उदार हैं। आप नाना प्रकारकी सामग्री जुटाते रहे। मैं आपसे कभी उऋण नहीं हो सकता। पूजाकी सामग्री आप बराबर जुटाते रहे। आपने कभी कोई कमी न मालूम होने दी। सचमुच ही मैं अपराधी हूँ, पतित हूँ। जड जीवोंको आपने उबारा। भगवन्! आप कृपालु हैं, प्रेमवश आपने सेवा भी की। लीप-पोतकर स्थान स्वच्छ करना, मेरे वचनका पालन करना, चन्दन घिसना, आपने दासके लिये सब कुछ किया और मैं ऐसा पतित अपराधी हूँ कि मैंने आपसे यह सेवा करायी।'

इस प्रकार ३५० वर्षसे जिस बातको लोग सच मानते आये हैं, जिस बातके प्रमाणस्वरूप आज भी 'श्रीखण्डिया-रांजण' (कुण्डा) पैठणमें देख सकते हैं, जिस बातकी गवाही अमृतराय, महीपति, मोरोपन्त-जैसे प्रेमी कवि दे रहे हैं, जो बात दासोपन्त-

मुक्तेश्वर-जैसे एकनाथके समकालीन विचक्षण सन्त कह रहे हैं और जिस बातका सबसे बड़ा प्रमाण यह कि स्वयं एकनाथ महाराज कह रहे हैं, उसे जो अप्रमाण कहनेको तैयार हों, उन्हें नमस्कार है! सर्वगत चिद्रूप परमेश्वर सगुणरूपमें दर्शन देते हैं यह बात अनुभवसे जाननेकी है, शब्दोंसे साबित करके दिखानेकी नहीं। यह कैसे होता है और क्या होता है यह बतलानेमें क्या रखा है? वैसी दृढ़ उपासना जिसकी होगी, उसके सामने उसके उपास्यदेव प्रत्यक्ष होंगे ही। सन्तोंका यही अनुभव है। जैसे हम पामरोंके लिये यह जगत् प्रत्यक्ष है वैसे ही भक्तोंके लिये भगवान् प्रत्यक्ष हैं। सन्तोंके लिये भगवान् सदा सन्निध हैं। वह जैसे निर्गुण हैं वैसे ही सगुण भी। एक अभंगमें ज्ञानेश्वर महाराजने कहा है कि 'तुझे क्या कहें? सगुण कहें या निर्गुण? तू तो सगुण-निर्गुण दोनों एक है।' यह कहकर ज्ञानेश्वर महाराजने यह समझाया है कि स्थूल, सूक्ष्म, दृश्यादृश्य, व्यक्ताव्यक्त सबमें सर्वत्र एक परमात्मा ही ओतप्रोत हैं। प्रतीतिके बलसे उसे जानना होता है, जो निर्गुण है, उसे सगुण होनेमें कठिनाई ही क्या है? यह कहना कि वह सगुण नहीं हो सकता, उसे सर्वशक्तिमान् माननेसे इन्कार करना है। वह सर्वात्मक होकर भी सर्वात्मकतामें कोई बाधा पड़े बिना सगुण और साकार हो सकता है। जनार्दनस्वामीकी कृपासे देवगढ़पर एकनाथको जिन्होंने दत्तात्रेयके रूपमें दर्शन दिये, जो काशीमें कीर्तन करते समय प्रकट हुए, जो अनुष्ठानसमाप्तिके अवसरपर श्रीकृष्णके रूपमें प्रत्यक्ष हुए, जो उनके यहाँ बारह वर्ष श्रीखण्डके वेशमें सेवक बने रहे, वह चराचरव्यापी सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी और सर्वगत जगदात्मा उनकी अपूर्व निष्ठासे उनके

सामने प्रत्यक्ष हुए। भगवान् व्यक्त हैं और अव्यक्त भी हैं। वेद, शास्त्र, पुराणोंने जिनके गुण गाये हैं और एकनाथ महाराजने अपने इन नेत्रोंसे जिनके दर्शन किये उन भगवान्‌को एकनाथ सदा अपने हृदयमें रखते थे और उन्हीं भगवान्‌को सब प्राणियोंके अन्दर देखते थे।

— काशी आदिकी यात्रा और ग्रन्थ —

उन्होंने भागवत और रामायणपर विस्तारसहित ग्रन्थ लिखे।
यदि वह दयानिधि ऐसा न करते तो जड जीव कैसे तरते?

—मोरोपन्त

एकनाथ महाराजका पहला ग्रन्थ हुआ 'चतुःश्लोकी भागवत।' यह पहले कहा जा चुका है कि यह ग्रन्थ उन्होंने त्र्यम्बकेश्वरमें गुरुके सम्मुख रचा। इसके पश्चात् उन्होंने पैठणमें हस्तामलक-टीका, शुकाष्टकटीका, स्वात्मबोध, चिरंजीवपद, आनन्दलहरी, अनुभवानन्द, मुद्राविलास, लघुगीता आदि कई ८—१० छोटे ग्रन्थ लिखे। ये सब ग्रन्थ अद्वैत-प्रधान हैं और इनकी शैली बड़ी सुबोध और चित्ताकर्षक है। ये सब ग्रन्थ नाथके अनुभवसे रँगे हुए हैं और इसलिये इनका अध्यात्म-विषय बहुत ही सुबोध हुआ है। कीर्तन और ललितके* अवसरोंपर एकनाथ महाराजके मुँहसे जो अभंग अनायास निकल पड़ते थे ऐसे सहस्रों अभंगोंका तथा इनके अतिरिक्त 'भजनी आरुड' नामसे जो एक अलग रचना हुई उसका उल्लेख पहले हो ही चुका है। नाथके सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ 'रुक्मिणी-स्वयंवर' और 'भागवत' हैं। इन दोनों ग्रन्थोंका लेखन-कार्य काशीमें समाप्त हुआ। इनके सम्बन्धमें एक बड़ी मनोरंजक घटना है। अन्तिम ग्रन्थ भावार्थरामायण है। यह ग्रन्थ अधूरा ही रह गया, इसलिये उसे उनके गावबा नामक शिष्यने पीछे पूरा किया। भागवत २०,००० और भावार्थरामायण

---

* कीर्तनकार जब भगवान्की लीलाका वर्णन करते हुए सब पात्रोंकी भूमिका बिना अपना वेश बदले, स्वयं लेकर सब संवाद सुनाते हैं तब इस प्रकार सबकी भूमिका लेकर सबके संवाद सुनानेको ललित कहते हैं।

४०,००० ओवियोंमें है। उनके सबसे बड़े ग्रन्थ ये ही हैं। रुक्मिणी-स्वयंवर १,७००, चतुःश्लोकी भागवत १,००० और बाकी सब ग्रन्थ १,००० के अन्दर हैं। सम्पूर्ण ओवीबद्ध ग्रन्थ ६५,००० और अभंग ५,००० के ऊपर हैं। सम्पूर्ण रचना ७५,००० के लगभग है और इसका अधिकांश भाग मराठीकाव्यमें प्रथम कोटिका माना गया है। रुक्मिणी-स्वयंवर और भागवत तो विशेष लोकप्रिय और सम्मान्य हैं ही। एकनाथ महाराजका यह भागवत-ग्रन्थ तो इतना सर्वांगसुन्दर है कि इसकी गणना संसारके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थोंमें ही हो सकती है।

भागवतधर्म अर्थात् भक्ति-पन्थके प्रधान ग्रन्थ दो हैं—एक गीता और दूसरा भागवत। पिछले एक सहस्र वर्षमें भारतवर्षके सब भागोंमें अनेक वर्णोंमें अनेक साधु-सन्त अवतीर्ण हुए और इन सबने प्रायः इन्हीं दो ग्रन्थोंका मुख्यतः आश्रय करके भक्तिपन्थका प्रचार किया। महाराष्ट्रमें इस पन्थके प्रथम प्रवर्तक श्रीज्ञानेश्वर महाराज हुए। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम—इन चार खम्भोंपर महाराष्ट्रकी भक्ति-पन्थकी द्वारका खड़ी है। ये खम्भे अभंग हैं और इसलिये काल भी इसे नहीं ग्रास सकता; अथवा हमलोग ऐसी भी कल्पना कर सकते हैं कि पण्ढरपुर भक्तोंका विश्वविद्यालय है और उससे सम्बद्ध आलंदी, देहू, पैठण और त्र्यम्बकेश्वर कॉलेज हैं। विट्ठल अर्थात् श्रीकृष्ण हमारे उपास्य हैं। 'रामकृष्णहरी' सबका प्रकट मन्त्र है। ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यजतक सबको इस मन्त्रका घोष करने और विट्ठलपद पानेका अधिकार है। इसमें ऊँच-नीच-भावका कोई लगाव ही न होनेसे, और 'रामकृष्णहरी' का नामघोष करनेके बजाय और किसी काममें समय खर्च करना जीवन नष्ट करना है, यही

सार्वत्रिक भावना होनेसे इस पन्थमें मतभेदों और झगड़ोंके लिये कोई अवकाश ही नहीं है। अपना-अपना धन्धा-व्यवसाय करके सम्पूर्ण कर्म भगवदर्पण कर स्वयं भगवान्‌से पृथक् न रहना यही इन भक्तोंका मुख्य धर्म है। ऐसे उदार धर्मके जो प्रमुख ग्रन्थ महाराष्ट्रमें हैं उनमें भी जो प्रमुख हैं उनमें एकनाथ महाराजके 'भागवत' की गणना है। एकनाथ महाराजका भागवत मूलभागवतके ग्यारहवें स्कन्धकी टीका है। इस ग्यारहवें स्कन्धमें भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको ब्रह्मोपदेश किया है, इसलिये इसे 'उद्धवगीता' भी कहते हैं। भगवान्‌ने अर्जुनसे जो गीता कही, उस भगवद्‌गीताका रहस्य मराठी-भाषामें ज्ञानेश्वर महाराजने प्रकट किया और उन्हीं भगवान्‌ने उद्धवसे जो गीता कही, उसका रहस्य मराठीमें एकनाथ महाराजने व्यक्त किया। 'ज्ञानेश्वरी' और 'नाथभागवत' दोनों ग्रन्थोंका प्रतिपाद्य विषय एक ही है और शब्द-रचना, विवेचन-पद्धति, अधिकारयुक्त ब्रह्मोपदेश, भगवत्प्रेम और स्वानुभूत ब्रह्मज्ञान भी दोनोंमें बिलकुल एक-सा ही है।

नाथभागवतके प्रथम दो अध्याय तैयार होनेपर नाथके एक शिष्य उसकी एक प्रति अपने नित्यपाठके निमित्त साथ लेकर काशी गये। वहाँ एक दिन वह मणिकर्णिका-घाटपर सन्ध्या-वन्दनके पश्चात् उसका पाठ कर रहे थे। तब वहाँके एक सुप्रसिद्ध षट्‌शास्त्रज्ञ संन्यासीके शिष्यने देखा और गुरुजीसे यह हाल जाकर कह दिया। संन्यासी बड़े दिग्गज विद्वान् थे और काशीमें उनका बड़ा दबदबा था। भागवतका अर्थ मराठीमें करनेवाला यह कौन व्यक्ति है? यह नाथशिष्यसे पूछा गया। तब शिष्यने शिष्योचित गुरुभक्तिभावसे एकनाथ महाराजका नाम और यश सुनाया। सुनकर भाषाद्वेषी संन्यासी स्वामी बहुत ही क्रुद्ध हुए

और उन्होंने अपने दो शिष्योंको पैठण भेजा, इसलिये कि एकनाथको वे अपने साथ ले आवें और स्वामीजीके सामने हाजिर करें। शिष्य पैठणमें पहुँचे, एकनाथसे मिले, उन्हें स्वामीजीका सन्देशा सुनाया। एकनाथने इसे काशी-विश्वनाथका ही आदेश माना और काशीके लिये प्रस्थान किया। घरकी नित्यपूजा, पुराण, कीर्तन, सदावर्त इत्यादिका सब भार उद्धवपर रखकर नाथ पैठणसे चले। बहुत आग्रह करनेपर भी उन्होंने और किसीको अपने साथ नहीं लिया। तो भी उद्धवने दो शिष्य उनकी सेवा-शुश्रूषाके लिये उनके पीछे-पीछे भेज ही तो दिये। नाथ अपने साथ भागवतकी प्रथम पंचाध्यायी काशी ले गये। काशी पहुँचकर उन्होंने घाट-किनारे एक धर्मशालामें डेरा डाला। उन संन्यासी स्वामीके तीन सौ शिष्य उन्हें अपमानित करने और काम पड़नेपर मार-पीट करनेके लिये भी वहाँ पहुँचे। पर आश्चर्यकी बात यह हुई कि जो लोग निन्दा करते हुए अपमान करने आये थे वे एकनाथको देखते ही वन्दन करके स्तुति करने लगे, कहने लगे कि यह कोई महान् महात्मा है।

एकनाथ महाराज केवल कुछ वेदान्तके ग्रन्थ पढ़कर वेदान्ती बने हों ऐसी बात नहीं थी। सद्गुरुके प्रसादसे स्वानुभवका रस चाखे हुए वह आत्मज्ञानी महात्मा थे। उनके मुखमण्डलपर ब्रह्मज्ञानका तेज झलकता था। उन्होंने अपने भागवत ग्रन्थ (अ० २—३६१) में कहा है—'घरमें दीया जलानेसे जैसे झरोखोंमें भी प्रकाश दिखायी देता है, वैसे ही मनमें जब भगवान् प्रकट होते हैं तब इन्द्रियोंमें भी भजनानन्द प्रकट होने लगता है।' श्रीकृष्णका तेज उनके रोम-रोमसे प्रकट होता था। उनकी अचल शान्ति, अनुपम नम्रता आदि उनके सभी गुण भी उनके साथ काशी गये हुए थे। संन्यासी स्वामी

महाराजके शिष्यगण एकनाथ महाराजकी रहन-सहन देखकर ही ठण्डे पड़ गये और एकनाथके गुण गाते हुए ही अपने गुरुके समीप गये। गुरु बड़े क्रोधी थे। शिष्योंकी बातें सुनकर शिष्योंपर बेतरह बिगड़े। एकनाथ गृहस्थ होकर भी सच्चे संन्यासी थे और संन्यासी स्वामी संन्यासी होकर भी रागी थे। इन्होंने एकनाथको अपने मठमें बुलाया, पर उनका मुँह नहीं देखा। उनके और अपने आसनोंके बीचमें एक परदा लटकवा दिया, इसलिये कि पाखण्डियोंका मुँह नहीं देखना चाहिये। पाखण्ड क्या? यही कि एकनाथने महाराष्ट्रभाषामें श्रीमद्भागवतका अर्थ प्रकट किया। पर इसके लिये केवल इन स्वामीको ही दोष देना ठीक नहीं, उस समय प्रायः सभी पण्डित इसी मतके थे। एकनाथ महाराजने विनयपूर्वक जो भाषण आरम्भ किया, उनके विनयसे ही एकनाथ महाराजकी आधी जीत हो गयी। एकनाथ महाराजने कहा—

'हे सर्वश्रेष्ठ स्वामी! मैं सद्भावसे आपके चरणोंमें अपना सिर नवाता हूँ। आप कृपाकर इस अनाथको दर्शन दीजिये। मुझमें न भाव है, न भक्ति, न ज्ञान है, न वैराग्य। मैंने न तो शास्त्र पढ़े, न वेदाध्ययन ही किया। आपकी सेवाके प्रतापसे ही कुछ कवित्व-स्फूर्ति हो गयी। इसीसे यथामति भागवतका कुछ अंश कह सका हूँ। अभी एकादश स्कन्धके केवल पाँच अध्याय हुए हैं स्वामी! इस पंचाध्यायीको अच्छी तरह देखकर इसके अर्थका ध्यान करें। यह जितना ग्रन्थ-लेखन हुआ है, इस व्याख्यानमें यदि कहीं कोई दोष हुआ हो तो फिर ऐसे ग्रन्थकी कोई आवश्यकता नहीं है, इसे आप ही मणिकर्णिकामें डुबा दें।'

इस भाषणसे श्रोताओंको कौन कहे, स्वामी भी सन्तुष्ट हुए। इस भाषणमें विनय तो है ही पर साथ ही 'अच्छी तरह देखकर

इसके अर्थका ध्यान करें और इस व्याख्यानमें यदि कहीं कोई दोष हुआ हो तो इसे फिर आप ही मणिकर्णिकामें डुबा दें' इस अधिकारयुक्त वाणीमें नीति भी है! यह बड़ी नीतिज्ञताका भाषण है। यह ग्रन्थ आप ही अब कसौटीपर कसा जायगा, इस आशासे एकनाथको बड़ा आनन्द हुआ। ऐरे-गैरे लेखकको ऐसा आत्मविश्वास हो ही नहीं सकता; पर एकनाथ पैठणके विद्वानोंमें रहे और बढ़े हुए तथा स्वयं विद्वान् और श्रीगुरुप्रसादका ऐश्वर्य भोगनेवाले सुसम्पन्न पुरुष थे। उनके मुखसे कोई अयथार्थ बात निकल ही नहीं सकती थी और इसका उन्हें पूर्ण विश्वास भी था। नाथका भाषण सुनकर स्वामी कुछ शान्त हुए, उन्होंने परदा हटा दिया, एकनाथने उन्हें वन्दन किया, फिर सबकी रायसे यह निश्चय हुआ कि श्रीमद्भागवतके दस विद्वान् एकत्र हों और उनके सामने स्वामीकी अध्यक्षतामें, एकनाथके इस ग्रन्थकी परीक्षा की जाय। इस प्रकार चार दिन इसकी सभाएँ हुईं। अन्तको स्वामीसहित सबके मतसे यह निश्चय हुआ कि ग्रन्थ बिलकुल निर्दोष और पूर्ण प्रासादिक है। पीछे स्वामी नाथसे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने एकनाथ महाराजको अपने मठमें ही स्थान देकर आग्रहपूर्वक रखा और उनसे यह प्रार्थना भी की कि आप अब इसी स्थानमें बैठकर अपना ग्रन्थ पूर्ण करें। नाथके लिये काशी और पैठणमें कोई अन्तर नहीं था। इस तरह काशीमें उन्होंने भागवतके आगेके अंश लिखे और छः महीनेमें ग्रन्थ सम्पूर्ण किया। ग्रन्थ-समाप्तिकी मिति एकनाथ महाराजने स्वयं ही लिख रखी है—कार्तिक शुक्ल १५, सोमवार, शाके १४९५ (संवत् १६३०)। रुक्मिणी-स्वयंवर ग्रन्थ भी उन्होंने काशीमें ही बैठकर लिखा, उसकी समाप्तिका दिन उन्होंने रामनवमी शाके १४९३ (१६२८) दिया है। दोनों ग्रन्थ

'**वाराणसीमुक्तिक्षेत्रे, मणिकर्णिकामहातीरे**' लिखे गये। इससे यह मालूम होता है कि एकनाथ महाराज काशीमें २-३ वर्ष रहे होंगे।

काशीमें एकनाथी भागवतका बड़ा जय-जयकार हुआ। वैर करने चले हुए स्वामी तो एकनाथके सामने शिष्य-से बनकर रहने लगे। एकनाथकी ब्रह्मनिष्ठा देखकर स्वामी उनके चरण छूते और एकनाथ उन्हें उनके चतुर्थाश्रमका स्मरण दिलाकर ऐसा करनेसे मना करते। स्वामीका घमण्ड चूर हो गया और उनकी काया पलट गयी। फिर काशीमें पैठणका ठाट बँधा। घाटोंपर एकनाथ महाराजके कीर्तन होने लगे और काशीके बड़े-बड़े विद्वान् भी कीर्तन सुनकर मुग्ध होने लगे। भागवतसमाप्तिके पश्चात् स्वामीजीने काशीके विद्वानोंसे यह अनुरोध किया कि 'इस अपूर्व ग्रन्थकी विजयके निमित्त यहाँ एक विजयोत्सव करना चाहिये।' कुछ अभिमानी पण्डितोंको यह बात बहुत बुरी लगी और उन्होंने स्वामीसे कहा, 'स्वामी आप यह क्या कर रहे हैं, एक तो नीच वाणीका श्रवण नहीं करना चाहिये, सो शास्त्रका निषेध न मानकर आपने किया। अब आप इसी दोषको आदरपूर्वक प्रतिष्ठित करना चाहते हैं यह बड़े अनर्थका लक्षण है।' (केशवकृत नाथ-चरित्र अ० २४—२६)। इन अभिमानी पण्डितोंके विचारोंमें मराठीभाषा नीच भाषा थी, और उसका सुननातक दोष था, पर स्वामीने ग्रन्थका उत्सव करनेका संकल्प नहीं त्यागा। उसके लिये बड़े उत्साहसे उद्योग करने लगे। इससे चिढ़कर कुछ पण्डितोंने इस ग्रन्थको मठसे उठाकर गंगामें डाल दिया। तब गंगादेवीने स्वयं इस ग्रन्थको अपने हाथों जलके ऊपर उठा रखा। यह चमत्कार देखकर उन पण्डितोंकी अक्ल ठिकाने आयी और शास्त्रके नामपर प्रलाप करना उन्होंने छोड़ दिया।

स्वामीने एकनाथ महाराजको हाथीपर बैठाकर जुलूस निकालनेका विचार किया था, पर एकनाथ महाराजने यह विनय की कि 'मैं ब्राह्मणोंका दासानुदास हूँ, आप केवल आत्म-कृपाकी आशासे भक्तिपूर्वक इस ग्रन्थका पूजन करें। इसीसे मुझे सन्तोष होगा।' (भक्त-लीलामृत २१—२३) स्वामीने फिर भी कहा कि ग्रन्थकी ही सवारी निकले, पर ग्रन्थके साथ आप भी हाथीपर बैठें। तब एकनाथ महाराजने स्पष्ट ही कहा, 'यह भी अनुचित है; मैं ऐसा नहीं करूँगा।' तब ग्रन्थ ही अंबारीमें रखा गया, उसका सर्वोपचार पूजन किया गया और जुलूस निकाला गया। इस समय बड़ा प्रचण्ड जनसमुदाय एकत्र हुआ था। चार दिन कीर्तनोत्सव हुआ। ब्राह्मण-भोजन हुए, अन्य प्रकारसे भी बहुत दान-धर्म हुआ। नाथ भागवतकी कितनी प्रतियाँ काशीमें भक्तोंने उतार लीं। इस प्रकार काशीमें जान-अजान सबसे अपने ग्रन्थका जय-जयकार कराकर और अपने सदाचारसे सबको सन्मार्गका चसका लगाकर एकनाथ महाराज पैठणमें लौट आये।

ग्रन्थ-विजयोत्सवके पश्चात् जब एकनाथ महाराज काशीसे पैठण लौट रहे थे तब रास्तेमें 'जोगाइचें आंबें' नामक स्थानमें दासोपन्तसे उनकी भेंट हुई। दासोपन्त भी बड़े दत्त-भक्त थे और भगवान् दत्तात्रेय उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया करते थे। बेदर-राजधानीके नारायणपेठमें गाल्वगोत्री दिगम्बरपन्त देशपाण्डे नामक एक सज्जन रहते थे। दासोपन्त उन्हींके पुत्र थे। शाके १४७३ में इनका जन्म हुआ था और शाके १५३७ में वयस्के ६४ वें वर्ष यह समाधिस्थ हुए। इन्होंने बचपनमें बड़ा तीव्र अनुष्ठान किया था। भक्त-लीलामृतमें इनका वर्णन किया है कि 'ये गलित पत्र भक्षण करके रहते थे, शरीरका कुछ भी मोह नहीं रखते थे। चट्टानोंपर

सोया करते थे और शीतोष्ण सहते थे।' इस प्रकार बारह वर्ष अनुष्ठान करनेके पश्चात् दासोपन्तको भगवान् दत्तात्रेयके दर्शन हुए और तबसे दासोपन्त दत्तराज-सखा कहलाने लगे। दासोपन्तका समग्र चरित्र यहाँ स्थान-संकोचसे नहीं दे सकते। इन्होंने श्रीमद्भगवद्गीतापर सवा लाख ओवियाँ लिखी हैं और अन्य छोटे-बड़े ४० ग्रन्थ लिखे हैं। इनके अतिरिक्त इनके ६-७ हजार फुटकर पद्य हैं। मराठीभाषामें दासोपन्तकी जितनी ग्रन्थ-सम्पत्ति किसी दूसरे कविकी नहीं है। कहते हैं, एकनाथका यशोविस्तार देखकर दासोपन्त उनसे ईर्ष्या करने लगे थे, इससे भगवान् दत्तात्रेयने इन्हें शाप दिया और इसीसे इनके ग्रन्थ उतने नहीं चमके। नीलोबारायने भी एकनाथका वर्णन करते हुए दासोपन्तके विषयमें लिखा है कि एकनाथके द्वारपर भगवान्को चोपदारके वेशमें जब दासोपन्तने देखा तब उनका 'अभिमान' नष्ट हुआ। इससे भी यह मालूम होता है कि ईर्ष्यावाली बातके मूलमें कुछ है। जो हो, पीछे एकनाथ महाराजके विषयमें उनका मन अत्यन्त निर्मल हुआ और उन्होंने उनकी स्तुतिमें पद्य भी लिखे। एक पद्यमें उन्होंने भी यह लिखा है कि भगवान् एकनाथके द्वारपाल बने, इस चमत्कारने दासोपन्तको चकित कर दिया। दासोपन्तको इस बातका अभिमान था कि भगवान्का मुझे साक्षात्कार हुआ। भगवान् एकनाथ महाराजके यहाँ द्वारपाल बन खड़े हुए। इससे उनका यह अभिमान गलित हुआ। जो कुछ हो, पर इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि इस दत्त-भक्तका यह अभिमान कुछ काल बाद नष्ट हुआ और यह तथा एकनाथ समान पदारुढ़ हुए। एकनाथ और यह जब पहली बार मिले तब वह अल्पवयस्क थे। उस समय और उसके बाद ये दोनों दत्तोपासक सन्त कवि अनेक बार एक-दूसरेसे मिले हैं

और दोनोंकी एकान्तमें बहुत बातें हुई हैं।

इस घटनाके कुछ वर्ष पश्चात् एकनाथ महाराजकी इच्छा हुई कि पण्ढरीकी यात्रा करें। नाथसे शिक्षा पाये हुए उद्धवने उस शिक्षाके अनुसार सब काम सँभालना स्वीकार किया और एकनाथ महाराज बड़े ठाटसे पण्ढरीकी यात्राको चले। आसपासके सैकड़ों भक्त उनके साथ हो लिये। एक तो एकनाथ महाराजका सत्संग और दूसरे भगवान् पाण्डुरंगके दर्शन, इस अपूर्व योगसे समुत्साहित होकर मार्गमें अनेक भक्त उनके साथ आ गये। इन भक्तोंकी संख्या बराबर बढ़ती ही गयी, यहाँतक कि जब एकनाथ पण्ढरपुरके समीप पहुँचे तब उनके पीछे मानो जनसमुद्र ही उमड़ा चला आता था। मार्गमें बराबर विट्ठल-भजन हो रहा था। चारों ओर झण्डापताकाओंका समूह दिखायी देता था। पण्ढरपुरके समीप पहुँचते ही पण्ढरपुरके सहस्रों मनुष्य उनकी अगवानीके लिये आये और गाते-बजाते बड़े ठाटसे एकनाथ महाराजको बस्तीमें ले गये, चन्द्रभागामें स्नान, पुण्डरीकके दर्शन, ग्रामकी परिक्रमा यह सब एकनाथ महाराजने यथासांग किया। श्रीविट्ठलका श्याम सगुणरूप एकनाथके हृदयमें सदा खेला ही करता था, पर जो अंदर था उसीको बाहर देखकर उनके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ पड़ा। गरुड़पारके सामने उनके चार कीर्तन हुए। एक दिन कीर्तनमें भानुदासका प्रसंग छिड़ा। उस समय भक्तिके आनन्दकी मानो वर्षा होने लगी। एकनाथका जिन्होंने केवल सुनाम सुना था, आज उनके नेत्र और श्रवण दोनों कृतार्थ हुए। भानुदासका प्रेमपूर्ण चरित्र उन्हींके परपोतेसे सुनकर श्रोताओंकी चित्त-वृत्ति तल्लीन हो गयी।

पण्ढरीनाथ भगवान् श्रीविट्ठलका कीर्तन करते हुए एकनाथ

महाराजके मुखसे सैकड़ों प्रासादिक अभंग आप ही निकल पड़े। उनमेंसे कुछका भावार्थ नीचे देते हैं—

(१)

'इस महान् क्षेत्रकी रचना देखी। देखा, साक्षात् भू वैकुण्ठ है। तीर्थों और देवताओंका ऐसा सर्वोत्तम समागम और कहीं भी नहीं है। पण्ढरी-जैसा तीर्थ इस भूलोकमें क्या, त्रिलोकमें भी मुझे नहीं दिखायी देता; क्योंकि यहाँ श्रीविट्ठलमूर्तिके दर्शन करते ही सद्गुरु श्रीजनार्दन-धाममें सुखपूर्वक विश्रान्ति मिली।'

(२)

'बड़ी आशा लेकर यहाँतक आये। पण्ढरी देखते ही पावन हो गये। गरुड़ध्वजको देखते ही इस जन्मका कार्य सफल हो गया। भीमातटपर श्रीविट्ठलमूर्ति देखकर एकाजर्नादनमें विश्रान्ति मिल गयी।'

(३)

'अनन्तके गुण अपार-अनन्त हैं। श्रुति-शास्त्र भी उनका पार नहीं जानते। वह अनन्तभगवान् यहाँ ईंटपर खड़े हैं, कटिपर हाथ रखे हैं और करुणा-दृष्टिसे भक्तोंकी ओर देख रहे हैं।'

(४)

'विट्ठल-नाम खुला मन्त्र है, वाणीसे सदा इस नामको जपो। इससे अनन्त जन्मोंके दोष निकल जायँगे। संसारमें जो आये हो तो निरन्तर विट्ठल-नाम लेनेमें जरा भी आलस्य मत करो। इससे साधन सधेंगे, भव-बन्धन टूटेंगे। विट्ठल-नामका जप करो। एकनाथ जनार्दनमें रहकर उठते-बैठते, सोते-जागते, रात-दिन विट्ठल-नामका जप करता है।'

(५)

'प्रेमसे हरिनाम गाओ। प्रेमसे कीर्तन-रंगमें मस्त होकर

नाचो। इससे तरोगे, तरोगे, संसारसे तर जाओगे। इसमें कोई और दूसरी बात नहीं है। एकाजनार्दनकी भक्तिका यह निजधाम है। इससे क्षणमात्रमें तर जाओगे।'

शाके १५०४ में एकनाथ महाराज आलंदी पधारे। एक दिन महाराजके गलेमें सूजन आ गयी और पीड़ा होने लगी। बहुत-सी दवाएँ की गयीं पर सूजन कम न हुई। तीसरे दिन स्वप्नमें ज्ञानेश्वर महाराजने दर्शन देकर उनसे कहा, 'मेरे गलेमें अंजानवृक्षकी* जड़का फंदा पड़ा हुआ है। उसे तुम स्वयं यहाँ आकर दूर करो। इससे तुम्हारे गलेकी पीड़ा दूर होगी।' तब साथमें भक्त-समुदायको लेकर कीर्तन करते हुए एकनाथ महाराज आलंदी पहुँचे।

नाथ आलंदी पहुँचे तब वहाँ बस्ती नहीं थी। चारों ओर घनी झाड़ियाँ थीं, लोग अंदर जाते डरते थे। आलंदीमें श्रीसिद्धेश्वरका स्थान अत्यन्त प्राचीन है। वहाँ उस समय दिव्य तपोवन था। साथके लोगोंको बाहर ही बैठाकर ज्ञानेश्वर महाराजकी समाधिकी खोज करने एकनाथ महाराज अकेले ही उस वनमें घुसे। समाधिके समीप अजानवृक्ष था। दूरसे उसे उन्होंने देखा। तब उन्हें बड़ा ही आनन्द हुआ। समाधि मन्दिरका द्वार खोलकर वह अंदर गये। 'सहज वज्रासन लगाकर वहाँ ज्ञानदेव महाराज विराज रहे हैं। ऐसा तेज:पुंज दिव्य स्वरूप कि जिसकी कोई उपमा नहीं।' (भक्तविजय, अ० ४६—१६७) श्रीज्ञानेश्वरके दर्शन होते ही एकनाथ उनके चरणोंपर लोट गये। केशवकृत नाथ-चरित्रमें लिखा है कि वहाँ ज्ञानेश्वर महाराजके साथ एकनाथ महाराज तीन दिन और तीन रात एकान्तमें रहे। इस एकान्तमें कैसा ब्रह्मानन्द-

* ज्ञानेश्वर महाराजकी समाधिपर जो अजान नामक अश्वत्थवृक्ष है, वह ज्ञानेश्वर महाराजका ही लगाया हुआ बताया जाता है।

समुद्र उमड़ा होगा, उसकी कल्पना विषयपंकके दादुर हम पामर जन क्या कर सकते हैं? एक तो एकनाथ स्वयं ही पूर्ण-पुरुष थे। दूसरे, अजानवृक्षकी जड़ मस्तकमें लगनेके मिससे श्रीज्ञानेश्वर महाराजने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया और यह आज्ञा भी दी कि ज्ञानेश्वरीका प्रचार करो। नाथ जब समाधि-मन्दिरके बाहर आ गये तब लोगोंने उसका प्रवेशद्वार फिर पत्थर लगाकर चूनेसे बंद कर दिया। यह घटना शाके १५०५ के ज्येष्ठमासमें हुई। आलन्दीमें नाथ एकादशीतक रहे। उस दिन उन्होंने कीर्तन किया। नाथके साथ बहुत लोग थे। सबके लिये सीधा-पानीका प्रबन्ध करना बड़ा कठिन हुआ, तब यह माया देखिये, कि भगवान्ने एक लिंगायतके वेशमें आकर खीमा गाड़कर वहाँ एक दूकान खोल दी। द्वादशीके दिन जिसको जितना सीधा जरूरी हुआ उतना उसे उस दूकानसे मिल गया। दाम किसीको भी नहीं देना पड़ा। उस दूकानदारने किसीसे दाम लिया ही नहीं, कहा कि 'एकनाथ समर्थ हैं, उनसे हम सब हिसाब समझ लेंगे।' जब एकनाथ सब लोगोंके साथ वहाँसे चलनेको हुए तब वह लिंगायत अकस्मात् अन्तर्धान हो गया। इस घटनाका वर्णन स्वयं एकनाथ महाराजने दो अभंगोंमें किया है। आलन्दीमें ही रहते हुए एकनाथने चारों भाई-बहनपर अभंग रचे और आलन्दीकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा कि 'यहाँके वृक्ष-पाषाण सभी देवता हैं।' इस स्थानके माहात्म्यके सम्बन्धमें एकनाथ महाराजने स्पष्ट ही कहा है कि 'अजानवृक्षके पत्ते खाकर आलन्दीमें बैठकर जो इक्कीस बार ज्ञानेश्वरीका पारायण करेगा उसे सद्यः ज्ञान प्राप्त होगा।'

नाथ जब पैठणमें लौट आये तब आते ही उन्होंने ज्ञानेश्वरीके

संशोधनका काम आरम्भ कर दिया। लेखकों और पाठकोंकी भूलसे जो कई अशुद्ध और असंबद्ध पाठ घुस गये थे, उन्हें उन्होंने निकाल दिया और ज्ञानेश्वरीकी शुद्ध पोथी तैयार कर दी। ज्ञानेश्वरीके संशोधनका यह कार्य शाके १५०६ तारणनाम संवत्सरमें समाप्त हुआ। एकनाथ महाराजके समयमें ही पैठणमें मौलाना रून नामके एक मुसलमान औलिया थे। वे बड़े विरक्त, ज्ञानी और स्वानुभवसम्पन्न महात्मा थे। एक दिन एकनाथ महाराज सन्ध्यासमय मसजिदके पाससे होकर जा रहे थे तब उन्होंने इस औलियाको देखा। वह एक शालमें धज्जियाँ लगा रहा था। एकनाथने उनसे पूछा, यह आप क्या कर रहे हैं? उसने उत्तर दिया, मैंने सुना है कि 'एकनाथ ज्ञानेश्वरीमें रद्दोबदल करके कुछ अपनी बनायी ओवियाँ उसमें जोड़नेवाले हैं। मैं इस शालमें धज्जियाँ लगाकर यह देख रहा हूँ कि वह ज्ञानेश्वरी कैसी होगी?' यह सुनते ही एकनाथ महाराजने अपना वह संकल्प त्याग दिया और सबके लिये यह निर्बन्ध लगाया कि ज्ञानेश्वरीकी दिव्य वाणीमें कोई भी अपने शब्द मिलानेका प्रयत्न न करें। भक्तकथामृतसारमें यह कथा दी हुई है और कहते हैं कि इन औलिया मौलाना रूनके लिखे किसी उर्दू-ग्रन्थमें भी दी हुई है।

एकनाथ महाराजका अन्तिम ग्रन्थ भावार्थरामायण है। यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है। और इस ग्रन्थके इतिहासके साथ एकनाथके पागल-से शिष्य गावबाका भी कुछ हाल बतलाना जरूरी है। रामायणके भी अन्य रामायणोंके समान सात काण्ड हैं। इसके पहले पाँच काण्ड और युद्धकाण्डके ४४ अध्याय एकनाथ महाराजके लिखे हुए हैं। युद्धकाण्डके बादके अध्याय और सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड गावबाका लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ भी

प्रधानतः आध्यात्मिक है। अध्यात्मरामायणमें इतिहासका अंश कम है, पर इस भावार्थरामायणमें एकनाथ महाराजने अनेक ग्रन्थोंके आधारपर ऐतिहासिक वर्णन भी भरपूर किया है और वह सम्पूर्ण वर्णन अध्यात्म-तन्तुओंसे बुना हुआ है। रामकथा और ब्रह्मकथा अथवा इतिहास और अध्यात्म दोनोंका एक साथ लाभ इस ग्रन्थके पाठसे होता है। वाल्मीकिरामायण, आनन्दरामायण, योगवासिष्ठ आदि संस्कृतग्रन्थोंसे एकनाथ महाराजने इसमें अनेक आधार-प्रसंग लिये हैं, पर ग्रन्थरचनाकी शैली और शान निराली है। इस रामायणमें पद-पदपर अध्यात्मविचारोंकी और नाथ महाराजके ग्रन्थोंमें विशेषरूपसे दिखायी देनेवाले रूपकोंकी भरमार होनेसे रामचरित्र और ब्रह्मज्ञान मानो काव्यके मनोहर उद्यानमें एक-दूसरेसे गले मिले हैं। प्रत्येक कथा अध्यात्म-लक्ष्यकी दृष्टिसे लिखी हुई है। कोई भी परोपकाररत जगदुद्धार कर्म करनेवाला ब्रह्मनिष्ठ पुरुष जैसा रामायण बखान सकता है वैसा ही यह रामायण है। वर्णन अत्यन्त सरस और हृदयग्राही तथा प्रासादिक है। भगवान् रामचन्द्रकी कथा और परमार्थ दोनोंके एक साथ दर्शन करनेकी जिसे लालसा हो उसके लिये भावार्थरामायण-जैसा दूसरा ग्रन्थ नहीं है। यह ग्रन्थ अवश्य ही एकनाथ महाराजके हाथों पूर्ण नहीं हुआ पर उन्हींकी आज्ञा और लोगोंके आग्रहसे उन्हींके शिष्य गावबाने इसे पूर्ण किया। यह ग्रन्थ लिखनेकी स्फूर्ति एकनाथ महाराजको कैसे हुई और यह ग्रन्थ उन्होंने कैसे लिखा इस सम्बन्धमें एकनाथ महाराजने स्वयं ही इसी ग्रन्थके चौथे अध्यायमें अपना अनुभव यों लिखा है—

'तुम (इस रामायणके) वक्ता कैसे बन गये? यदि कोई यह पूछे तो जो बात जैसी है वह भी कह देता हूँ। श्रोता सावधान

होकर सुनें। मूल (रामायण) जिस संस्कृत-भाषामें है उससे मैं बिलकुल कोरा हूँ। मूर्खताके सिवाय मेरे पास और क्या है? ऐसे इस मूर्खके मुखसे भगवान् रामने ही यह कथा कहलायी है। उन्होंने प्रेरणा की (रामायण लिखनेकी) पर मैंने (लिखनेका साहस) नहीं किया। तब स्वप्नमें आकर भगवान्ने रामायण कही और ग्रन्थका पूरा रहस्य बता दिया। जागनेपर रामकथा सामने प्रकाशमान हुई। कोई बात दुश्चित्त होकर मैं कुछ-की-कुछ समझता तो राम उसे ठीक कर देते। फालतू बातें करते हुए भी उनमेंसे रामकी कथा उठने लगी। रामने ऐसा पीछा किया कि रामायणमें दृष्टि गड़ गयी। ऐसी अवस्थामें भी मैंने यही सोचा कि रामायण न लिखूँ पर राम अहंकारके सिरपर सवार हुए और उन्होंने अपनी सत्तासे जबर्दस्ती अपनी कथा मुझसे कहलवायी।'

इस तरह राम किसीसे जबर्दस्ती लिखवावें, ऐसा अवसर ऐसे ही किसी ग्रन्थकारको प्राप्त होता होगा। जागते हुए रामकथा सामने प्रकट हो, स्वप्नमें रामचरित्र सामने नृत्य करे, फालतू बातोंमेंसे भी रामकथा ही ऊपर उठे, इस प्रकार रामने एकनाथका पीछा किया और उनकी दृष्टि ही रामायणमय कर दी। तथापि एकनाथ कहते हैं कि मेरी जिद्द यही रही कि मैं रामायण न लिखूँ तब राम ही मेरे मैंपनपर चढ़ बैठे। मैंपन फिर कहाँ रहा? वहाँ राम आ गये! इस तरह जबर्दस्ती यह कथा उन्होंने एकनाथसे कहलवायी। इस जबर्दस्तीकी फरियाद एकनाथ कहाँ किस अदालतमें ले जाते? रामसे बढ़कर कोई न्यायालय नहीं! इसलिये इन्होंने रामायण लिखना मंजूर किया; पर रामसे एक शर्त करा ली। उन्होंने रामसे कहा, 'जब तुम्हारी ऐसी जबर्दस्ती है तब यह समझ लेना कि इस कथामें जो कोई दूषण या भूषण हो, उसके

जिम्मेदार तुम हो, मैं नहीं; मुझसे उसका कोई लगाव नहीं! कर्ता मैं नहीं, स्वयं श्रीराम जब कर्ता हो गये जब मेरा मैंपन वह खुद हो गया तब मेरा तो कुछ भी न रहा। इस ग्रन्थकी चाहे कोई निन्दा करे, चाहे कोई इसे वन्दन करे, दोनों ही हमारे लिये ब्रह्ममूर्ति हैं। यह श्रीगुरु जनार्दनकी बतायी युक्ति है......।' यह कहकर एकनाथ महाराजने मानो यहाँ यह भी व्यक्त कर दिया कि मैं किसी कच्चे गुरुका चेला नहीं हूँ।

एकनाथ महाराजका यह भावार्थरामायण जब युद्धकाण्डके ४४ वें अध्यायतक लिखा जा चुका, तब उनके महाप्रस्थानका समय उपस्थित हुआ। श्रोताओंको इस बातका बड़ा दुःख हुआ कि ग्रन्थ अधूरा ही रह जायगा। कृष्णदास नामक एक रामायण लेखक एक बार एकनाथ महाराजके पास आये थे, उनका युद्धकाण्ड समाप्त होनेमें ११ दिनकी मोहलत चाहिये थी और मृत्यु सिरपर थी। एकनाथ महाराजने उनकी मृत्युका समय ११ दिन और आगे बढ़वा दिया और उनका ग्रन्थ पूरा कराया। श्रोताओंको यह बात मालूम थी। इसका उन्होंने एकनाथ महाराजको स्मरण दिलाया और भावार्थरामायण लिखकर समाप्त होनेतक अपना देहावसानकाल आगे बढ़ानेकी सिफारिश की। पर एकनाथ महाराजने कालवंचना करनेसे इन्कार किया। रामायण लिखना आरम्भ करते हुए उन्होंने कोई मैंपन नहीं रखा तो फिर उसे पूर्ण करनेकी चिन्ता उन्हें क्यों होती? उन्होंने कहा कि कालको दण्डित करके ग्रन्थ समाप्त करनेका कोई कारण नहीं है। फिर भी बहुतोंने बहुत आग्रह किया कि ग्रन्थ तो सम्पूर्ण होना ही चाहिये तब एकनाथ महाराजने गावबाको अपने सामने बुलवाया और उसे ग्रन्थ पूर्ण करनेकी आज्ञा दी। गावबा एकनाथ महाराजके यहाँ ही रहता था, उन्हींका

एक शिष्य था, लोग उसे मूर्ख और नीम-पागल समझते थे। उससे गायत्रीमन्त्रका ठीक उच्चारणतक नहीं हो सकता था। इसलिये एकनाथ महाराजने जब उससे ग्रन्थ पूर्ण करनेको कहा तब लोगोंने यह समझा कि महाराज विनोद कर रहे हैं। इसे पूरण-पूरी नामक पक्वान्न खानेकी बड़ी चाट थी। बचपनमें एक दिनकी बात है कि यह अपनी माँसे बड़ी जिद्द करने लगा कि हमें आज पूरण-पूरी खिलाओ। माँने इससे कहा—'जाओ पैठणमें, वहाँ एकनाथ साधु रहते हैं, उनके यहाँ जाकर रहो तो रोज तुमको पूरण-पूरी मिला करेगी।' यह सुनते ही लड़का वहाँसे उठा, रास्ता चलकर पैठण पहुँचा और वहाँ एकनाथ महाराजके घर गया। एकनाथ महाराजने गिरिजाबाईसे कहा कि हरि पण्डितकी तरह इसको भी सँभालो। तबसे यह १५ वर्ष एकनाथ महाराजके ही घर था। जब इसे एकनाथ महाराज मन्त्रोपदेश करने लगे तब इसने कहा कि यह सब हमको मत बताइये, हम तो 'एकनाथ' इस एक नामको छोड़कर और कोई नाम नहीं जपेंगे। नाथके घर रहते हुए यह कथा-कीर्तन सुना करता और जो काम करनेको कहा जाता वह किया करता था और सदा मगन रहता था। जो काम करता वह दक्षताके साथ करता था। ऐसा जाहिल और नीम-पागल-सा आदमी सत्संगसे ऐसा बना कि मरण-शय्यापर एकनाथ महाराजने जब उससे भावार्थरामायण आगे तैयार करनेको कहा तो उसने उसी समय ४५ वाँ अध्याय तैयार कर दिखाया और एकनाथ महाराजके प्रयाणके पश्चात् शेष भाग भी पूरा करके भावार्थरामायण सम्पूर्ण किया।

अन्तिम

बड़े वैभववाले, बड़ी आयुवाले, बड़ी महिमावाले आखिर चले गये मृत्युपन्थमें ही। सब चले गये पर एक ही रहे वही जो स्वरूपाकार हुए—आत्मज्ञानी हुए। —दासबोध द० ३ सं० ९

एकनाथ और गिरिजाबाईके तीन सन्तान हुए। प्रथम सन्तान गोदावरी नाम्नी कन्या हुई, उसके बाद हरि नामक पुत्र हुआ और अन्तमें गंगा नाम्नी फिर कन्या हुई। गोदावरीका विवाह पैठणमें ही चितोपन्त नामक विद्वान् और शीलवान् गृहस्थके साथ हुआ। चितोपन्त पहले कुछ विषयासक्त थे, पर पीछे नाथ-सत्संगसे सुधर गये और दत्तात्रेयकी भक्ति करने लगे। गोदावरीका ससुरालमें रखा नाम गंगा था और नाथ उसे बचपनसे लीलासे 'लीला' कहा करते थे। चितोपन्तका दूसरा नाम विश्वम्भर था इन्हीं लीला और विश्वम्भरके पुत्र सुप्रसिद्ध कवि मुक्तेश्वर हुए। अर्थात् मुक्तेश्वर एकनाथके दौहित्र थे। इन्होंने जो भारतग्रन्थ लिखा उसमें 'मातृजनक जनार्दनमें एकनाथ' कहकर एकनाथका वन्दन किया है। इनका उपनाम मुद्‍गल, गोत्र अत्रि और शाखा ऋग्वेदान्तर्गत आश्वलायन थी। मुक्तेश्वरकी कविता सर्वत्र विख्यात हुई, इन्होंने रामायण, भारत और भागवतपर ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थोंमें लीलाविश्वम्भरका बार-बार स्मरण कर, इन्होंने माता-पिताको वन्दन किया है। अपना उल्लेख भी इन्होंने 'मुद्‍गलचिन्तामणिसुत लीला-विश्वम्भर जगविख्यात' कहकर किया है। मुद्‍गलोंके कुलदेव कोल्हापुरकी जगदम्बा और सोनारीके भैरवनाथ हैं। मुक्तेश्वरको उनके पितासे ही दत्तोपासनाकी दीक्षा मिली थी।

मुक्तेश्वर जन्मतः मूक थे, उनकी ओर देखकर लीलावती दुःखसे रोया करती थी। एक बार वह पितासे हठ ठान बैठी।

तब एकनाथ महाराजने मूक मुक्तेश्वरके मस्तकपर हाथ रखकर उसकी वाणी खोल दी और यह असीस दी कि 'यह महाकवि होगा।' '**मूकं करोति वाचालम्**' जैसा सहज सामर्थ्य इन महात्माके अन्दर था। इस प्रकार अपने त्रिभुवनविजयी पिताके द्वारा अपना हठ पूरा हुआ देखकर लीलावतीको अपार आनन्द हुआ। मुक्तेश्वरको बचपनमें एकनाथ महाराजका सत्संग बहुत कुछ प्राप्त हुआ। आगे चलकर मुक्तेश्वर बहुत बड़े प्रासादिक कवि और दत्तोपासक हुए। उनकी बनायी अनेक आरतियों और कविताओंमें एकनाथके विषयमें उनका पूज्यभाव व्यक्त हुआ है। चिन्तामणि मुद्गलकी समाधि पैठणमें एकनाथ महाराजके घरके समीप ही है और वहाँ 'नाथके जामाताकी समाधि' के नामसे प्रसिद्ध है। मुक्तेश्वर कुरुंदवाडके समीप पंचगंगाके तटपर तेरवाड गाँवमें समाधिस्थ हुए। इनके परपोते मुक्तेश्वर बाबाके नामसे प्रसिद्ध हुए, इन्हें कोल्हापुरके शम्भुछत्रपतिने शाके १६४९ में एक और फिर शाके १६८० में दूसरी, इस प्रकार दो सनदें तेरवाड गाँव इनामकी दी हैं। तेरवाडके वर्तमान जागीरदार लीला-विश्वम्भरसुत मुक्तेश्वरके वंशज हैं। एकनाथ महाराजकी प्रथम कन्याके सम्बन्धमें यह संक्षिप्त विवरण हुआ। उनकी दूसरी कन्या गंगा कर्णाटकमें ब्याही थी, उनके पुण्डाजी-नामक पुत्र हुआ। इससे अधिक इनके सम्बन्धमें और कोई विवरण नहीं मिला। अब एकनाथ महाराजके पुत्र हरि पण्डितकी ओर चलें।

श्रीहरि पण्डित बड़े विद्वान् और बुद्धिमान् थे। अल्प वयस्में ही इन्होंने छओं शास्त्रोंका अध्ययन पूरा किया और विद्वन्मान्य हुए। इन्हें एकनाथ महाराजका ढंग पसन्द नहीं था। इन्हें संस्कृत-भाषाका बड़ा अभिमान था और इनके पिता जो मराठीमें ग्रन्थ लिखते, मराठीमें ही कीर्तन और प्रवचन करते तथा प्राकृतजनोंका

ही संग-साथ करते, यह बात इन्हें गौरवजनक नहीं मालूम होती थी। एकनाथ महाराज उनसे पूछते कि 'संस्कृतवाणी तो देवताओंने निर्माण की, पर प्राकृतको क्या दस्युओंने पैदा किया?' वह इन्हें समझाते कि 'भगवान्‌को वाणीका कोई अभिमान नहीं है, संस्कृत हो या प्राकृत, दोनों उनके लिये समान हैं; हाँ, जिस वाणीसे ब्रह्मकथन होता है, वह उसीसे सन्तुष्ट होते हैं।' प्राकृतजनोंके उद्धारार्थ जो ग्रन्थ लिखे जायँ और जो कथानिरूपण, व्याख्यान हों वे प्राकृतमें ही होने चाहिये, यह बात उन्होंने अपने भागवत-ग्रन्थमें अनेक स्थानोंमें लिखी है। हरि पण्डित संस्कृत-भाषाके अभिमानसे प्राकृतको तुच्छ बतावें तब एकनाथ महाराज ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव आदि ग्रन्थ उनके सामने रखकर उनसे पूछते थे कि अच्छा तो यह बताओ कि ये ग्रन्थ संस्कृत-भाषाके ग्रन्थोंसे किस बातमें कम हैं? नाथ संस्कृतका पूर्ण आदर करते थे, पर मराठी-भाषासे भी उनका आत्यन्तिक प्रेम था। उनका सिद्धान्त यह था कि जिस वाणीमें हरिकथाप्रेम है वही वाणी सरस है। वह सच्चे भागवत, पूर्ण अनुभवी और हरिप्रेमानन्दका अखण्ड भोग करनेवाले भक्त थे। नाथभागवत (अ० २—३२३) में उन्होंने कहा है कि—

प्रेमेंवीण श्रुति स्मृति ज्ञान। प्रेमेंवीण ध्यान पूजन।
प्रेमेंवीण श्रवण कीर्तन। वृथा जाण नृपनाथा॥

'प्रेमके बिना श्रुति, स्मृति, ज्ञान, ध्यान, पूजन, श्रवण-कीर्तन सब व्यर्थ है।' आत्मज्ञान उन्हें पूर्ण था। अखण्ड ब्रह्मानुभवमें ही वह रहते थे, केवल ब्रह्ममायावादका कोलाहल करनेवाले रूखे-सूखे वेदान्ती नहीं थे। श्रीज्ञानेश्वर महाराजके समान ज्ञानी और भक्त थे, ज्ञान और भक्ति उनमें एकरूप थे। उन्होंने भक्ति-प्रेमानन्द केवल हृदयमें ही बटोरकर नहीं रखा था। प्रत्युत उस आनन्दसे उन्होंने अखिल विश्वको आनन्दमय कर डाला। वह

यह देखते थे कि प्रेममूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण जैसे भीतर विराज रहे हैं वैसे ही बाहर भी सर्वत्र क्रीड़ा कर रहे हैं। उनके चित्तमें ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्रका कोई भेद-भाव नहीं था। हरि पण्डित वर्णाश्रमके पूर्ण अभिमानी, कर्मठ और केवल पण्डित थे। एकनाथका हृदयाकाश व्यापक और स्वपरभेदशून्य था। एकनाथ महाभक्तके नाते सहस्रों जनोंको अत्यन्त प्रिय थे और हरि पण्डित भी पैठणके विद्वानों और कर्मठ ब्राह्मणोंके प्रिय थे। हरि पण्डित भी शीलवान् और पितृभक्त थे, तथापि पिताके विचारोंसे सहमत न होनेके कारण वह अपनी सहधर्मिणी तथा अपने प्रह्लाद और मेघश्याम नामक दो पुत्रोंको साथ ले अपने विचारोंके अनुकूल क्षेत्र जान काशी चले गये। राघव नामक उनका पुत्र घर ही एकनाथ महाराजके साथ रहा। राघव बचपनसे ही अपने दादाकी ही बात मानता था, उन्हींके कहे अनुसार चलता था और एकनाथ महाराज जब कीर्तन करते तब राघव उनके पीछे खड़ा रहकर ध्रुपद अलापता था। एकनाथ महाराजसे उसका बड़ा स्नेह था। हरि पण्डित काशी पहुँचते ही वहाँके विद्वानोंमें सर्वमान्य हुए। वहाँ उन्हें रहनेके लिये एक घर भी मिल गया और काशीमें उनकी अच्छी धाक जमी। चार वर्ष इस प्रकार बीतनेपर हरि पण्डितको समझानेके लिये एकनाथ महाराज स्वयं काशी गये। हरि पण्डितने उनका बड़ा आदर किया। एकनाथ महाराज कुछ दिन वहाँ रहे। इसके पश्चात् हरि पण्डितने दो शर्तोंपर पैठण चलना स्वीकार किया। एक तो यह कि एकनाथ महाराज महाराष्ट्रग्रन्थोंपर प्रवचन न करें और दूसरे परान्न ग्रहण न करें। एकनाथ महाराजने इन दोनों शर्तोंको मंजूर किया। तब हरि पण्डित उनके साथ पैठण गये। पैठणमें अब एकनाथ महाराजके बदले हरि पण्डितके प्रवचन होने लगे। एकनाथ महाराज जो अब

वृद्ध हो गये, पुत्रके मुखसे प्रवचन सुननेके लिये श्रोताओंमें बैठ जाते थे। हरि पण्डित विद्वान् तो बहुत बड़े थे, पर एकनाथके प्रवचनके समय, जहाँ श्रोताओंकी इतनी भीड़ होती थी कि तिल धरनेकी जगह न मिलती वहाँ अब कुछ शास्त्री पण्डित ही दिखायी देते थे। यह हरि पण्डितने भी देखा और सोचने लगे कि यह क्या बात है जो पिताजीको जहाँ लोग सोलह आना पूजते हैं वहाँ मुझे दो आना भी नसीब नहीं होता। एकनाथ महाराजके दर्शनोंके लिये अब भी सहस्रों भक्त नित्य उनके पास आया करते थे। एकनाथ महाराजका घर भगवान्‌का मन्दिर हो गया था।

हरि पण्डितका हृदय अब कुछ नरम होने लगा। यह एकनाथ महाराज ताड़ गये और उन्होंने मनमें यह विचारा कि अब इसे अहंकारके ब्रह्मपिशाचसे छुड़ाना चाहिये। पैठणमें एक स्त्रीने कभी एक बार सहस्र ब्राह्मण-भोजन करानेका संकल्प किया था, कालगतिसे उसका पति मर गया, घरमें जो कुछ सम्पत्ति थी वह भी नष्ट हो गयी और ऐसा समय आया कि उसे पेटके लिये लोगोंके यहाँ पानी भरनेका धन्धा करना पड़ा। पर इस हालतमें भी उसकी यह इच्छा थी कि सहस्र ब्राह्मण-भोजनका जो संकल्प किया है वह पूरा हो, पर यह नहीं समझमें आता था कि कैसे पूरा हो। एक विचक्षण पण्डित थे, उन्होंने उसे यह सलाह दी कि 'एक ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणको भोजन करा दो, इससे सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करानेका पुण्य लाभ होगा। ऐसा ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण एकनाथके सिवाय और कौन हो सकता है?' उसने एकनाथको भोजनके लिये बुलानेका निश्चय किया। वह उनके पास गयी और विनती करने लगी। उसका शुद्ध संकल्प, विनय और आग्रह देखकर तथा हरि पण्डितका अभिमान चूर करनेका यह सुअवसर जानकर उन्होंने भोजनका निमन्त्रण स्वीकार किया और रसोई बनानेके लिये स्वयं हरि

पण्डितको उसके घर भेजा। हरि पण्डित गये, अपने हाथसे उन्होंने रसोई बनायी और एकनाथ महाराजको स्वयं परोसकर भोजन कराया। उस स्त्रीको बड़ा आनन्द हुआ। घर लौटते हुए एकनाथ महाराजने हरि पण्डितसे कहा कि जूठी पत्तल भी तुम्हीं उठाकर फेंक दो। हरि पण्डित पिताकी आज्ञासे ज्यों पत्तल उठाने लगे तो क्या हुआ कि एक पत्तलके नीचे दूसरी पत्तल, दूसरीके नीचे तीसरी इस तरह एकनाथने जिस पत्तलपर भोजन किया था उसके नीचे एक हजार पत्तलें निकलीं! एक सहस्र ब्राह्मण-भोजनका संकल्प इस तरह दैवी दयाके चमत्कारसे पूरा हुआ देखकर उस स्त्रीके आनन्दकी कोई सीमा न रही और हरि पण्डितका गर्व भी चूर-चूर हो गया। वह पिताकी शरणमें गये और तबसे उन्होंने पित्राज्ञाको ही शास्त्राज्ञा मानकर चलना स्वीकार किया। एकनाथ महाराजपर उनके जो आक्षेप थे वे जहाँ-के-तहाँ नष्ट हो गये और उनका अहंकार भी लीन हो गया। वह नाथके कृपापात्र हुए। उन्हें शास्त्रज्ञानका जो अभिमान था वह नष्ट हो गया और एकनाथ महाराजको जो वह अपने-जैसा ही एक मनुष्य समझते थे सो अब उन्हें यह विश्वास हो गया कि यह ईश्वरकी विभूति हैं। हरि पण्डित अब केवल पिताकी आज्ञाके अंकित हो गये। बहुत समय बीत चुका था कि नाथका कीर्तन या प्रवचन लोगोंने नहीं सुना। लोग उस अमृतवाणीको फिरसे सुननेके लिये बड़े ही उत्सुक हो रहे थे। एकनाथ महाराजके कीर्तन-प्रवचन फिर आरम्भ हुए और उनसे पैठण साक्षात् भूवैकुण्ठ हो गया।

नाथ अब बहुत वृद्ध हो गये थे। पिता-पुत्रका जबसे मेल हुआ तबसे घरमें कोई विरोध न रह गया। नाथसे द्वेष करनेवाले बहुत-से तो ठंडे हो गये और बहुतोंने उनका अधिकार देखकर तथा उनकी यशो-दुन्दुभीका दिगन्त-व्यापी नाद सुनकर अपने-आपको

ही धिक्कारा! सहस्त्ररश्मि सूर्यनारायणके सामने नक्षत्रोंका तेज ही क्या? उसी न्यायसे एकनाथके सामने सब शास्त्री पण्डित विनम्र हो गये। शाके १५२१ (संवत् १६५६) का फाल्गुनमास आया। एकनाथ महाराजने कह दिया कि अब शीघ्र ही यह चोला छोड़ देना है। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी उन्हें संसारका कोई बन्धन नहीं था, चारों दिशाओंसे लोग उनके दर्शनोंके लिये आने लगे। एकनाथ महाराजके कीर्तन हुए, नाम-सप्ताह होने लगे और सारे पैठणनगरमें नाम-घोष गूँजने लगा। चैत बदी ६ का दिन उदय हुआ और गुरुपूजा तथा ब्राह्मण-भोजन हो चुकनेपर नाथ बोले कि अब शरीर छोड़नेका समय है। उनका शरीर स्वस्थ था। किसी प्रकारका कोई विकार या पीड़ा नहीं थी। सहस्त्रों मनुष्य उनके कहे अनुसार नदी-किनारे एकत्र हुए। एकनाथ महाराजका अन्तिम कीर्तन हुआ। उनके श्रीमुखसे निकले हुए अमृताक्षर सुनकर सब लोग चित्रवत् मुग्ध और तल्लीन हो गये। आरती हुई, प्रसाद बाँटा गया। नाथ फिर नदीमें उतरे। पूर्ण स्वस्थताके साथ उन्होंने गंगास्नान किया। काया, वाचा, मनसा किसी भी प्रकारसे उन्होंने जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति किसी भी अवस्थामें कोई भी पाप नहीं किया था, इससे जब देहावसानका समय उपस्थित हुआ, तब उनका मन या तनका कोई भी अंग जरा भी विकल नहीं हुआ। सारा जीवन हरिमय था। हरिके सिवाय उस शरीर और मनमें और था ही क्या? तब मृत्युके समयमें भी हरि-स्मरणके सिवाय और क्या हो सकता है, पर उनके देहावसानको मरण कहना भी केवल लोकव्यवहार है। मरणके पूर्व ही वह मरकर जी रहे थे। देवगढ़पर गुरुसेवामें रहते हुए ही उन्होंने जन्म-मरण गुरु-चरणोंमें अर्पण कर दिया था। जन्म-मरण जिस वासनात्मक लिंगदेहके साथ लगा रहता है वह लिंगदेह पहले ही भस्म हो

चुकी थी। पैठणमें या पृथ्वीपर कहीं भी किसी भी मनुष्यका कोई भी अहित कल्पनामात्रसे भी जिन्होंने कभी नहीं किया, यही नहीं प्रत्युत अज्ञ जीवोंने जो-जो कष्ट दिये उन्हें जिन्होंने समुद्रकी-सी अविचल गम्भीरतासे जीत लिया, वह सकल लोकसुहृद्, भूतदयावल्लभ और भगवद्भक्त-शिरोमणि एकनाथ गंगास्नान करके बाहर निकले। गंगाको सम्मुख करके पीढ़ेपर बैठे और श्रीकृष्णस्वरूपका ध्यान करने लगे। वह ध्यान फिर कभी न टूटा! वह उसी परमानन्दमें लीन हो गये, इसी अवस्थामें देह छोड़ दी और आप निजधामको चले गये!*

अपनी वयस्के पहले २५ वर्ष उन्होंने भगवत-प्राप्तिकी साधनामें बिताये और जब गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया तबसे सारा जीवन परोपकारमें लगा दिया '**प्राणेरर्थैर्धिया वाचा**' अपने प्राण, अपनी सम्पत्ति, अपनी बुद्धि और अपनी वाणी सब कुछ लोक-कल्याणमें दे दिया और अपना जन्म सफल किया। पैठण-क्षेत्रमें उन्होंने भगवन्नामकी वर्षा की और भूलोकका दुरितदैन्य दूर किया। उन सच्चिदानन्दस्वरूप एकनाथ महाराजके चरणोंमें हमारे अनन्त प्रणाम हैं।

---

* कुछ वर्ष पहले लोगोंका यह खयाल था कि शाके १५३१ में एकनाथ महाराज समाधिस्थ हुए। परन्तु इस पुस्तकके मूल लेखकने शाके १८२६ में पैठणमें पुराने कागज-पत्रोंको देखते हुए असली समाधि-शक १५२१ ढूँढ़ निकाला और 'केसरी' पत्रमें उसे जाहिर कर दिया। तबसे सबने इसे मान लिया है।

ॐ

नाथवाणीका प्रसाद

चतुःश्लोकी भागवत

चतुःश्लोकी भागवत मूल श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धके नवें अध्यायमें है। सृष्टिके मूलारम्भका प्रसंग है। ब्रह्मदेव सोचने लगे कि '**प्रपञ्चनिर्माणविधिः कथं भवेत्**' प्रपंच कैसे रचा जाय? पर उनकी बुद्धि चली नहीं, गति कुण्ठित हो गयी; तब उदकमेंसे एक ध्वनि निकली, 'तप करो, तप करो।' यह ध्वनि किसने की, यह उन्होंने नहीं जाना, पर उन्होंने इतना समझा कि यह आदिनारायणकी आज्ञा है। इस आज्ञाको मानकर उन्होंने कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मनका संयम करके कठोर तप किया। उस दिव्य तपसे भगवान् प्रसन्न हुए और अपना दर्शन देकर भगवान्‌ने उन्हें दिव्यलोक दिखाया। भगवान् उच्च सिंहासनपर आरूढ़ हैं, उनके चारों ओर चार, सोलह और पाँच शक्तियाँ खड़ी हैं (चार अर्थात् प्रकृति , पुरुष, महत्तत्त्व और अहंकार; सोलह अर्थात् पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच महाभूत और मन अथवा एकादश इन्द्रिय और पंच महाभूत, पंच तन्मात्रा) और अन्यत्र कभी स्थिर न रहनेवाले सब प्रकारके ऐश्वर्य वहाँ स्वाभाविकरूपसे विद्यमान हैं तथा भगवान् अपने स्वरूपमें रममाण हैं।

भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं
प्रसन्नहासारुणलोचनाननम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं
पीताम्बरं वक्षसि लक्षितं श्रिया॥

(श्रीमद्भा० २। ९। १५)

'भगवन्मूर्ति चतुर्भुज दिखायी देती थी, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उत्सुक थी, दृष्टि अत्यन्त मोहक थी, मुखपर किचिंत् हास्य विराज रहा था, नेत्र आरक्त थे, मस्तकपर किरीट और कानोंमें कुण्डल चमक रहे थे। पीताम्बर परिधान किया था, वक्षःस्थलपर लक्ष्मीका चिह्न था। ब्रह्मदेवने प्रभुको प्रेमाश्रु-लोचनोंके साथ वन्दन किया। भगवान्‌ने कहा, 'मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हुआ हूँ।'

प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते।
तपो मे हृदयं साक्षादात्माहं तपसोऽनघ॥
सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः।
बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः॥

(श्रीमद्भा० २। ९। २२-२३)

'सृष्टि-कर्ममें जब तुम्हें मोह हुआ तब मैंने ही 'तप करो, तप करो' की ध्वनि की थी। हे अनघ! तप साक्षात् मेरा हृदय है, तप स्वयं मैं ही हूँ। मैं विश्वका सृजन तपसे करता हूँ, फिर तपसे ही संहार करता हूँ और तपसे ही विश्वका पालन करता हूँ। तप मेरी अमोघ शक्ति है।'

अनन्तर भगवान्‌ने ब्रह्मदेवको चार श्लोकोंमें अपना परम गुह्य ज्ञान बताया। वही चतुःश्लोकी भागवतके नामसे प्रसिद्ध है। इसपर श्रीएकनाथ महाराजका ओवी-वृत्तमें बड़ा ही सुन्दर भाष्य है। चतुःश्लोकी भागवतका प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥

(श्रीमद्भा० २। ९। ३२)

'अर्थात् सृष्टिके पूर्वमें मैं ही था। सत् अथवा असत्‌के परे

कारणरूपसे और कुछ भी नहीं था। सृष्टि होनेपर यह सारा जगत् मेरा ही स्वरूप है। प्रलय होनेपर जो कुछ रह जाता है वह भी मैं ही हूँ।'

इसपर एकनाथ महाराजका भाष्य है—

'सृष्टिके पूर्वमें मैं निजस्वरूप, शुद्ध निर्विकल्प स्वानन्दकन्दस्वरूप अनूप पूर्ण ब्रह्म था। उस पूर्णमें न सत् था न असत् था। सत् अर्थात् सूक्ष्म मूल, असत् अर्थात् नश्वर मूल। सृष्टिके पूर्वमें मैं इन सदसत्के परे निर्मल स्वरूपमें था।' (८७, ९६, ९७, १०२)

और फिर यह सृष्टि भी 'मैं' ही कैसे हूँ, यह एकनाथ महाराज बतलाते हैं—

'जो चीनीकी मिठास है वही चीनी है। वैसे ही चिदात्मा जो है वही यह लोक है। संसारमें मुझसे भिन्न और कुछ भी नहीं है।'

सुवर्ण ही सुवर्णालंकार बनता है, तन्तुसे भिन्न पट नहीं रहता, मृत्तिकासे भिन्न घट नहीं रहता, उसी प्रकार स्थूल-सूक्ष्म संसार मेरी चित्सत्तासे भिन्न नहीं रहता। जैसे वट और वटकी जड़ें हैं वैसे ही मैं परमात्मा और ये लोक हैं। प्रलयके पश्चात् भी मैं कैसे हूँ, यह देखो। कछुआ अपने अवयव बाहर फैलाता और फिर समेट लेता है। दोनों अवस्थाओंमें कछुआ कछुआ ही है, वैसे ही मायाके फैलावमें भी और मायाके सिमटनेमें भी मैं ही एक परमात्मा हूँ। तात्पर्य सृष्टिके आदि, मध्यान्तमें एक नारायणके सिवाय और कुछ भी नहीं है। वैसे ही सब नाम-रूप-सम्बन्ध हैं, भूत-भूतादि भेद हैं। उनके लय होनेपर मैं ही स्वानन्दकन्द परमानन्द निजरूपमें रह जाता हूँ। जिसे वस्त्र कहते हैं, यथार्थमें वह तन्तु ही है। वैसे यह जगत् यथार्थमें चिद्रूप है। इसलिये सृष्टिके आरम्भमें मैं हूँ, सृष्टिके रूपमें मैं हूँ, अन्तमें

सृष्टिका नाश होनेपर मैं ही अविनाशी सच्चिदानन्द रह जाता हूँ। (१२०, १२५, १२६)

यह प्रथम श्लोकका भाष्य हुआ। अब दूसरा श्लोक देखिये—

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥

(श्रीमद्भा० २। ९। ३३)

अर्थात् 'सत्यार्थको छोड़नेसे जिसकी प्रतीति होती है, आत्मामें जिसकी प्रतीति नहीं होती वही माया है, (वस्तु नहीं) भास है, (प्रकाश नहीं) अन्धकार है।'

नाथ-भाष्य—

मैं परमात्मा अधिष्ठान हूँ। उस मुझ सत्यार्थको न देखकर जो-जो कुछ द्वैत भान होता है वही माया है। कनक-बीज (याने धतूरेका बीज) खानेसे मनुष्य जैसे सुध-बुध खो देता है और फिर जहाँ कुछ भी नहीं होता वहाँ व्याघ्र, वानर, शश, मत्स्यादि नाना प्रकार देखता है, वैसे ही मोहमें मायाका यह भास है। (१३६, १३७)

सूर्यके अदर्शन होनेसे तम प्रबल होकर बढ़ता है, पर सूर्योदय होते ही तम कहीं भी नहीं रह जाता। मायाकी भी वैसी ही बात है।

आत्मस्वरूप स्वयं आनन्दघन है, नित्य है, निर्धर्म है, निर्गुण है उस स्वरूपमें जो 'मैंपन' स्फुरित होता है, वही मायाका जन्म-स्थान है। (१४५)

एकनाथ महाराज आगे समझाते हैं—

'देह मिथ्या छाया है। स्वरूप-प्राप्ति मिथ्या माया है। यह सच जानो कि छाया-माया समान है। यह भी जानो कि निजात्म-

प्राप्तिके बिना निज माया नहीं छूट सकती। उस आत्मप्राप्तिके लिये सद्गुरुचरणोंकी सेवा करनी चाहिये।'

अब तीसरा श्लोक देखिये—

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥

(श्रीमद्भा० २। ९। ३४)

अर्थात् 'जिस प्रकार पृथ्वी आदि महाभूत अपने छोटे-बड़े, ऊँच-नीच सभी कामोंमें घुसे हुए हैं, वे उन कामोंमें दिखायी देते हैं, परन्तु तत्त्वतः देखा जाय तो वे घुसे हुए नहीं है। क्योंकि ये कार्य होनेके पूर्व ही कारणरूपसे वे वहाँ मौजूद हैं, उसी प्रकार (भगवान् कहते हैं कि) मैंने इस संसारमें प्रवेश किया ऐसा मालूम होता है, क्योंकि इस विश्वमें मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ और सर्वत्र मिलता हूँ, परन्तु तत्त्वतः मैंने इस संसारमें कभी प्रवेश किया हो ऐसा नहीं है। कारण, संसार-निर्माण होनेके पूर्व कारणरूपसे मैं मौजूद ही था।'

नाथ महाराज कहते हैं—

'मैं-परमात्मा हृषीकेशने इस सृष्टिमें प्रवेश न करके भी प्रवेश किया है। स्वयं न चल करके भी मैं संसारको चलाता हूँ, इसके लिये दृष्टान्त बतलाते हैं। यहाँ छोटे-बड़े सब शरीरोंमें महाभूत कार्यरूपमें घुसे हुए दिखायी देते हैं, पर कारणरूपमें घुसे हुए नहीं हैं (क्योंकि पहलेसे ही हैं)। समुद्रको देखिये तो उसमें करोड़ों कल्लोल दिखायी देते हैं। पर इन कल्लोलोंके भीतर सागर कैसे समा सकता है?' (१६८, १८७, ९८९)

'मुझसे भिन्न और क्या है, जिसमें जाकर मैं बैठूँ या जिसमें मेरा प्रवेश न हो और मैं उससे अलग रहूँ? मेघमुखसे गिरनेवाले

ओले क्या हैं, सिवाय इसके कि जल-बिन्दु जमे हुए हैं! उनके गलते ही उनके सर्वांगसे जल-ही-जल निकलेगा, उसी प्रकार जन जो है वही जनार्दन है, जनार्दन जो है स्वयं वही जन है। ऐसे अभिन्न जनार्दन जगत्में प्रवेश करके भी अप्रविष्ट हैं (समाकर भी समाये हुए नहीं हैं)।'

अब चौथा श्लोक देखिये—

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा॥

(श्रीमद्भा० २। ९। ३५)

अर्थात् 'आत्मतत्त्वके जिज्ञासुद्वारा जाननेकी वस्तु वही है जो अन्वय और व्यतिरेकसे सदा सर्वत्र हैं।'

नाथ महाराज समझाते हैं—

'कारणसे कार्य अभिन्न है, इसका नाम है अन्वय। कार्य मिथ्या और कारण सत्य है, इस लक्षणका नाम है व्यतिरेक।' (२४७)

'जो साधक अन्वयसे मेरी पूर्ण भक्ति और व्यतिरेकसे शुद्धस्वरूप-स्थिति साधते हैं, वे ही अविनाशी स्वरूपको प्राप्त होते हैं।' (२६६)

सम्पूर्ण कथाका यह सार है। यह सारभूत पूर्ण ज्ञान भगवान्ने ब्रह्मदेवको बताया। इस ज्ञानके अनुष्ठानसे निरभिमान होकर ब्रह्मदेवने सृष्टि रची। ब्रह्मदेवसे यह देवर्षि नारदको मिला। नारदने यह ज्ञान महामुनि व्यासको दिया, व्यासने शुकदेवको दिया और शुकदेवसे संसार उपकृत हुआ। इस चतुःश्लोकीको अधिक स्पष्ट करनेके लिये भगवान् वेदव्यासने भागवत-ग्रन्थ लिखा।

रुक्मिणी-स्वयंवर

एकनाथ महाराजका यह ग्रन्थ सहस्रों स्त्री-पुरुष, विशेषकर वारकरी-सम्प्रदायके भगवद्भक्त नित्य पाठ करते हैं। इस ग्रन्थके विषयमें एक कथा है कि एकनाथ महाराज अपने सेवक 'श्रीखण्डिया' का विवाह कराना चाहते थे। पर पीछे जब यह मालूम हुआ कि श्रीखण्डिया साक्षात् श्रीकृष्ण है, तब इस विचारका स्वरूप भी बदल गया। उन्होंने रुक्मिणी-स्वयंवर लिखा और यह वाङ्मयात्मक विवाह रच डाला। इसमें लौकिक विवाहकी सभी बातोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। पर यह केवल लौकिक काव्य नहीं है, इसका स्वरूप दिव्य है।

यह रुक्मिणी-स्वयंवर अध्यात्मप्रधान है। श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका विवाह, भगवान् और उनकी चिच्छक्तिका विवाह या योग है। यह जीव-शिवका विवाह है। वर्णन इतना दिव्य है कि श्रीकृष्ण-कथा होनेसे भक्तोंको प्रिय है, जीव-शिवैक्य-प्रतिपादन होनेसे पारमार्थिकोंको प्रिय है और विवाहका सुन्दर वर्णन होनेसे प्राकृत जनोंको भी प्रिय है। वर्णनशैली गंगाप्रवाहके समान गम्भीर, सहज और दिव्य है। ऐसे दिव्य ग्रन्थमेंसे कुछ अवतरण यहाँ देते हैं।

विवेकके साथ जैसे श्रद्धा सोहती है वैसे ही भीष्मक राजाको शोभा देनेवाली शुद्धमती रानी उन्हें प्राप्त हुई थी। इनके श्रीकृष्णकी चिच्छक्ति रुक्मिणी कन्या हुई। पाँच विषयोंके अन्तमें जैसे सुषुप्ति उत्पन्न होती है वैसे ही रुक्मी आदि पाँच भाइयोंके पीछे 'नवविधा भक्तिके नव मास' पूरे होनेपर गौरवर्ण रुक्मिणी उत्पन्न हुई। पुत्रोंकी अपेक्षा इस पुत्रीपर ही राजाकी विशेष प्रीति थी। वह जब विवाहके योग्य हुई, तब उसके लिये योग्य वरकी खोज आरम्भ हुई। इन्हीं दिनोंमें द्वारकासे श्रीकृष्ण-चरित्र देखकर

लौटा हुआ एक ब्राह्मण भीष्मकके दरबारमें आया। उस समय रुक्मिणी भीष्मक राजाके पास ही बैठी हुई थी, उस कीर्ति नामक ब्राह्मणने श्रीकृष्णस्वरूपका जो वर्णन किया, उसे एकनाथ महाराजकी अध्यात्मप्रचुर वाणीमें ही सुनिये—

श्रीकृष्णस्वरूप

'जो निर्गुण, निर्विकार, निष्कर्म, निरुपचार हैं वही श्रीकृष्ण साकार लीलाविग्रह हुए हैं। उनके चरण-तलोंका रंग इतना शोभायमान है कि लाल कमल भी फीका जान पड़ता है। उनके पैरोंकी गोल एड़ियाँ बालसूर्यके समान उज्ज्वल हैं। चरणोंका सामुद्रिक भी देखिये। कैसी सुन्दर ध्वज-वज्राकिंत रेखाएँ हैं, ब्रह्मादिकोंके लिये भी अलक्ष्य और सहस्र-मुखसे भी अवर्णनीय हैं। कटिमें पीताम्बरकी भी कैसी दिव्य शोभा है, घनश्यामके अंगसे जैसे दामिनी चौगुने तेजके साथ चमक रही हो। और यह दामिनी चमककर छिपनेवाली नहीं, अस्तमान होना भूली हुई है। चरणोंके नूपुरोंसे सोऽहंभावके छन्द निकल रहे हैं, मानो मुमुक्षुओंके सोये हुए मनको जगा रहे हैं। शून्यरहित जो निरवकाश है वही सावकाश श्रीकृष्ण-हृदय है, वृत्तिशून्य होकर संत उसीमें रहते हैं। ज्ञान, वैराग्य, शक्ति-सम्पुटसे जो मुक्त पुरुषरूप मोती निकले उन्हींकी माला कण्ठमें शोभा पा रही है। भिन्न-भिन्न पंचमहाभूत हैं, वैसी ही उनकी अँगुलियाँ हैं जिनका अधिष्ठान उनका करतल है, जिसकी मुट्ठीमें पाँचों मिले हुए हैं। चारों क्रिया-शक्तियाँ उनकी चार भुजाएँ हैं। एक-एक भुजामें एक-एक आयुध है। आत्यन्तिक तेजसे तेजाकार बना हुआ वह चक्र देखिये, जो द्वैतदलनमें तेज धारवाला और अरिमर्दनमें अत्यन्त उद्भट है। (प्रसंग १)

'जो-जो कुछ सुन्दर दिखायी देता है वह श्रीकृष्णके ही

अंशसे है, उससे आँखें ऐसी दीवानी हो गयीं कि भगवान्के मयूरपिच्छमें जा लगीं।'

'जिसने एक बार श्रीकृष्णरूपको देखा उसकी आँखें फिर उससे नहीं फिरतीं, अधिकाधिक उसी रूपको आलिंगन करती हैं और उसीमें लीन हो जाती हैं।' (प्रसंग १)

* * * *

'ऐसे धीर वीर उदार अति गम्भीर गुणागुण और सुन्दर पृथ्वीपर एक यदुवीर ही हैं और दूसरा कोई नहीं है।' (प्रसंग १)

माँ-बापकी राय रुक्मीको पसन्द नहीं हुई। उसने श्रीकृष्णकी निन्दा की, वह निन्दा भी एकनाथ महाराजकी वाणीमें सुनिये कि कितनी सच्ची है।

कृष्ण-निन्दा

रुक्मीने कहा—

'कृष्णसे सम्बन्ध करना तो ठीक नहीं है। यह क्या आपको अभी बताना होगा? इसने अपने अहंमामाको मार डाला! (जो अपने अहंमामाका नहीं हुआ) वह हमारा क्या होगा? फिर इसके कुलका भी कोई ठिकाना नहीं है! कोई कहते है; यह नन्दनन्दन है; कोई कहते हैं, नहीं यह वसुदेवसुत है; इसके बापतकका पता नहीं है। इसका कोई कुल-गोत्र ही नहीं है! इस कृष्णका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व भी नहीं है, यह तो अपने प्रेमियोंका दास है। इसका कर्म देखिये तो दूसरोंके घरमें घुसकर गोरसकी चोरी करना है। इस चोर-विद्यामें यह इतना पक्का है कि कोई इसे पकड़ भी नहीं सकता, ऐसा निपट-चित-चोर है। इसका कोई काम खुले मैदान नहीं होता, संसारमें सदा लुका-छिपा रहता है। इसके छिपनेके स्थान मुझे मालूम हैं। कभी तो वैकुण्ठके पर्वतमें

जाकर छिपता है, कभी क्षीर-सागरमें गोता लगाता है, कभी शेषनागके फनपर सोनेका बहाना करके पड़ा रहता है। कोई बड़ा संकट उपस्थित हुआ देखता है तब यह कभी मत्स्य बन जाता है, कभी वाराह बन जाता है, कभी पीठको मजबूत करके कछुएका रूप धारण कर लेता है। दैत्यको बलवान् देखकर यही भिखारी बन गया था। बलिने इसे अपना द्वारपाल बनाया? इसका न कोई रूप है, न इसमें कोई गुण है, न इसके रहनेका कोई ठिकाना है! इसका सिंहासन क्या होगा? इसके तो वृत्ति ही नहीं है! इसके न कोई देहाभिमान है, मानापमान है, इसकी गाँठमें धन भी कहाँसे होगा? यह तो सागका बचा-खुचा पात* खानेवाला है! इसकी माँ भी दो हैं, जो दो जगह रहती हैं, एक देही है तो एक विदेही है—एक देवकी है तो दूसरी यशोदा है। कुल-कर्मको मिटाना हो, अपने साथ सबको मिट्टीमें मिलाना हो, जीवतकका अन्त करना हो तो कोई कृष्णको वरण करे।' (प्रसंग २)

रुक्मीने की तो निन्दा, पर हो गयी वह महत्तम स्तुति! भगवान्! ऐसे अगुणी-गुणी हैं कि उनकी निन्दा हो ही नहीं सकती।

रुक्मिणीने श्रीकृष्णके नाम सात श्लोकोंकी एक प्रेम-पाती लिखी और सद्भाव नामक ब्राह्मणके हाथ श्रीकृष्णके पास भेजी। वह ब्राह्मण मनोवेगके घोड़ेपर बैठकर द्वारकाको गया। द्वारकाके बाह्यप्रदेशकी रमणीयता, द्वारकानगरी और श्रीकृष्णमूर्ति देखकर वह आनन्दसे पागल हो गया।

---

* भोजनके बहाने द्रौपदीका सत्त्व-हरण करने आये हुए दुर्वासा मुनिकी कथा। उस अवसरपर कृष्णने द्रौपदीकी रिक्त थालीमेंसे सागकी बची-खुची पत्ती ही खाकर डकार ली थी।

रमणीक द्वारका

'द्वारकाके बाह्यप्रदेशमें जीव-शिव रमण करते हैं। वसन्त सुमनको सदा सुप्रसन्न रखता है। ताप-सन्ताप किसीको होता ही नहीं। विमल प्रेमसे कमल खिल रहे हैं, कृष्णषट्पद (कृष्णभौंरे) गुंजार कर रहे हैं जिसे सुनकर गन्धर्व मुग्ध होकर चुप बैठे हैं, सामवेद भी मौन हो गये हैं। द्राक्षोंके गुच्छे डोल रहे हैं, मुक्तपरिपाकसे उनमें बड़ी मिठास आ गयी है। सब काम यहाँ पूरे हो जाते हैं और उनकी मिठास बड़ी ही मीठी होती है। कृष्ण कोकिलाएँ अपनी मधुरवृत्तिसे निःशब्दका शब्द कूजन करती हैं जिसे सुनकर सनकादिक सुखी होते और प्रजापति तटस्थ हो जाते हैं। मोर आनन्दसे ऐसे नाचते हैं कि अप्सराएँ नाचना बंद करती हैं और उमाकान्त अपना ताण्डव-नृत्य भूल जाते हैं। ऐसी अद्‌भुत हरिलीला है! द्वारकावासी विमल हंस मुक्त मोती ही चुगते हैं जिसे देखकर परमहंसके भी लार टपका करती है। शुकादि पक्षी भी इसी लीलाका अनुवाद करते हैं जिसे सुनकर वेदान्त दंग रह जाता है। द्वारकाके पक्षियोंकी बोलीसे गुह्यका गुह्यार्थ प्रकट होता है। द्वारकामें बड़ा पक्का सौदा होता है। पर वहाँ दो अक्षरोंका सच्चा सिक्का ही चलता है। जैसा लेना वैसा देना, किसीके लिये कुछ भी कम न होना, यही यहाँका व्यवहार है।' (प्रसंग ३)

यह विप्र जब दरबारमें पहुँचा तब 'सुवर्ण-सिंहासनपर आदिमूर्ति सहज स्थितिमें विराजमान थे।' उन्होंने ब्राह्मणको देखा और वे समझ गये।

श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीने जो पाती भेजी थी उसका तीसरा श्लोक देखिये—

तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरङ्ग जाया-
मात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥

(श्रीमद्भा० १०। ५२। ३९)

एकनाथ महाराजकी वाणीसे इसका विशद अर्थ सुनिये— 'मनसे, वाणीसे और कायासे मैं तुम्हारी हो चुकी। हे यदुराय! अब विवाहविधि करना बाकी है सो तुम करो। ऐसा न हो कि कृष्ण-केशरीकी चीज शिशुपाल-शृगाल ले जाय। यदि ऐसा होगा तो हे कमलनयन-कमलापति! बड़ी अपकीर्ति होगी।'

अम्बादेवीके मन्दिरसे कुलवधूको उठा ले जानेकी विदेहराज्यकी विधिका उल्लेख कर तथा इसी प्रकार अपने-आपको हर ले जानेकी विनती करके अन्तमें रुक्मिणी कहती हैं—

'यदि तुम्हारी कृपा न हो तो ऐसे जीनेमें क्या रखा है? देह-दण्डकी इस बेड़ीका बोझ और बन्धन व्यर्थ ही कौन ढोता फिरे? यहाँ आकर कृपा करते न बने तो मुझे अपने हाथों मारकर ही चले जाओ। तब कम-से-कम परलोकमें तो तुम्हारा आनन्द प्राप्त करूँगी।' (प्रसंग ४)

रुक्मिणीकी पाती पढ़कर श्रीकृष्ण अकेले ही चल पड़े। उस समय उनके मुखसे नाथ महाराजकी वाणीके अनुसार यह उद्‌गार निकला—

'जो दूसरोंकी बाट जोहता है उसका कार्य कुछ भी नहीं बनता। जो संगीका साथ ढूँढ़ता है उसे यश कहाँसे मिले!'

रुक्मिणी-रूप-वर्णन

अब रुक्मिणीका रूप-वर्णन सुनिये—

'सौन्दर्य, सुर, नर, पन्नगोंमें बहुत भटका, पर उसे कहीं विश्रान्ति नहीं मिली। तब वह दौड़ गया रुक्मिणीकी देहमें और वहाँ उसे विश्राम मिला। रुक्मिणीकी यह सुन्दर मूर्ति ब्रह्माने नहीं रची, यह श्रीकृष्णके प्रभावसे इस रूपको प्राप्त हुई, वह अच्छाईके शिखरपर चढ़कर सौन्दर्यके ही आकारमें प्रकट हुई। मस्तकके नील कुन्तल क्या थे, अति सुनील नभोमण्डल था। जिसके नीचे निर्मल मुखचन्द्र रुक्मिणी-वदनमें उदय हुआ। चन्द्रमण्डलके आगे-पीछे जैसे तारागणोंके वृत्त, वैसे ही रुक्मिणीके कानोंमें मोतियोंके कुण्डल जगमगा रहे हैं। श्रीकृष्णके रंगमें रँगा हुआ उसका अभंग सौभाग्य-कुंकुम मुख-चन्द्रमें चन्द्रमा बनकर शोभा पा रहा है। मस्तकपर मोतियोंकी जाली वैसी ही सोह रही है जैसे नभोमण्डलमें नक्षत्र शोभा पाते हैं। श्रीकृष्ण-दर्शनकी प्रतीक्षामें, दृश्यको देखते-देखते उसके नयन थक गये थे और सारा दर्शनीय दृश्य एकत्र होकर उसके नेत्रोंमें आ गया था। घनसाँवरेको देखनेके लिये उसकी पुतलियोंमें घनश्यामता आ गयी थी, दोनों नेत्रोंमें एक ही आशा आकर बैठ गयी थी, अंदर-बाहरका देखना एक हो गया था, दृष्टि सम हो गयी थी। मुखमें दन्तपंक्ति ऐसी शोभा दे रही थी जैसी ॐकारमें श्रुति। नाकपर नथके चार मोती ऐसे चमक रहे थे जैसे वेदान्तमें '**सोऽहमस्मि।**' अधरपर नथका सोनेका अकडा लटक रहा था और नाकपर मोती चमक रहे थे, मानो कृष्णको मोहित करनेका उपाय कर रहे थे। सौभाग्यका कृष्ण-मणि कण्ठमें ऐसे धारण किया था कि कभी न टूटे और किसीको दिखायी भी न दे, मानो कण्ठमें प्राणनाथके साथ एकान्त किये हुई थी। एक ही अंगमें भिन्न-भिन्न रूपसे जीव और शिव दोनों बढ़े, इससे

कुचकामिनी कुचभारसे घनस्तनी हो उठी। विद्या और अविद्याके दो पंखोंने दोनों ओरसे उन्हें ढाँक रखा था, ऐसी वह त्रिगुणकी अँगिया उसके वक्षःस्थलमें कसी हुई थी, जिसे श्रीकृष्णके सिवाय और कौन खोलता? रुक्मिणी-कृष्ण-आलिंगन ही जीव-शिव-समाधान है। इसीसे दोनों स्तन उभरे थे, श्रीकृष्णका स्पर्श चाहते थे। प्रकृति-पुरुषका जो आलिंगन हुआ उससे अँगियाकी गाँठ मजबूत बँध गयी। इस गाँठको पुरुषोत्तम ही खोल सकते हैं, यह और किसीसे खुलनेवाली नहीं। दोनों हाथोंमें बाहर जो चूड़ी, बाजूबन्द, कंगन आदि अलंकार हैं वे भीतरके शम-दमादि छः सुभट हैं। हाथके कंगन जो मधुर ध्वनि कर रहे हैं वह श्रीकृष्णनिष्ठाका राग है। करतलोंका रंग ऐसा मनोहर है कि सन्ध्याराग भी उसके सामने फीका पड़ जाता है। ये करतल सदा श्रीरंगकी चरणतलसेवा करते हैं।' (प्रसंग ७)

वर-पूजन

कुण्डिनपुरमें श्रीकृष्ण-रुक्मिणीके विवाह-प्रसंगमें वर-पूजा करते हुए राजा भीष्मक और रानी शुद्धमतीकी कैसी मनोऽवस्था हुई उसका वर्णन करते हैं—

'श्रीकृष्णका जो रूप देखा तो चारों ओर श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण दिखायी देने लगे। भीष्मक सोचने लगे कि इन अनन्त रूपवाले श्रीपतिका पूजन मैं कैसे करूँ? पूज्य-पूजकताकी अवस्था भी वह भूल गये। शुद्धमती जल दे रही हैं और राजा चरण धो रहे हैं। सब तीर्थ यह कहकर वह चरणतीर्थ माँग रहे हैं कि श्रीकृष्णपदकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है। शुद्ध सत्त्वके शुभ्र वस्त्र और चिद्रत्नके अलंकार अर्पण कर, भीष्मकने कृष्ण वरका पूजन किया। वृद्ध परम्परा ऐसी है कि वधूकी माता वरके चरण अपने अंचलसे

पोंछती है। शुद्धमती चरण पोंछने आयीं; श्रीकृष्णका मुख निहारने लगीं। मस्तकपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल, गलेमें कौस्तुभमाला, कटिमें पीताम्बर और मेखला—इन वस्त्रालंकारोंसे युक्त घनश्यामका वह अनुपम रूप-सौन्दर्य देखकर शुद्धमतीके नेत्र पूर्ण तृप्त हुए। श्रीकृष्ण-चरणोंमें हलदी लगाते हुए उनका अहंभाव नष्ट हो गया, वे लाज खो बैठीं, 'मेरा-तेरा' की उपाधि भी हार चुकीं। श्रीकृष्ण-प्रभाके दीपकी दीप्तिसे तब श्रीकृष्णकी आरती की। कृष्णमें परम प्रीति लगनेसे चित्तवृत्ति तद्रूप हो गयी।'

वन्दन

विवाह-सम्बन्धी अन्य विधि होनेके पश्चात् जब वधूद्वारा वरके चरण-वन्दनका समय आया तब—

'रुक्मिणी श्रीकृष्णके चरण-वन्दन करने चली, सखियाँ उसकी ओर वक्रदृष्टिसे देखने लगीं, यह देख रुक्मिणी लज्जित हुई—चित्तमें शंका उठी। अभिन्न-भावमें यह भेद उठा। इससे नमन भी ठीक नहीं हुआ। उसने नमन तो किया, पर समचरण उसके मस्तकमें नहीं लगे। माँ हँसेगी, सखियाँ हँसेंगी, यह जो भाव उसके चित्तमें उठा, यह अभिमान था। अभिमानसे ही उसने अपने करतलसे अँगूठा पकड़ा और यह निश्चय किया कि अबके वन्दनमें भूल न होने दूँगी। पर जब उसने फिर मस्तक नवाया तब समचरणोंने एक दूसरेका आलिंगन किया और उसका मस्तक धरतीपर लगा, समचरणोंमें नहीं। तब वह अत्यन्त खिन्न हुई जो ललाटमें चरण नहीं लगे। बात यह है कि अभिमानका जितना बल होता है उतना ही घना पटल दृष्टिपर पड़ता है। इसीसे चरण-कमल नहीं प्राप्त हुए। उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी, सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। चरणोंके वियोगसे शरीरका भार

असह्य हो गया। वह अचेत-सी हो नीचे गिर पड़ी। उद्धवने यह देखा, वे दौड़ गये रुक्मिणीके पास और उसकी बाँह पकड़कर बोले 'माँ, उठो! श्रीकृष्णके चरणोंको वन्दन करो। लज्जा और अभिमानको छोड़ दो, मनको निर्विकल्प कर लो और वृत्तिको सावधान करके हरिचरणोंको वन्दन करो।' उद्धवके वचनोंसे रुक्मिणीके धीरज बँधा। उसने लाज छोड़ दी और वह हरि-चरणोंमें आ गयी। वृत्ति समाहित हुई, शब्दकी गति बन्द हो गयी, मौन भंग हो गया और रुक्मिणी समचरणोंको वन्दन करती हुई परमानन्दको प्राप्त हुई। विषय-दृष्टि उपराम हुई, सारी सृष्टि निजानन्दमें समा गयी, त्रिपुटीका लय हो गया। न वरका स्मरण रहा, न वधूका, सारा दृष्टान्त ही बह गया और अर्थ, स्वार्थ और परमार्थ अनन्त होकर अनन्तमें मिल गये।'

देवी-देव एक

लाज और अभिमान त्यागकर मनको निर्विकल्प करके रुक्मिणी जब श्रीकृष्ण-चरणोंमें रम गयी—

'चरणोंका आलिंगन होते ही अहं-सोऽहंकी गाँठें खुल गयीं। सारा संसार आनन्दमय हो गया। सेव्य-सेवक-भावका कोई चिह्न ही नहीं रह गया। विवाहका कोई स्मरण भी न रहा। देवी और देव एक हो गये।'

नमूनेके तौरपर ये कुछ ही अवतरण यहाँ दिये हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ ऐसा ही है। विवाहकी एक-एक बातका विशद और सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थमें एकनाथ महाराजने किया है और उसमें भगवान् और भक्तके आनन्दमय अखण्ड मिलनकी मानो साधना ही बतायी है।

चिरंजीव-पद

एकनाथ महाराजका यह ४२ ओवियोंका छोटा ग्रन्थ भी अत्यन्त लोकप्रिय है। चिरंजीव-पद अर्थात् अविनाशी ब्रह्म-पद। इस ब्रह्मपदकी प्राप्तिका साधन इस ग्रन्थमें बताया गया है। कुछ अवतरणमात्र यहाँ देते हैं। वैराग्य ही मुख्य साधन है। पर वैराग्य क्या है? विरक्त किसको कहते हैं।

विरक्त

'सच्चा विरक्त उसको कहना चाहिये जो मानके स्थानसे (अर्थात् जहाँ लोग उसे मानते हैं—उसकी इज्जत करते हैं) दूर रहता है। वह सत्संगमें स्थिर रहता है, मानके लिये कदापि नहीं तरसता। अपना कोई नया सम्प्रदाय नहीं चलाता (नया अखाड़ा नहीं खोलता, अपनी गद्दी नहीं कायम करता), यह जानता है कि इससे अहंता बढ़ती है। जीविकाके लिये वह दीन होकर किसीकी खुशामद नहीं करता। वह लौकिक नहीं होता, उसे वस्त्रालंकारकी इच्छा नहीं होती, परान्नमें रुचि नहीं होती, स्त्रियोंको देखना उसे अच्छा नहीं लगता। स्त्रियोंमें बैठना, स्त्रियोंका देखना, स्त्रियोंका भाव बताना, स्त्रियोंका पैर दबाना, स्त्रियोंका बोलना इसे पसन्द नहीं होता। यह सदा यही मनाता रहता है कि स्त्रियोंका संग न हो, स्त्रियोंके साथ एकान्त न हो, स्त्रियोंका परमार्थ गले न पड़े। स्त्रियाँ पुरुषोंको हानि ही पहुँचाती हैं।'

*　　　　*　　　　*　　　　*

गृहस्थाश्रमी साधकके लिये कहते हैं—

'अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रीसे कोई सम्बन्ध न रखे। किसी भी स्त्रीको अपने सन्निधि सहसा आश्रय न दे। अपनी

स्त्रीसे भी केवल समुचित ही सम्बन्ध रखे और चित्तको कभी आसक्त न होने दे।'

* * * *

अखण्ड एकान्त

'नर-नारी सेवा करके भक्ति और ममता उपजाते हैं। जो शुद्ध पारमार्थिक है वह स्त्रियोंसे दूर रहता है। अखण्ड एकान्त करना चाहिये। प्रमदासंगसे सदा बचना चाहिये। जो निरभिमान होकर निःसंग हो गया हो वही अखण्ड एकान्त-सेवन कर सकता है।

'सारांश—स्त्री, धन और प्रतिष्ठा चिरंजीव-पद-प्राप्तिके साधनमें तीन महान् विघ्न हैं। सच्चा अनुताप और शुद्ध सात्त्विक वैराग्य यदि न हो तो श्रीकृष्ण-पद प्राप्त करनेकी आशा करना केवल अज्ञान है। नाथ कहते हैं कि यह मैं नहीं कह रहा हूँ; यह हितका वचन कृष्णने उद्धवसे कहा और वही मैंने दोहराया है। इसलिये इसे जिसका मन सच न माने वह नाना विकल्पोंसे श्रीकृष्णचरण कदापि लाभ नहीं कर सकता।'

साधावया वैराग्य ज्ञान। मनुष्य देहीं करावा प्रयत्न॥
सांगे एका जनार्दन। अणीक यत्न असेना॥

'वैराग्य और ज्ञानसाधना हो तो मनुष्य-देहमें इसके लिये प्रयत्न करो। एका जनार्दन कहते हैं, इसके सिवाय और कोई यत्न नहीं है।'

भावार्थ-रामायण

भावार्थ-रामायण एकनाथ महाराजका सबसे बड़ा ग्रन्थ है। इसमें ४० हजार ओवियाँ हैं, इसका संक्षिप्त परिचय पहले दिया जा चुका है। सम्पूर्ण रामकथा अध्यात्म-तन्तुओंसे बुनी हुई है। नमूनेके तौरपर कुछ अवतरण यहाँ देते हैं।

अजन्मा रामका जन्म

'रामायणकी जो यह मूल कथा है कि राम अजन्मा हैं और मानवदेहमें उन्होंने जन्म ग्रहण किया, इस कथाको शास्त्र-दृष्टिसे देखा जाय तो उसमें परमार्थ भरा हुआ है। अजसे उत्पत्तिके हेतु जो दशेन्द्रिय उत्पन्न हुए वही अति समर्थ राजा दशरथका जन्म हुआ जो तीनों लोकोंमें विख्यात हुए। उनकी तीन रानियाँ थीं जो प्रबुद्ध, लोकोत्तर और विशुद्ध धर्मपत्नी प्रसिद्ध हुईं। इनका नामानुवाद सुनिये। ज्येष्ठा कौशल्या सद्विद्या हैं, सुमित्रा शुद्धमेधा हैं, कैकेयी अविद्या हैं जिनकी चेरी कुविद्या मन्थरा है। राजा भीतरसे अभोगी विरक्त हैं, इसीलिये रघुनाथ उनके तनसे जन्म ग्रहण करेंगे जो लोग अत्यन्त विषयासक्त होते हैं, भगवान्‌का स्पर्श उन्हें नहीं होता।'

* * * *

'आत्मप्रबोध ही लक्ष्मण हैं! भावार्थ (भक्ति) ही भरत हैं। आत्मनिश्चय शत्रुघ्न हैं और पूर्ण आनन्दविग्रह श्रीराम हैं। अहमात्मा दशरथ हैं और उत्पत्तिके मुख्य कारण हैं। श्रीरघुनाथजी जब चले गये तब अहमात्माका अन्त हो गया!'

रामका रणयज्ञ

रामने रावणसे जो युद्ध किया उसका वर्णन—

'सकल लोकविनाशक, धर्ममात्रके अवरोधक, सत्कर्मके विच्छेदक दशमुख रावणका श्रीरामने संहार किया। इस यज्ञके याज्ञिक श्रीराम थे, रणभूमि ही यज्ञमण्डप थी। अति श्रेष्ठ कालानल ही हव्य पहुँचानेवाला अग्नि हुआ। सुग्रीव, हनुमन्त आदि समस्त सेनापति ऋत्विज हुए। विभीषण साक्षी थे जो जहाँ-कहीं भूल दिखायी देती, बतलाते थे। वध ही परिसमूहन था। अद्‌भुत शस्त्र परिस्तरण थे। अति आरक्त रुधिर पर्युक्षण था। यजमान श्रीराम राक्षस-सैन-रूप हविको सुलक्षण बाणके स्रुवासे कालानलमें स्वाहा करते थे। अस्त्र, रथ रणवाद्यादिका तुमुल शब्द ही मन्त्रघोष था और उससे 'मारो, काटो, जाने मत दो' की क्रिया होती थी, '**न मम**' कहकर रघुनाथजी जिसकी आहुति देते, कालानल उसीको स्वीकार करता था। राक्षससैन्य जब सब स्वाहा हो गया तब श्रीरामने रावणकी पूर्णाहुति दी और यज्ञ समाप्त किया। रणयज्ञ समाप्तकर धनुष-बाण नीचे रखा, वही अवभृथ हुआ। ऋत्विजोंको दक्षिणा बाँटते हुए श्रीरामको बड़ा ही उल्लास हुआ। किसीको सायुज्य दक्षिणा दी, किसीको विदेहत्व दान किया, किसीको अनन्त सुख दिया, किसीको नाम-कीर्तन प्रदान किया। हर्षके साथ नामका घोष करनेसे ब्रह्माण्डतक सब लोकोंका उद्धार होता है।'

सीता-शुद्धि

अग्निद्वारा सीताकी शुद्धि कराकर तब सीताको ग्रहण करनेका श्रीरामका विचार जानकर हनुमान्‌जी श्रीरामसे कहते हैं—

'इस प्रकार पतिव्रतासे विकल्प करना आपके व्रतको नहीं सोहता। सीताके ही तेजानलसे रावणसहित समस्त राक्षससैन्य

जलकर भस्म हुआ। सीताने यदि इन्हें न मारा होता तो ये आपसे न मारे जाते। इन्हें मारा सीताने और विजय दी आपको। जिसके कारण आपकी यह शूरवीरता है वह जानकीजीकी चिच्छक्ति है। आपका नामरूप भी उन्हींके कारणसे है.......।'

* * * *

'सूर्यका आकाशमें जो प्रताप है उसे सूर्य नहीं जानता। उसे जानती है कमलिनी जिसका मुख उससे विकसित होता हे। चुम्बककी चालक-शक्ति चुम्बक नहीं जानता, उसे जानता है जड लोहा जो उसके दर्शनसे चलने लगता है। चन्द्रकिरणोंकी अमृतधाराको स्वयं चन्द्र नहीं जानता, जानता है चकोर जो उसका सेवन करता और दर्शनसे अपार आनन्द-अनुभव करता है। वैसे ही हे श्रीराम! आपके दर्शनोंका जो सुख है वह आप नहीं जानते उसे वे भक्त जानते हैं जो सात्त्विक नैष्ठिक व्रतधारी हैं। उस सुखसे हृष्ट हुई सीताको देखकर पर अन्तर्व्रतको न जानकर आपके चित्तमें विकल्प उठा।'

पर सीताने 'हर्षित चित्तसे' अग्नि-शुद्धि कराना स्वीकार किया। तब हनुमान्ने—

'विश्वाकार विषम प्रचण्ड अग्निकुण्ड प्रज्वलित किया। उसे देखकर ब्रह्माण्ड क्षुब्ध हो उठा, आकाश-पाताल एक होने लगे। पर सीताका बस एक ही ध्यान था, यही कि जो प्रभु रामकी इच्छा! अग्निमें स्नान करके श्रीरामके चरणोंकी सेवा करूँगी।'

अग्नि-प्रवेश करते हुए सीताने कहा—

'स्वामी! आप तेजोराशि हैं, सब कर्मोंके साक्षी हैं, सबके अन्तर्यामी हैं.......। हे अग्नि! रामको छोड़कर मनमें यदि और किसी विषयका ध्यान हुआ हो तो मुझे क्षणमात्रमें जला डालो।

मुखसे जो कोई स्वर, वर्ण निकलता है उसके चालक श्रीराम हैं। वाणीसे बुलवानेवाले श्रीराम हैं,.........वाग्-विश्राम भी श्रीराम हैं। राम ही श्वासोच्छ्वास हैं, राम ही निमिषोन्मेष हैं, राम ही निजवास हैं। हे अग्निदेव! यह देह, वाणी और त्रिविध प्राण श्रीरामको प्राप्त करनेके लिये आपके सामने रखे हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंके साक्षी रघुनन्दन हैं। वह सब जानते हैं।'

श्रीरामने सीताकी ऐसी कठोर परीक्षा क्यों की?—

'जानकी निष्पाप हैं, यह श्रीराम अन्तर्वृत्तिसे जानते थे। पर दूसरोंको जनानेके लिये (उन्होंने) यह अग्नि-परीक्षा की। कपट-बुद्धि रावण काम-भावसे सीतको हर ले गया था। इसका परिहार ऐसी परीक्षाके बिना कैसे हो, इसलिये यह परीक्षा की।'

रामका सगुण रूप

'जैसे बीज ही वृक्ष हुआ, सुवर्ण ही अलंकार बना, वैसे ही निर्विकार श्रीराम ही साकार हुए। सुनो, मेरा पागल प्रेम ऐसा है कि सुन्दर श्याम श्रीराम ही मेरे अद्वितीय ब्रह्म हैं और कुछ मुझे नहीं मालूम! हाथमें धनुष-बाण लेकर जिन्होंने रावणको मार डाला, उन श्यामीभूत पूर्ण ब्रह्मको देखकर नेत्र तृप्त होते हैं। रामके बिना जो ब्रह्मज्ञान है, हनुमान्‌जी गरजकर कहते हैं कि उसकी हमें कोई जरूरत नहीं। हमारा ब्रह्म तो राम है।'

एकनाथी भागवत

बोध-वचन

एकनाथी भागवत श्रीमद्‌भागवतके एकादश स्कन्धका अत्यन्त प्रामाणिक, विशद और दिव्य भाष्य है। इसकी एक-एक पंक्ति अनमोल है। इस भाष्यमेंसे यहाँ केवल कुछ बोध-वचनोंका संग्रह करते हैं जो सबके लिये मंगलकारक हो।

उजेला

१—घरमें दीया जलानेसे वह झरोखेमें भी प्रकाशित होता है। वैसे ही मनमें जो भगवान् प्रकट हुए वही अन्य इन्द्रियोंमें भी भजनानन्द उत्पन्न करते हैं।

माया

२—मायाका मुख्य लक्षण निज स्वरूपका आवरण है। जिससे द्वैतका स्फुरण होता है, उसीका नाम मूल माया है।

भजनानन्द

३—जो मोल लेकर मदिरा-पान करता है वह मदिराके आनन्दमें नाचता-गाता है। तब जिसने ब्रह्मानन्द-सेवन किया हो वह कैसे चुप-चाप बैठ सकता है?

भक्ति और प्राप्ति

४—भक्ति कहते हैं सब प्राणियोंमें भगवान्‌का सप्रेम भजन करनेकी युक्तिको। प्राप्ति कहते हैं अपरोक्ष स्थितिको, जिससे अनिवार्य भगवत्स्फूर्ति होती है।

भगवान्‌के चरणोंमें

५— भगवान्‌के चरणोंमें अपरोक्ष स्थिति हो जाय तो वहाँ क्षणार्धमें होनेवाली प्राप्तिके सामने त्रिभुवन-विभव-सम्पत्ति भी भक्तके लिये तृणके समान है।

सद्‌गुरु

६—जो शब्दज्ञानमें पारंगत है, ब्रह्मानन्दमें जो सदा झूमता रहता है, शिष्यको आत्मभावका यथोचित बोध करा देनेमें जो समर्थ है, देहमें रहते हुए भी जिसमें देहका अहंकार नहीं है, घरमें रहकर भी जिसमें घरकी आसक्ति नहीं है, लोगोंके बीच जो लोगोंके समान ही सुखपूर्वक रहता है, वेद-शास्त्र जानते हुए भी जो कुछ अपने व्युत्पत्ति-ज्ञानका डंका नहीं पीटा करता और जो सदा अखण्ड शान्तिमें रहता है उसीको सद्‌गुरु-मूर्ति जानना चाहिये।

साधक

७—सच्चे साधक वही हैं जो सद्‌गुरुचरणोंके अंकित हैं, जो गुरुवचनपर अपने-आपको बेच चुके हैं, जो सद्‌गुरुके लिये अपना सर्वस्व दे चुके हैं।

८—जिससे अपने-आपको दुःख होता है वैसा बर्ताव वे किसी प्राणीसे भी कभी नहीं करते। जिससे अपने-आपको सुख होता है वैसा बर्ताव वे दीन-जनोंसे करते हैं।

९—वे अपना अन्तर गुरुप्रतीतिसे धो डालते हैं और अपना बहिर्भाग शास्त्रयुक्तिसे धो डालते हैं। जहाँ ऐसी शुचिता होती है वहीं अद्वैतस्थिति स्थापित होती है।

१०—याचना किये बिना यथाकाल यदृच्छासे जो कुछ मिले उसे वे गुरुवचनसे मिलाकर मंगलमय करके स्वानन्दसे भोग करते हैं।

भागवत-धर्म

११—दारा, सुत, गृह, प्राण सब भगवान्‌को अर्पण कर देना चाहिये। यह पूर्ण भागवत-धर्म है। मुख्यतः इसीका नाम भजन है।

१२—साधु-संतोंसे मैत्री करो, सबसे पुराना परिचय (प्रेम) रखो, सबके श्रेष्ठ सखा बनो, सबके साथ समान रहो।

१३—भगवान्‌की आचारसहित भक्ति सब योगोंका योगगह्वर, वेदान्तका निज भाण्डार, सकल सिद्धियोंका परमसार है।

१४—गृहाश्रममें रहकर भी जिसका चित्त मेरे (भगवान्‌के) रंगमें रँग गया और इस कारण जिसकी गृहासक्ति छूट गयी, उसे गृहस्थाश्रममें भी भगवत्प्राप्ति होती है और निज-बोधमें ही सारी सुख-सम्पत्ति मिल जाती है।

ज्ञान और विज्ञान

१५—जीव और परमात्मा दोनों एक हैं। इस बातको जान लेना ही ज्ञान है। वह ऐक्य लाभकर परमात्मसुख भोगना सम्यक् विज्ञान है।

१६—मैं ही देव हूँ, मैं ही भक्त हूँ, पूजाकी सामग्री भी मैं ही हूँ। मैं ही अपनी पूजा करता हूँ। यही सारी उपासना है।

१७—मैं कर्मका आदि, मध्य और अन्त हूँ। मैं कर्म, कर्ता और क्रिया-शक्ति हूँ और कर्मफलदाता श्रीपति भी मैं ही हूँ। यही सारा कर्मकाण्ड है।

अहंकार

१८—आत्मस्वरूपको भूलकर जो अहंभाव उठता है वही अहंकार है जो विकारसे त्रिगुणको क्षुब्ध करता है।

१९—जागृतिका जो विस्मरण है वही स्वप्नसृष्टिका विस्तार है। वस्तुसे विमुख जो अहंकार है वही गुणात्मक संसार है।

जीवधर्म

२०—जीव जीवभावके अनिवार्य प्रवाहमें बहा जा रहा है। इस प्रवाहको जो जीतकर रोक ले वही महावीर है, वह परम शूर है।

२१—सहज अनुकम्पासे प्राणियोंके साथ अन्न, वस्त्र, दान, मान इत्यादिसे प्रियाचरण करना चाहिये। यही सबका स्वधर्म है।

२२—पिता स्वयमेव नारायण हैं। माता प्रत्यक्ष लक्ष्मी हैं। ऐसे भावसे जो भजन करता है वही सुपुत्र है।

२३—काया, वाचा और मनको दृढ़तापूर्वक अपने वशमें कर लेना चाहिये। निजरूपमें सदा सावधान रहे और अनुसन्धान कभी खण्डित न होने दे।

२४—बहते पानीपर चाहे जितनी लकीरें खींचो, एक भी लकीर न खिंचेगी, वैसे ही सत्त्वशुद्धिके बिना आत्मज्ञानकी एक भी किरण प्रकट न होगी।

२५—धन्य है नरदेहका मिलना, धन्य है साधुओंका सत्संग; धन्य हैं वे भक्त जो भगवद्भक्तिके रंगमें रँग गये।

२६—वैष्णवोंको जो एक जाति मानता है, शालग्रामको जो एक पाषाण समझता है, सद्गुरुको जो केवल एक मनुष्य मानता है, उसे केवल पापी समझो।

चेतन और अचेतन प्रतिमा

२७—प्रतिमाएँ मेरी अचेतन व्यक्ति हैं और संत सचेतन व्यक्ति हैं। अन्त:करणसे जो उनकी भक्ति करते हैं वे मुझे (भगवान्‌को) प्राप्त होते हैं।

लोकसंग्रह

२८—अभेद-भक्ति, वैराग्य और ज्ञानका स्वयं आचरण

करके इसी मार्गपर दूसरोंको ले आनेका नाम ही लोकसंग्रह है।

सुखकी वार्ता

२९—जो निज सत्ता छोड़कर पराधीनतामें जा फँसा, उसे स्वप्नमें भी सुखकी वार्ता नहीं मिलती।

३०—यहाँ किसीकी निन्दा या किसीका गुणानुवाद कोई क्या करेगा? 'मैं ही विश्व हूँ' यह बोध जब हो गया तब निन्दा-स्तुति कहाँ रही?

धन-लोभ और स्त्री-काम

३१—जो धनके लोभमें फँसा हुआ है उसे कल्पान्तमें भी मुक्ति नहीं मिल सकती। जो सर्वथा स्त्री-कामी है उसे परमार्थ या आत्मबोध नहीं मिल सकता।

कामादिकोंकी होली

३२—जब सूर्यनारायण प्राची दिशामें आते हैं तब तारे अस्त हो जाते हैं वैसे ही भक्तिके प्रबोधकालमें कामादिकोंकी होली हो जाती है।

सत्य

३३—सत्यके समान कोई तप नहीं है, सत्यके समान कोई जप नहीं है। सत्यसे सद्रूप प्राप्त होता है। सत्यसे साधक निष्पाप होते हैं।

३४—वर्णोंमें चाहे कोई सबसे श्रेष्ठ क्यों न हो वह यदि हरि-चरणोंसे विमुख है तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जो प्रेमसे भगवद्भजन करता है।

नाम-कीर्तन

३५— अन्त:शुद्धिका मुख्य साधन हरि-कीर्तन है। नामके समान और कोई साधन ही नहीं है।

प्रिय भक्त

३६—स्वकर्म, धर्म, वर्णाचार तथा अपने अन्य सब व्यवहारोंको करते हुए भी जो सब भूतोंको मदाकार (भगवदाकार) देखता है वही भक्त मेरा प्रिय है।

गोपियोंका आनन्दानुभव

३७—मेरा वह सुख गोपियाँ जानती हैं या मैं श्रीपति ही जानता हूँ जो रासक्रीड़ाकी रातमें सबको प्राप्त हुआ। जहाँ मैं आत्माराम क्रीडा करता हूँ, वहाँ काम बेचारा कहाँसे घुस सकता है? मत्काम होकर गोपियाँ निष्काम हो गयीं; उन्हें कामका कोई संसर्ग ही न रहा। उनकी बुद्धि मदाकार हो गयी, इससे वे अपना घर-द्वार, पति-पुत्र, काम-काज सब भूल गयीं। विषयसुख भूल गयीं, द्वन्द्व-दुःख भूल गयीं, मेरे निदिध्याससे भूख-प्यास भूल गयीं। सच्चिदानन्दस्वरूपका प्रभाव, मेरा निजस्वभाव न जानकर भी गोपियोंका अनन्यभाव परब्रह्मको प्राप्त हो गया।

(अ० १२)

३८—भक्त जहाँ रहता है, वह सभी दिशाएँ सुखमय हो जाती हैं। वह जहाँ खड़ा होता है, वहाँ सुखसे महासुख आकर रहता है।

योगसंग्रहस्थिति

३९—चित्त जब संसारस्फूर्तिको त्यागकर चित्स्वरूपमें मिल जाता है तब जीव-शिव एक हो जाते हैं। इसी अवस्थाको योगसंग्रहस्थिति कहते हैं।

त्यागका त्यागत्व

४०—सम्पूर्ण त्यागका जो त्यागत्व है वह, हे उद्धव! मैं तुम्हें बतलाता हूँ। अभिमान सर्वथा त्याग दो। यही त्यागका मुख्य लक्षण है।

४१—सम्पूर्ण अभिमानको त्यागकर मेरी शरणमें आनेसे तुम जन्म-मरण द्वन्द्वोंसे तर जाओगे।

शरणागति

४२—मेरी शरणमें आनेके लिये क्या गिरि-कन्दराओंमें घूमना पड़ेगा या गुफाओंमें रहना होगा अथवा चारों दिशाओंमें भटकना पड़ेगा?

४३—तुम कहोगे कि तुम्हारा तो कोई ऐसा ठिकाना नहीं है जहाँ जानेसे तुम मिलो, इसलिये पूछ सकते हो कि तुम्हारी शरणमें आनेके लिये मुझे कहाँ जाना होगा?

४४—किस स्थानमें जाकर तुम्हारी शरण लूँ, यही यदि जानना चाहते हो तो, मैं तो तुम्हारे हृदयमें हूँ। जो हृदयस्थ है उसीकी शरण लो।

४५—सम्पूर्ण भावसे, सर्वस्वके साथ मुझ हृदयस्थकी शरणमें आओगे तो मैं जो सर्वगत हूँ वही तुम हो जाओगे, क्योंकि मैं हृदयस्थ सर्वभूतनिवासी हूँ।

४६—तिलभर भी अभिमान रखकर यदि मेरी शरणमें आओगे तो मुझे नहीं पाओगे। कारण, मेरी प्राप्तिमें अभिमान बाधक है।

४७—कुत्तेका छुआ हुआ पक्वान्न जैसे ब्राह्मण स्पर्श नहीं करते वैसे ही जिसके जीमें अभिमान है उस साधकको मैं भी स्पर्श नहीं करता।

४८—रजस्वलाकी वाणी सुनकर पुरश्चरण करनेवाले तपस्वी ब्राह्मण दूर भागते हैं वैसे ही जिस साधनामें अहंकार होता है वहाँसे मैं चल देता हूँ।

४९—कोई पुरुष अपनी स्त्रीको परपुरुषके साथ रममाण हुई

देखकर जैसे त्याग देता है वैसे ही अभिमानमें रत होनेवाले भक्तको मैं त्याग देता हूँ।

५०—इसलिये अभिमानको त्यागकर मुझ हृदयस्थकी शरणमें आनेसे मैं तेरा उद्धार करूँगा।

५१—सम्पूर्ण भावसे शरणमें आनेसे अभी इसी क्षण तर जाओगे। हाथके कंगनको आरसी क्या?

५२—शरणमें आनेसे कलिकाल तुम्हारे पैरों गिरेगा। भव-भय बेचारा तुम्हारी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता।

५३—मेरी शरणमें आनेसे मेरा बल प्राप्त होता है। सारा भव-भय भागता है। कलिकाल काँपने लगता है।

५४—हृदयस्थकी शरणमें आना चाहते हो और वह हृदयस्थ कौन है, कैसा है यह जानना चाहते हो तो उसका स्वरूप सुनो।

५५—नाम-रूपका अभिमान छोड़नेपर जो शुद्ध स्फुरण रह जाता है वही मुझ हृदयस्थका स्वरूप है। उसीकी शरण लो।

५६—नाम-रूप-गुण-वार्ता माया है, उसके परे जो सत्ता स्फुरित होती है वही मुझ हृदयस्थका स्वरूप है। (अ० १२)

सरल उपाय

५७—अपने मनको मुझे अर्पण करनेका सरल उपाय बतलाता हूँ। यह सरल उपाय है नाम-स्मरण। नाम-स्मरणसे पाप भस्म होता है।

५८—सकाम नाम-स्मरण करनेसे वह नाम जो इच्छा हो वह पूरी कर देता है। निष्काम नाम-स्मरण करनेसे वह नाम पापको भस्म कर देता है।

५९—पापका क्षालन होनेसे रज-तम जीत लिये जाते हैं और सत्त्वगुण बढ़ता है।

६०—सत्त्वगुणसे वैराग्यके पैर जम जाते हैं। वैराग्यसे विषय रौंदे जाते हैं। इससे आत्मज्ञान उदय होता है।

६१—सविवेक-ज्ञानके बढ़नेसे आत्मस्वरूपका चिन्तन होता है। इससे स्थिर शान्ति आती है और तब अन्त:करण मदर्पण होता है।

६२—मनके मदर्पण होनेसे निज भक्ति उल्लसित होती है।

६३—पूर्ण निज भक्ति प्राप्त होनेसे अष्ट महासिद्धियाँ भक्तके चरणोंके पास लोटा करती हैं।

६४—जो सिद्धियोंकी ओर झाँकतातक नहीं वह मेरी पदवीलाभ करता है। मेरे साथ एक हो जाता है।

भक्त और भगवान्

६५—जिस भक्तको मेरी निज भक्ति प्राप्त होती है उसके सभी व्यापार मदाकार हो जाते हैं।

६६—वह जिस ओर रहता है, वह दिशा ही मैं बन जाता हूँ। वह जहाँ चलता है, मैं धराधर ही वह धरा हो जाता हूँ।

६७—वह जब भोजन करने बैठता है तब उसके लिये मैं ही षट्रस होता हूँ। उसे जल पिलानेके लिये मैं ही जल बनता हूँ।

६८—जब वह पैदल चलता है तब उसका बोध दृश्य जगत्के नानाविध दृश्योंकी भीड़को हटाता चलता है और शान्ति पद-पदपर उसके लिये मृदु पदासन बिछाती और उसकी आरती उतारती है।

६९—शम-दम आज्ञाकारी सेवक होकर द्वारपर हाथ जोड़े खड़े रहते हैं ऋद्धि-सिद्धि दासी बनकर घरमें काम करती हैं। विवेक टहलुआ सदा हाजिर ही रहता है।

७०—जब वह बैठता है तब उसके रूपमें मैं हृषीकेश ही बैठता हूँ। वह जब सोने जाता है तब मैं ही उसके लिये समाधि बिछा रखता हूँ।

७१—वह जो कुछ बोलता है वह निःशब्द ब्रह्मका ही शब्द होता है और इसलिये उससे श्रोताओंका तुरंत समाधान होता है।

७२—वह लीलामात्रसे जो कुछ कहता है उससे— प्रत्येक शब्दसे मेरी ही वार्ता उठती है और श्रोता सुनकर तल्लीन हो जाते हैं।

७३—चारों मुक्ति मिलकर उसके घर पानी भरती हैं और श्रीके साथ मैं श्रीहरि भी उसकी सेवा करता हूँ, औरोंकी बात ही क्या है!

७४—इस प्रकार जिन्होंने मेरी सहज भक्तिको पाया उनके सब शौक मैं पूरे करता हूँ। कारण, मेरे प्रति उनकी अनन्य प्रीति होती है।

७५—अधिक बिस्तार न करके संक्षेपमें ही कहता हूँ कि अपने भक्तके लिये मैं देह हूँ और भक्त मेरा आत्मा है। वह मेरा जीवन है, मेरा प्राण है। निज भक्त इस बातको जानते हैं।

७६—सहज भक्तिके भीतर मैं आराध्य देव हूँ और वह भक्त है, अन्यथा मैं सम्पूर्ण उसके अन्दर हूँ और वह सम्पूर्ण मेरे अन्दर है।

(अ० १९)

जन और जनार्दन

७७—जनार्दनकी दयालुताको जन नहीं जानते, इसीसे देहाभिमान नहीं त्यागते।

७८—जननी-जठरसे जन्म होता है, इसी कारणसे जन 'जन'

कहलाते हैं। उन जन-जन्मका जनार्दन मर्दन करते हैं इसलिये वह जनार्दन कहाते हैं।

७९—वह मरणको मारकर जीवनको बढ़ाते हैं। जीवको मारकर फिर उसीको विदेहस्थितिमें जिलाते हैं। जनार्दनकी ऐसी दया है।

८०—दीनको निज भावार्थमें परिपूर्ण और एकाकी देखकर वह उसपर दया करते हैं। दीनोंपर उनकी पूर्ण दया है।

८१—जिसका जो भाव होता है, जनार्दन उसे पूरा करते हैं। जो परम समाधान चाहता है, जनार्दन उसका देहाभिमान नष्ट करते हैं। (अ० २५)

प्रसन्नता

८२—सद्गुरुकी पूर्ण कृपा होनेसे यह मन ही मनको अपनी पहचान करा देता है। उससे अपने ही सुखसे सुखी होकर मन ही मनसे प्रसन्न होता है।

८३—मन मनसे जब प्रसन्न होता है, तब वृत्ति निरभिमान होती है ऐसा समाधान साधक स्वयं मनसे साधें।

८४—यह मन अपने-आपको जीतकर वह विजय साधकको देता है। तब सद्गुरुसे पूर्ण निजबोध प्राप्तकर मन आत्मामें एक होकर लीन होता है। (अ० २३)

भगवत्कृपा

८५—मेरी चित्त-शुद्धि हो, ऐसी इच्छा उत्पन्न होनेके लिये भी भगवत्कृपा चाहिये। भगवत्कृपा हो तो साधनोंसे सिद्धि हो सकती है।

८६—साधनोंमें मुख्य साधन मेरी भक्ति है। भक्तिमें भी नाम-कीर्तन विशेष है। नामसे चित्त-शुद्धि होती है—साधकोंको स्वरूपस्थिति प्राप्त होती है।

८७—नाम-जैसा और कोई साधन नहीं है। नामसे भव-बन्धन कट जाते हैं।

८८—स्वरूपस्थितिमें मन निश्चल हो जाय तो फिर और क्या चाहिये? वहाँ अन्य साधन लज्जित होते हैं। उनका कोई प्रयोजन भी फिर नहीं रहता। (अ० २३)

मन

८९—मनने सबको बाँध रखा है, मन किसीसे नहीं बँधता। मनने देवताओंको पस्त कर डाला। वह इन्द्रियोंको क्या समझता है?

९०—मनकी मार बड़ी जबरदस्त है। मनके सामने कौन ठहर सकता है? ......यह देवताओंके लिये भी दुर्धर है, भयंकरोंके लिये भी भयंकर है।

९१—पर हीरेसे हीरा काटा जाता है वैसे ही मनसे ही मन पकड़ा जाता है। पर यह भी तब होता है जब पूर्ण गुरुकृपा होती है।

९२—मन गुरु-कृपाका दास है, सदा सद्गुरुसे डरता रहता है। गुरु-चरणोंके पास यह मन रहे तो वह साधकको सन्तोष दिलाता है।

९३—मन ही मनका द्योतक, मन ही मनका साधक, मन ही मनका बाधक और मन ही मनका घातक है।

भगवद्भजन

९४—स्वधर्माचरणसे जो कुछ मिलता है, तपाचरणसे जो कुछ मिलता है, सांख्यज्ञान-विचारसे जो कुछ मिलता है, विषय-त्यागसे, अष्टांगयोगसे अथवा वाताम्बु-पर्णाशन-भोगसे जो कुछ मिलता है, वेदाध्ययन, सत्य वचन तथा अन्य जो-जो साधन हैं उन साधनोंसे जो कुछ मिलता है वह सब भगवद्भजनसे प्राप्त होता है।

९५—मेरी निज भक्ति होनेसे दुस्साध्य साधनोंको साधे बिना,

दुर्गम गिरि-कन्दराओंको लाँघे बिना ही सब साधनोंके फल भक्तके द्वारपर आ जाते हैं।

९६—वह भक्ति कैसी है यह यदि जानना चाहते हो तो ब्रह्मभावसे गुरुका भजन करो। (अ० २०)

निरपेक्षता

९७—निरपेक्ष ही धीर होता है—धैर्य उसके चरण छूता है। जो अधीर है उसमें निरपेक्षता नहीं होती।

९८—कोटि-कोटि जन्मोंके अनुभवके बाद ऐसी निरपेक्षता आती है। निरपेक्षतासे बढ़कर और कोई साधन ही नहीं है।

९९—ऐसी निरपेक्षतासे ही भगवद्‌भजनमें प्रीति होती है। उससे वह भक्ति भक्तको प्राप्त होती है जिसे वेद एकान्त-भक्ति कहते हैं।

एकान्त-भक्ति

१००—एकान्त-भक्तिका लक्षण यह है कि भगवान् और भक्तका एकान्त होता है। भक्त भगवान्‌में मिल जाता है और भगवान् भक्तमें मिल जाते हैं।

१०१—जो विषय-भेद नहीं देखता, समत्वका जिसे बोध हो गया, वही शुद्ध साधु है। उसीको भगवद्‌भजनका परमानन्द प्राप्त होता है।

१०२—जो देखता है, सब प्राणियोंमें मैं ही एक परमात्मा हूँ; जिसे द्वैतकी भ्रान्ति नहीं होती, ऐसी जिसकी भजन-स्थिति होती है वही एकान्त-भक्त है और उसीकी भक्ति 'एकान्त-भक्ति' है।

१०३—जो सदा समभावमें एकाग्र रहते हैं, मेरे भजनमें ही तत्पर रहते हैं वे प्रकृतिके पार पहुँचकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होते हैं। (अ० २०)

त्रिगुण-संक्रम

१०४—पलमें धर्म और पलमें काम त्रिगुणके संक्रमसे होता है।

१०५—अभी स्वधर्म-कर्ममें श्रद्धा हुई तो दूसरे ही क्षणमें उससे विरक्ति होती है। फिर तीसरे क्षणमें भोगकी इच्छा होती है। अभी काममें रति हुई, क्षणमात्रमें निष्काम वृत्ति हो गयी और फिर दूसरे ही क्षणमें ममता उत्पन्न हुई। यह त्रिगुण-संक्रम है।

१०६—त्रिगुणका त्रिविध धर्म है। काम भी त्रिविध है। अर्थ-स्वार्थ-निर्वाह त्रिगुणात्मक है।

१०७—इसमें कर्मका दोष नहीं है। दोष कर्ताकी बुद्धिमें है। जो जैसी कल्पना करता है वैसा ही फल भोगता है।

१०८—भूमि स्वभावसे ही शुद्ध है। उसमें जो बोया जायगा वही उपजेगा। वैसे ही स्वकर्म स्वयं शुद्ध है। फलभोग गुण-वृत्तिसे होता है। वाणी स्वभावसे ही सरल है, रामनामसे वह ब्रह्मसे पोषण-लाभ करती है और व्यर्थकी बकवादसे व्यर्थ ही क्षीण होती है और निन्दासे महापाप भोगती है। ब्रह्म तो निर्मल है, कर्म भी शोधक होनेसे अति शुद्ध है, इसमें जो कुछ बन्धन है वह गुण-क्षोभसे चित्तका सम्बन्ध है।

कर्म-ब्रह्म

१०९—कर्म-ब्रह्ममें दोष नहीं है, दोष चित्त-वृत्तिमें है, वही पुरुषको गुण-क्षोभसे नीचे ढकेलता है।

११०—वह अविद्या-बन्धन काटनेका उपाय भगवद्भजन है। यह जानकर संत सज्जन भक्तिपर अपने प्राण बेच देते हैं।

अनन्य-प्रीतिका प्रभाव

१११—जिसके हृदयमें विषयसे विरक्ति हो, अभेदभावसे

मेरी भक्ति हो, भजनमें अनन्य प्रीति हो उसका मैं श्रीपति आज्ञाधारक हूँ। (अ० २५)

दुःसंगका परिणाम

११२—शिश्नोदरभोगमें ही जो आसक्त हैं, स्वधर्मत्यागमें जो अधर्मरत हैं, ऐसे विषयासक्तोंको असाधु समझो। उनका संग मत करो। काया, वाचा, मनसा उनकी संग-सोहबत त्याग दो।

११३—दुर्जनोंकी संगतिसे क्षणार्धमें पुरुष महान् अनर्थमें गिर सकता है। ऐसे लोगोंका जहाँ वास हो वहाँ कदापि न जाना चाहिये।

११४—अन्धेका हाथ अन्धा पकड़े तो दोनों ही महागर्तमें जा गिरें, वैसे ही अविवेकी जनोंके संगसे विषयान्ध अन्धतम नरकमें जा गिरते हैं। (अ० २६)

दुर्जनके लक्षण

११५—जो वेद-शास्त्रार्थको नहीं मानता, परमार्थमें जिसका विश्वास नहीं होता, जो अति विकल्प करता है वह भी दुःसंग है।

११६—जो बड़ा भारी विरक्त बनता है पर हृदयमें अधर्म-कामरत रहता है, कामवश द्वेष करता है वह भी निश्चित दुःसंग है।

११७—जो स्वधर्म कर्ममें बड़ी विनीतता दिखाता है, बड़ा सात्त्विक बनता है, पर हृदयमें संतोंके दोष देखता है वह अति दुष्ट दुःसंग है।

११८—जो मुँहसे चाहे कुछ न कहे पर साधुओंके गुण-दोष देखता रहता है, बाहर उपलक्षणोंसे उन दोषोंको दिखलाता है वह अति कठिन दुःसंग है।

भयंकर दुःसंग

११९—पर सबसे मुख्य दुःसंग अपना ही काम है—अपनी ही सकामता है। इसे समूल त्याग देनेसे ही दुःसंगता त्यागी जाती है।

संसार-सुखरूप

१२०—काम-कल्पनाकी जो मार है वही बड़ा दुर्धर दुःसंग है। उस काम-कल्पनाको जो नर त्यागता है उसके लिये संसार सुखरूप होता है।

सत्संग

१२१—उस काम-कल्पनाको त्यागनेका मुख्य साधन केवल सत्संग है। संतोंके श्रीचरणोंका वन्दन करनेसे काम मारा जाता है।

१२२—सत्संगके बिना जो साधन है वह साधकोंको बाँधनेवाला कठिन बन्धन है। सत्संगके बिना जो त्याग है वह केवल पाखण्ड है।

१२३—विषयोंके सम्बन्धसे चित्तमें बड़ी कठिन गाँठे पड़ गयी हैं। उन्हें विवेकसे छेदन करनेके लिये संत ही चाहिये।

१२४—संतोंकी मामूली बातें महान् उपदेश होती हैं, चित्तमें पड़ी हुई गाँठे उनके शब्दमात्रसे छिद जाती हैं।

१२५—इसलिये बुद्धिमानोंको चाहिये कि सत्संग करें। सत्संगसे साधकोंके भव-पाश कट जाते हैं। (अ० २६)

श्रेष्ठ धर्म

१२६—हृदयमें मेरा नित्य ध्यान हो, मुखसे मेरा नाम-कीर्तन हो, कानोंमें सदा मेरी ही कथा गूँजती हो, प्रेमानन्दसे मेरी ही पूजा हो। नेत्रोंमें मेरी ही मूर्ति विराज रही हो, चरणोंमें मेरे ही स्थानकी यात्रा हो, रसनामें मेरे ही तीर्थका रस हो, भोजन हो, तो वह मेरा ही प्रसाद हो। साष्टांग नमन हो मेरे ही प्रति, आलिंगन हो आह्लादसे मेरे ही भक्तोंका और एक क्या आधा पल भी मेरी सेवा बिना व्यर्थ न जाय।.......सब धर्मोंमें यही श्रेष्ठ धर्म है। (अ० ३०)

भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी स्वरूपाशक्ति श्रीराधिकाजीके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान उन्हींको है। दूसरा कोई भी यह नहीं कह सकता कि इनका स्वरूप ऐसा ही है। जो कुछ भी वर्णन होता है, वह स्थूल रूपका और आंशिक ही होता है। भगवान् श्रीकृष्ण समग्र ब्रह्म या पुरुषोत्तम हैं। ब्रह्म, परमात्मा, आत्मा—सब इन्हींके विभिन्न लीलास्वरूप हैं। श्रीराधाजी इन्हींकी स्वरूपाशक्ति हैं। श्रीराधाजी और श्रीकृष्ण सर्वथा अभिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य चिन्मय आनन्द विग्रह हैं और श्रीराधाजी दिव्य चिन्मय प्रेम विग्रह हैं। वे रसराज हैं, ये महाभाव हैं। भगवान्की इन्हीं स्वरूपाशक्तिसे अनन्य कोटि शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, जो जगत्का सृजन, पालन और संहार करती हैं। भगवान्ने स्वयं कहा है—जो नराधम हम दोनोंमें भेदबुद्धि करता है वह चन्द्र-सूर्यकी स्थितिकालतक कालसूत्र नामक नरकमें रहता है।

जब युगल सरकार कृपा करके अपने दुर्लभ दर्शन देना चाहें तभी दर्शन हो सकते हैं। उनकी कृपा ही उनके साक्षात्कारका उपाय है।

(**श्रीराधा-माधव-चिन्तन** नामक पुस्तकसे)

१६ सितम्बर—निश्चल भावसे विश्वासके साथ मनको आज्ञा दो—रे मन तू मेरा सेवक है। मेरी सत्ता और चेतनासे तेरा जीवन है। तू मेरी एक स्वीकृति मात्र है। मेरी आज्ञा मान और जैसे मैं चाहूँ वैसे रह। इधर-उधर किया तो मैं तुम्हें नष्ट कर दूँगा।

(**दैनिक कल्याण-सूत्र** नामक पुस्तकसे)